विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा

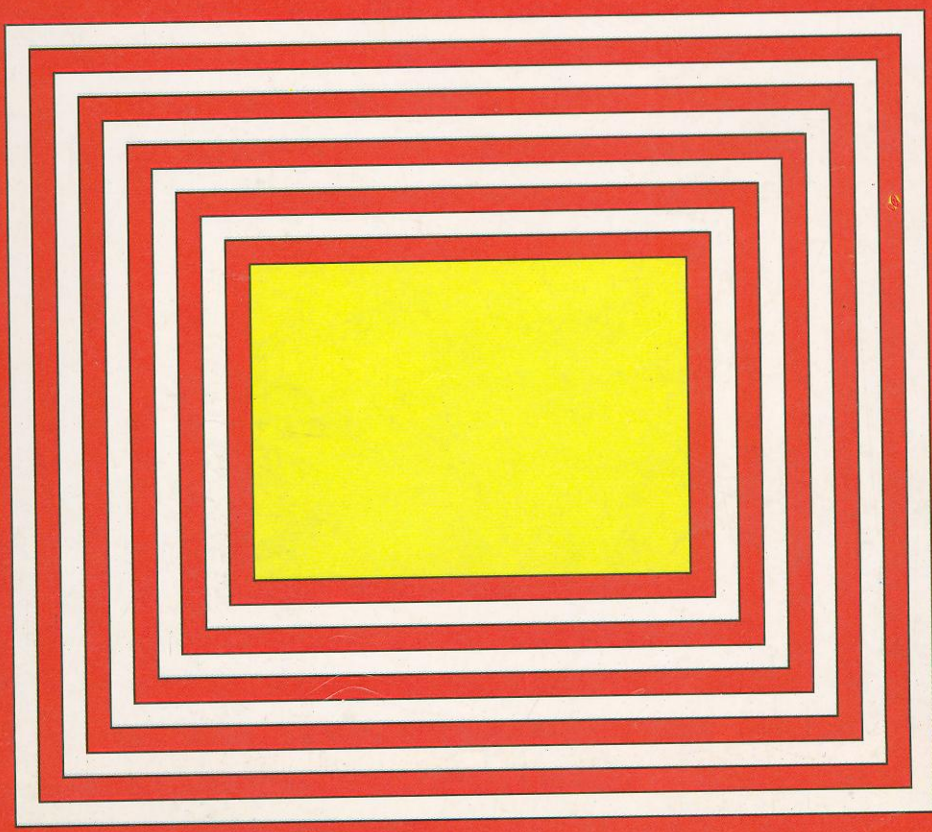

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

दिसंबर 2000
पौष 1922

PD 5T NSY

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2000

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा सुविधा कंप्यूटर्स, 86-A, अधचिनी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110 017 द्वारा लेज़र टाईपसैट होकर जे.जे. ऑफसैट प्रिंटर्स, 7-प्रिंटिंग प्रेस एरिया, वज़ीरपुर, दिल्ली 110 035 द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

भारत एक राष्ट्र के रूप में अपने बच्चों और अशिक्षित प्रौढ़ों की शिक्षा के लिए नवीन और प्रभावशाली तरीकों की खोज के प्रति निरंतर प्रयत्नशील है। बिना किसी सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक भेदभाव के, सभी समुदायों के सभी लोगों की शिक्षा के संदर्भ में किए गए प्रयासों की सफलता पर अब एक गंभीर बहस राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पुनर्जीवित की जा रही है। एक मानवोचित, प्रतिबद्ध, सहभागी और उत्पादक नागरिकों से युक्त समाज-रचना की सार्वभौम और प्रबल आकांक्षा के कारण इन प्रयासों की गति तेज़ हुई है।

भारत को भी चाहिए कि वह अपने शैक्षिक सरोकारों और प्राथमिकताओं की समीक्षा कर उन्हें अद्यतन बनाए। *राष्ट्रीय शिक्षा नीति,* 1986 में स्पष्ट रूप से यह उल्लेख है कि "नवीन नीति के विभिन्न मानदंडों के क्रियान्वयन की हर पाँच वर्ष में समीक्षा करना अनिवार्य है। क्रियान्वयन की प्रगति और उससे समय-समय पर उभरने वाली दृष्टियों को सुनिश्चित करने के लिए थोड़े-थोड़े अंतरालों पर आकलन करना आवश्यक होगा।" बारह वर्ष से भी अधिक समय पूर्व राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के अनुसार *प्रारंभिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या : एक रूपरेखा,* 1988 नामक दस्तावेज़ तैयार किया गया था। कार्य योजना 1992 (प्रोग्राम ऑफ एक्शन 1992) में स्पष्ट उल्लेख है—"मुख्य सरोकारों से जुड़े कुछ मुद्दों, ज्ञान के उत्कर्ष और शिक्षाशास्त्रीय परिप्रेक्ष्यों पर बढ़ते हुए ज़ोर की दृष्टि से इसका आधुनिकीकरण करने की ज़रूरत थी। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी.) को सलाह दी जाएगी कि वह आठवीं पंचवर्षीय योजना की समाप्ति के पूर्व पाठ्यचर्या में आवश्यक परिवर्तनों की शुरूआत करे।" नवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002) के दस्तावेज़ में भी पाठ्यचर्या की समीक्षा और उसके उन्नयन के प्रति चिंता व्यक्त करते हुए इस कार्य को परिषद् द्वारा किए जाने की बात कही गई है। इन दस्तावेज़ों से संदेश ग्रहण करने के अतिरिक्त परिषद् भी एक शीर्षस्थ शैक्षिक संस्था के रूप में गंभीरता से यह महसूस करती है कि पाठ्यचर्या-निर्माण केवल एक ही बार किया जाने वाला प्रयास नहीं है, बल्कि यह तो एक सतत प्रक्रिया है जिसे संपूर्ण सामाजिक, शिक्षाशास्त्रीय और सभी स्तरों पर होने वाले अन्य परिवर्तनों के प्रति संवेदनशील और उत्तरदायी होना होगा। सच पूछा जाए तो पाठ्यचर्या राष्ट्रीय लक्ष्यों को शैक्षिक अनुभवों में रूपांतरित करने की एक विधि है।

एन.सी.ई.आर.टी. ने राष्ट्रीय संकल्पों को मान्य किया और संपूर्ण विद्यालय शिक्षा के लिए

नवीन पाठ्यचर्या-रूपरेखा विकसित करने का दायित्व लिया। सितंबर 1999 में परिषद् ने अपने आंतरिक संकायों के सदस्यों का एक पाठ्यचर्या-समूह गठित करके यह कार्य शुरू किया। इस समूह ने परिषद् मुख्यालय के संकाय के प्रत्येक सदस्य और सभी क्षेत्रीय शिक्षा संस्थानों से परामर्श करके और सिद्धांतों एवं शोध पर आधारित सामग्री का अध्ययन करके *विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा : परिचर्चा दस्तावेज़* तैयार किया। उनके समृद्ध योगदान से आगे चलकर इस दस्तावेज़ को विकसित करने के कार्य में बड़ी मदद मिली।

जनवरी 2000 में समाज के विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधियों, शिक्षाविदों, विशेषज्ञों, शिक्षकों, विश्वविद्यालयी विभागों, शोध संस्थानों, अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं, प्रशासकों और जिस किसी ने कहीं भी इसे प्राप्त करने की इच्छा की उन सबको यह *परिचर्चा दस्तावेज़* उनके अवलोकन, उनकी टिप्पणियों और उनके सुझावों के लिए भेजा गया। इसके व्यापक स्तर पर वितरण के लिए पूरा दस्तावेज़ परिषद् के *वेबसाइट* पर भी पेश किया गया। इस पर पूरे देश में विस्तार और गहराई के साथ बहस और चर्चा कराई गई। क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर तो अनेक संगोष्ठियाँ आयोजित की ही गईं, साथ ही कुछ संगोष्ठियाँ परिषद् ने भी इसी उद्देश्य से करवाईं। अनेक संस्थानों, स्वैच्छिक संगठनों, शिक्षक-संगठनों, अभिभावक-शिक्षक संघों, विशेषज्ञ संस्थाओं और यहाँ तक कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं ने भी इस दस्तावेज़ पर संवाद किया और अपनी टिप्पणियाँ एवं सुझाव प्रस्तुत किए। इन समस्त चर्चाओं, संवादों, संगोष्ठियों आदि से प्राप्त सुझावों और टिप्पणियों का गहराई से अध्ययन किया गया। उनका विश्लेषण किया गया और उसके पश्चात इस रूपरेखा को अंतिम रूप देने की प्रक्रिया में उनका यथोचित एवं यथास्थान उपयोग किया गया। इस प्रकार यह एक ऐसा समग्र दस्तावेज़ बना जिसमें पहली बार उच्चतर माध्यमिक स्तर को भी शामिल किया गया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 और *प्रारंभिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या : एक रूपरेखा,* 1988 में जिन मुख्य सरोकारों और चिंताओं को व्यक्त किया गया था, उन पर इस दस्तावेज़ में भी पुनः ज़ोर दिया गया। भाषा शिक्षण और शिक्षा के माध्यम से जुड़े मुद्दे, सभी स्तरों के लिए कॉमन स्कूल संरचना की आवश्यकता, सामाजिक समरसता से जुड़े केंद्रीय मुद्दे, पंथनिरपेक्षता और राष्ट्रीय एकता और इन सबकी शैक्षिक प्रक्रिया से संबद्धता या प्रासंगिकता—ही वे मुद्दे हैं, जिन्हें इस दस्तावेज़ में भी शामिल किया गया है। पूर्व के दस्तावेज़ों में जो अन्य सरोकार प्रस्तुत किए गए थे उनका भी विस्तार किया गया है ताकि इन सरोकारों पर आवश्यक और उचित ध्यान दिया जा सके। सामान्य केंद्रिक तत्व (कॉमन कोर कंपोनेंट्स), सतत और व्यापक मूल्यांकन, स्वतंत्रता और लचीलेपन के तत्व और व्यावसायिक शिक्षा आदि कुछ ऐसे सरोकार हैं जो पूर्व के दस्तावेज़ों में भी मौजूद थे।

इस रूपरेखा में कुछ नए मुद्दों पर भी विशेष ध्यान देने का प्रयत्न किया गया है जो न्यूनतम अधिगम स्तर (मिनीमम लेवल्स ऑफ लर्निंग), मूल्य शिक्षा, सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के उपयोग और व्यवस्था के प्रबंधन एवं उसकी जवाबदेही से जुड़े हुए हैं।

अनेक वर्षों के अवलोकन, शैक्षिक अध्ययन और विश्लेषण के आधार पर कुछ नए सरोकारों की पुनर्रचना की गई या उन्हें आंशिक रूप से अलग ढंग से इस उद्देश्य से संबोधित किया गया कि उनसे नीति का बेहतर क्रियान्वयन सुनिश्चित किया जा सके। स्वस्थ, आनंददायी और तनावरहित शिशु देखभाल और शिक्षा, उत्कृष्टता की संप्राप्ति के लिए प्रतिभाओं को निरंतर गतिशील बनाए रखते हुए उनका समुचित पोषण और पाठ्यचर्या-बोझ को कम करना—ये तमाम पक्ष इस दस्तावेज़ में अधिक व्यापक रूप से शामिल किए गए हैं। प्रस्तुत दस्तावेज़ में आसपास तेज़ी से घटित होने वाले परिवर्तनों के संदर्भ में सुझाव और सिफ़ारिशें दी गई हैं लेकिन उन्हें भी नीति की भावना के अनुरूप रखा गया है। पर्यावरण शिक्षा का प्राथमिक स्तर के प्रथम दो वर्षों की शिक्षा में भाषा, गणित एवं अन्य गतिविधियों के साथ समन्वय या समेकन, प्राथमिक स्तर पर ही कला शिक्षा, स्वास्थ्य तथा शारीरिक शिक्षा और कार्य शिक्षा का 'स्वस्थ और उत्पादक जीवन के लिए कला' के साथ समेकन, सभी धर्मों के विषय में शिक्षा, सामाजिक विज्ञान में विषयवस्तु आधारित समझ पैदा करने वाला समेकित उपागम, विज्ञान और प्रौद्योगिकी का समेकन, माध्यमिक स्तर पर गणित को जीवन के निकट लाना और वर्तमान विज्ञान-प्रयोगशालाओं में व्यावहारिक गणित के लिए स्थान नियत करना आदि कुछ नए तत्व हैं जो इस दस्तावेज़ के अंग हैं। इनके अतिरिक्त शिक्षकों में पूरा विश्वास ज़ाहिर करते हुए उनके सबलीकरण और उनकी सहभागिता को योजना-निर्माण, क्रियान्वयन, पाठ्यचर्या के मूल्यांकन और पाठ्य-सामग्री के निर्माण के संबंध में पहली बार महत्त्वपूर्ण माना गया है। इसी प्रकार अभिभावकों और आम जनसमुदाय के प्रबोधन, सहभागिता और जवाबदेही के लिए भी सुझाव दिए गए हैं। भाषा कौशलों के मौखिक एवं श्रव्य मूल्यांकन की प्रणाली लागू करने, व्यक्तिगत और समूह में स्व-मूल्यांकन की प्रणाली अपनाने और ऐसे ही अन्य नवीन तत्वों का भी इस दस्तावेज़ में समावेश है।

किसी भी देश की शिक्षा-प्रणाली की रचना उसके अपने ही दार्शनिक, सांस्कृतिक और सामाजिक-परंपराओं के सुदृढ़ धरातल पर होनी चाहिए। उसमें देश की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं की झलक भी मिलनी चाहिए। इसलिए इस दस्तावेज़ में पाठ्यचर्या के स्वदेशीपन की अनुशंसा की गई है। इसी कारण यहाँ ऐसी शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया गया है जिसकी जड़ें भारतीय यथार्थ और भारत की सामासिक संस्कृति में निहित हों। भारत की समृद्ध बौद्धिक और सांस्कृतिक विरासत और विश्व सभ्यता के लिए भारतीय सभ्यता के योगदान के प्रति चेतना का भी दृढ़तापूर्वक उल्लेख किया गया है। *वसुधैव कुटुंबकम्* की

भावना से युक्त गहरी राष्ट्रीयता एवं देशभक्ति की अनुभूति भी शिक्षार्थियों को कराई जानी आवश्यक है। इससे हमारे युवा छात्र-छात्राओं में अपने 'भारतीय' होने पर गर्व की भावना भी पुष्ट होगी और उसका औचित्य भी प्रकट होगा। इसी के साथ इस दस्तावेज़ में सभी संस्कृतियों को ग्रहण करने और अन्य सबके प्रति सहिष्णुता और सम्मान प्रकट करने के मूल्यों पर भी ज़ोर दिया गया है। यह एक छोटा किंतु संकल्पवान कदम है जिससे शांति और परस्पर समझ की संस्कृति को प्रोत्साहन मिलेगा और यह राष्ट्र को प्रगति एवं समृद्धि की नई ऊँचाइयों की ओर ले जाने में मदद करेगा। भूमंडलीकरण के जटिल और चुनौतीपूर्ण आगमन का मुकाबला करने के लिए आवश्यक तैयारी को भी इस दस्तावेज़ में यथोचित स्थान दिया गया है।

अंत में, प्रस्तावित पाठ्यचर्या-रूपरेखा को एक जीवंत वास्तविकता में रूपांतरित करने के लिए इस दस्तावेज़ को जन-जन तक ले जाने वाली व्यवस्था से जुड़ी सभी संस्थाओं को दृढ़ संकल्प के साथ आगे आना होगा और समाज से अधिकतम समर्थन प्राप्त करना होगा। एक अत्यंत सुविचारित और प्रगाढ़ पाठ्यचर्या भी कमज़ोर होकर बिखर जाती है अगर उसे लागू करने वाली ऐजेंसियों की मानसिकता यथास्थिति बनाए रखने की हो या वे पाठ्यचर्या की विषयवस्तु को क्षेत्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप ढाल कर प्रासंगिक बनाने के लिए अपनी विशेषज्ञता को सक्रिय न बनाएँ। पाठ्यचर्या-शोध के परिणामों से पुष्ट प्रयासों को मान्य करते हुए और राजनीतिक-प्रशासनिक दृढ़ इच्छाशक्ति को देखते हुए यह विश्वास होता है कि नई पाठ्यचर्या में अंतर्निहित संदेशों और भावनाओं के समयबद्ध क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए देश वचनबद्ध है।

नई दिल्ली
दिसंबर 2000

जगमोहन सिंह राजपूत
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

आभार

यह दस्तावेज़ देशभर में आयोजित संगोष्ठियों और कार्यशालाओं में एक लंबी, सहभागितापूर्ण और लोकतांत्रिक प्रक्रिया के अंतर्गत किए गए गहन चिंतन-मनन और चर्चाओं का परिणाम है। इसे बनाने में लगभग सभी वर्गों और समुदायों के लोगों का अमूल्य योगदान रहा है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् निम्नलिखित के प्रति अपना विनम्र आभार एवं कृतज्ञता व्यक्त करती है :

- उन सभी राज्य सरकारों के प्रति जिन्होंने क्षेत्रीय संगोष्ठियों के लिए प्रतिनिधि भेजे और विशेष रूप से आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, मेघालय, राजस्थान और पश्चिम बंगाल सरकारों के प्रति जिन्होंने इन संगोष्ठियों के लिए आधारभूत सुविधाएँ, प्रशासनिक सहयोग और अकादमिक मार्गदर्शन उपलब्ध कराया,
- समस्त राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषदों और राज्य शिक्षा संस्थानों के प्रति जिन्होंने इस प्रक्रिया में गहरी रुचि और आत्मीयता से सहभागिता की,
- भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के उन सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों के प्रति जिन्होंने उचित समय पर सुझाव दिए एवं प्रशासनिक सहयोग और प्रोत्साहन दिया,
- उन समस्त महत्त्वपूर्ण शिक्षाविदों, वैज्ञानिकों, कलाकारों, विशेषज्ञों और औद्योगिक प्रतिनिधियों के प्रति जिन्होंने शैक्षिक कार्यक्षेत्र की वास्तविकताओं पर अपनी टिप्पणियाँ और सुझाव देने के अतिरिक्त पाठ्यचर्या सरोकारों की पहचान करने में सहायता की,
- माध्यमिक शिक्षा मंडलों की परिषद्, केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, भारतीय स्कूल प्रमाणपत्र परीक्षाओं की परिषद् और राज्य के शिक्षा मंडलों के प्रति जिन्होंने अनेक व्यावहारिक सुझाव दिए और अनुशंसाएँ कीं,
- राष्ट्रीय शैक्षिक योजना और प्रशासन संस्थान (नीपा), राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय, केंद्रीय विद्यालय संगठन और नवोदय विद्यालय समिति के प्रति जिन्होंने मूल्यवान सहभागिता की और उपयोगी सुझाव दिए,
- शिक्षा और समाज-सेवा के क्षेत्रों में कार्यरत विभिन्न गैर-सरकारी संगठनों और शोध संस्थाओं के प्रति जिन्होंने समृद्ध अनुभव, शोध-निष्कर्ष और अंतर्दृष्टि के साथ अपना सहयोग दिया,

- शिक्षक संगठनों, विद्यालयों, विद्यालय-संकुलों और विश्वविद्यालयी विभागों के प्रति जिन्होंने इस प्रक्रिया में स्वेच्छा से उत्साहपूर्वक भाग लिया,
- समुदाय के सदस्यों, माता-पिता और छात्र-छात्राओं के प्रति जिन्होंने अपनी टिप्पणियाँ और व्यावहारिक सुझाव दिए,
- मीडिया-कर्मियों, संवाददाताओं, लेखकों और अनुवादकों के प्रति जिन्होंने एन.सी.ई.आर.टी. के इस प्रयास का समय-समय पर समुचित प्रचार-प्रसार किया, और
- एन.सी.ई.आर.टी. के संपूर्ण संकायों अर्थात् राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान और केंद्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी संस्थान, नई दिल्ली; पं. सुंदरलाल शर्मा केंद्रीय व्यावसायिक शिक्षा संस्थान, भोपाल; पाँच क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान—अजमेर, भोपाल, भुवनेश्वर, मैसूर और शिलांग तथा इनसे जुड़े चार डेमांस्ट्रेशन विद्यालयों और क्षेत्रीय सलाहकारों के कार्यालयों के प्रति जिन्होंने महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया।

पाठ्यचर्या समूह

प्रो. जगमोहन सिंह राजपूत
अध्यक्ष

प्रो. रामदुलार शुक्ल
सदस्य

प्रो. राजेंद्र दीक्षित
सदस्य

प्रो. (श्रीमती) सविता सिन्हा
सदस्य

प्रो. कृष्णकांत वशिष्ठ
सदस्य

प्रो. ओंकार सिंह देवल
सदस्य

प्रो. विजय रैना
सदस्य-संयोजक

हिंदी रूपांतर

निरंजन कुमार सिंह
रमेश दवे

भारत का संविधान

भाग 4अ

नागरिकों के मूल कर्त्तव्य

अनुच्छेद 51अ

मूल कर्त्तव्य–भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह–

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे,

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में सँजोए रखे और उनका पालन करे,

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे,

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे,

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हो,

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे,

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे,

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे,

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे, और

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू सके।

विषय-सूची

प्राक्कथन iii

आभार vii

1. संदर्भ और सरोकार 1

1.1 सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ 2

1.2 विद्यालयी शिक्षा का परिदृश्य 4

1.3 पाठ्यचर्या-विकास : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य 6

1.4 पाठ्यचर्या के सरोकार 8

1.5 शिक्षा एक आजीवन-प्रक्रिया के रूप में 31

1.6 अग्रणी और भावी पाठ्यचर्या की दिशा 31

1.7 पाठ्यचर्या विकास प्रक्रिया के प्रति दृष्टिकोण 32

2. प्रारंभिक और माध्यमिक स्तर पर पाठ्यचर्या संयोजन 33

2.1 मूल्य शिक्षा 34

2.2 समान केंद्रिक घटक 35

2.3 स्वदेशी पाठ्यचर्या की ओर 36

2.4 न्यूनतम अधिगम स्तर 37

2.5 शिक्षा के सामान्य उद्देश्य 39

2.6 शिक्षार्थी का परिचय/वृत्त 41

2.7 अध्ययन-योजना 44

2.8 विभिन्न स्तरों पर पाठ्यचर्या क्षेत्र 48

2.9 कार्य शिक्षा, कला शिक्षा, स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा : उच्च प्राथमिक और माध्यमिक स्तर 67

2.10 शिक्षण युक्तियाँ 73

2.11 शिक्षण का माध्यम 74

2.12 शिक्षण अवधि 74

2.13 मुक्त शिक्षण प्रणाली 75

3.	**उच्च माध्यमिक स्तर पर पाठ्यचर्या संयोजन**	**76**
3.1	संदर्भ	76
3.2	सेमेस्टरीकरण	80
3.3	पाठ्यचर्या संयोजन	81
3.4	अकादमिक धारा	82
3.5	अध्ययन योजना	82
3.6	शिक्षण युक्तियाँ	85
3.7	शिक्षण समय	85
3.8	व्यावसायिक धारा	86
3.9	अध्ययन योजना	88
3.10	शिक्षण युक्तियाँ	91
3.11	शिक्षण समय	93
3.12	मूल्यांकन और प्रमाणपत्रीकरण	93
3.13	मुक्त विद्यालयी शिक्षा व्यवस्था	93
4.	**मूल्यांकन**	**95**
4.1	वर्तमान मूल्यांकन प्रणाली	95
4.2	मूल्यांकन का उपयोग	97
4.3	मूल्यांकन की विशेषताएँ	98
4.4	विभिन्न स्तरों पर मूल्यांकन	98
4.5	स्तर संपोषण	101
4.6	वर्तमान प्रस्ताव	101
4.7	राष्ट्रीय मूल्यांकन संगठन	103
5.	**व्यवस्था का प्रबंधन**	**105**
5.1	पाठ्यचर्या विकास के लिए व्यवसायगत सहयोग	106
5.2	अध्यापक शिक्षा प्रणाली के लिए व्यावसायिक सहयोग	108
5.3	विद्यालयी शिक्षा में सूचना-संचार प्रौद्योगिकी का एकीकरण	111
5.4	व्यावसायिक शिक्षा का प्रबंधन	114
5.5	मूल्य-विकास के लिए शिक्षा	115
5.6	विशेष आवश्यकता वाले छात्रों के लिए कार्यनीतियों का क्रियान्वयन	118
5.7	मूल्यांकन कार्यनीतियों का क्रियान्वयन	119
5.8	मार्गदर्शन और परामर्श	123
5.9	संस्थागत और संगठनागत सुधार और हस्तक्षेप के साधन	124

1

संदर्भ और सरोकार

सही शिक्षा तो छात्र-छात्राओं में अंतर्निहित सर्वोत्तम गुणों को प्रकाशित करना है। केवल अव्यवस्थित और अवांछित सूचनाएँ विद्यार्थियों के दिमाग में भर देने से ऐसा कभी नहीं हो सकता। यह तो उनके मन पर निष्प्राण बोझ बन कर उनकी समग्र मौलिकता को नष्ट कर देता है और उन्हें यंत्रवत् बना देता है।

महात्मा गांधी (*हरिजन*, 1 दिसंबर 1933)

एक प्रबुद्ध, सुदृढ़ और संपन्न राष्ट्र के निर्माण का दायित्व उन बच्चों के कंधों पर है जिन्हें विकसित करने के लिए संवेदनशीलता, कोमलता और सावधानी की आवश्यकता है। शिक्षा ने सदैव ऐसी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है और इस प्रकार शिक्षा मानवीय-समाजों की स्वाभाविक विशेषता के रूप में उभरी है। समाजों के विकास के सभी चरणों में शिक्षा ने ही तो उनकी नियति के निर्माण में योगदान किया है और यही कारण है कि शिक्षा सतत जारी रही और उसका विकास कभी अवरुद्ध नहीं हुआ। मानवता के सर्वोत्तम आदर्शों का प्रकाश-स्तंभ शिक्षा ही रही है। इस दृष्टि से सामाजिक परिवर्तन का एक घटक होने के नाते शिक्षा ही समाज के सांस्कृतिक लोकाचारों, आकांक्षाओं और सरोकारों को प्रतिबिंबित करती है।

भारत में एक उन्नत शिक्षा-प्रणाली विद्यमान थी और विश्व के प्रथम विश्वविद्यालय भी यहीं बने जो दर्शन और धर्म पर आधारित शिक्षा का जहाँ एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते थे, वहीं गणित, इतिहास, खगोलशास्त्र, समुद्री व्यापार और यहाँ तक कि आर्थिक सिद्धांतों और लोक प्रशासन के अध्ययन पर भी ज़ोर देते थे। *छांदोग्य उपनिषद* (अध्याय 7 खंड 1) में 18 विभिन्न विषयों का समावेश है जिनमें प्राकृतिक आपदा प्रबंधन, खनिज विज्ञान, भाषा विज्ञान, तत्वों का विज्ञान, प्रतिरक्षा विज्ञान आदि सम्मिलित हैं।

भारतीय शिक्षा के इतिहास से यह तथ्य प्रकट होता है कि भारत में विविधता की महान परंपरा, सहिष्णुता और मानवता से प्रेरित होकर विभिन्न सांस्कृतिक और धार्मिक समूहों ने अपनी-अपनी विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप स्वयं अपनी शिक्षण संस्थाएँ स्थापित कीं।

उनमें से कुछ भले ही धार्मिक प्रकृति की थीं, किंतु अन्य संस्थाएँ थोड़ी-बहुत व्यावसायिक शिक्षा भी प्रदान करती थीं। धार्मिक संस्थाएँ व्यक्ति के संपूर्ण विकास की शिक्षा पर बल देती थीं जिसमें शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास निहित था। पवित्रता और धर्मप्रियता की भावना पैदा करना, चरित्र निर्माण करना, व्यक्तित्व का विकास करना, नागरिक एवं सामाजिक कर्त्तव्यों के प्रति आदर पैदा करना, सामाजिक-कुशलता का निर्माण करना और राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण और प्रसार करना भारतीय शिक्षा के मुख्य विषय थे। ब्रिटिश अभिलेखों के अनुसार उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में ही जातिगत और धार्मिक भेदभाव से मुक्त विस्तृत शिक्षा प्रणाली भारत में थी और प्रायः सभी गाँवों में शालाएँ थीं।

इसके पश्चात् अंग्रेज़ों ने अपनी शिक्षा प्रणाली लागू की जिसमें ऐसी संस्थाओं के लिए अनुदान का प्रावधान था जो अंग्रेज़ी प्रणाली की शिक्षा दें ताकि इस प्रकार शिक्षित लोगों को ब्रिटिश शासन में सरकारी नौकरी देकर शामिल किया जा सके। इस शिक्षा पद्धति में देश में विद्यमान ज्ञान, अभिवृत्ति और हुनर को उपयोगी न मान कर उन्हें पूरी तरह से निरस्त कर दिया गया। इस प्रकार स्वदेशी शिक्षा व्यवस्था को बड़ा धक्का लगा। अंग्रेज़ी शिक्षा प्रणाली ने भारतीय शिक्षा को अपनी परंपरा से उपलब्ध चिंतन, बुद्धि, विश्वास और मूल्यपरक व्यवस्था से काट कर अलग-थलग कर दिया।

विद्यालयी शिक्षा हाल के वर्षों में संपूर्ण शिक्षा-व्यवस्था के एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में उभरी है, जिससे यह अपेक्षा की गई है कि वह व्यक्ति और राष्ट्र दोनों की विकास-प्रक्रिया में महत्वपूर्ण योगदान दे। यह कार्य प्रभावशाली ढंग से करने के लिए विद्यालयी शिक्षा प्रणाली की लगातार समीक्षा करना और उसे अद्यतन बनाना आवश्यक है। पाठ्यचर्या की रचना इस नवीनीकरण प्रक्रिया का आधार है और उसे समाज में घटित होने वाले विभिन्न परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए गुणात्मक विकास के लिए एक सतत खोज के रूप में देखना होगा। एक सार्थक पाठ्यचर्या को देश के सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों के प्रति उत्तरदायी होना पड़ेगा।

1.1 सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ

दुनिया भर की संस्कृतियों में सर्वाधिक समय तक जीवंत रह कर निरंतर विकासोन्मुखी विशेषता के साथ भारत एक बहुसांस्कृतिक और बहुभाषिक समाज है जिसमें अटूट एकता के ऐसे अजस्र स्रोत हैं जो कभी नहीं सूखते। इसकी सामाजिक बुनियाद ऐसी सुदृढ़ चट्टानों से बनी लगती है जो युगों-युगों से भूकंपीय झटकों को सह कर भी अडिग है। विविधता भारतीय समाज की सामाजिक संरचना की मुख्य विशेषता है। जिस प्रकार प्राकृतिक जगत की रचना में असंख्य प्राणी और पेड़ होते हैं वैसे ही अनेक विश्वास, धर्म और जातियों के

लोग भौगोलिक विविधता से परिपूर्ण इस विशाल देश में बसे हुए हैं। भारत के भिन्न-भिन्न जातीय समूह अंतर-संबंधों की कड़ियाँ रचते हैं और अंतःक्रिया के जटिल कार्यों का निर्माण करने के दौरान एक दूसरे से होड़ भी करते हैं और सहयोग भी करते हैं। इस प्रकार भारतीय संस्कृति एक जीवंत प्रक्रिया है जिसमें विभिन्न विचार और जीवन शैलियाँ आकर एकाकार होती हैं और सार्वदेशिक रूप ग्रहण कर लेती हैं। इस प्रक्रिया ने एक समृद्ध कोलाज रचा है जो 'विविधता में एकता और एकता में विविधता' के रूप में प्रत्यक्ष दिखाई देता है। यही दीर्घ परंपरा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्राप्त होती जाती है जो निरंतरता और परिवर्तन की द्योतक है। कालांतर में इसकी पश्चिमी लोकाचारों से जो टकराहट हुई उसके कारण इस सांस्कृतिक निरंतरता की जीवंत प्रक्रिया में भी अवरोध पैदा हुआ।

भारत को भौतिक, ऐंद्रिय और आध्यात्मिक रूप से आत्मतुष्टि के स्रोत के रूप में देखे जाने की परंपरा रही है, जिसमें मुख्य रूप से वह कृषक-समाज है जिसकी सामाजिक रचना के मूल में आत्मनिर्भरता, संतोष और प्रत्येक गाँव में कार्य करने की स्वायत्तता पर ज़ोर दिया गया था। हस्तक्षेप-रहित और अनाक्रमणता के सिद्धांतों पर भी ज़ोर रहा। देश की आर्थिक संरचना संसाधनों के वितरण के बुनियादी सिद्धांतों पर रची गई थी न कि आमदनी के वितरण पर। जो सामाजिक माप (मैट्रिक्स) बना वह आर्थिक रचना के अनुरूप और वितरण के अधिकार के सिद्धांतों पर आधारित था। यह अधिकार प्रत्येक ग्राम-इकाई को हासिल था। ऐसी सामाजिक रचना ने मनो-सामाजिक संबंधों की पहचान की, जैसे– सामाजिक संरचना के भीतर वित्तीय भूमिकाओं की जमावट, रोज़गार एवं शिक्षा। त्योहार समाज के आंतरिक संगठन के अभिन्न अंग के रूप में अत्यंत स्वाभाविक तरीके से मनाए जाते थे जिनमें व्यक्ति खुलकर भाग लेते थे और आनंद मनाते थे। धार्मिक और दार्शनिक लोकाचार आत्मज्ञान की प्राप्ति के मुख्य उद्देश्य से उसके आसपास केंद्रित रहते थे और उसमें इस बात की स्वतंत्रता थी कि व्यक्ति लोकहित में बिना किसी अपराध-बोध, भय या दंड के अपने 'स्व' अथवा निजत्व का समर्पण कर दे।

आज के भारतीय समाज का एक बड़ा हिस्सा इस धार्मिक और दार्शनिक लोकाचार, सामाजिक रचना की चेतना और अतीत की विरासत की समझ से दूर चला गया है। अलगाववयुक्त प्रौद्योगिकी लोकाचार से प्रभावित होकर माता-पिता और शैक्षिक संस्थाएँ केवल सूचना प्रौद्योगिकी आदि जैसा ज्ञान अर्जित करने पर ज़ोर देने लगी हैं। फिर भी यह पाश्चात्य प्रभाव केवल संभ्रांत समाज तक सीमित है और सामान्य जनसमूह इन विकासों के प्रति आज भी अनभिज्ञ-सा है। इस कारण एक नए प्रकार का विभाजन पैदा हो गया है जो ग्रामीण-शहरी, कृषक-औद्योगिक, समृद्ध-निर्धन और साक्षर-निरक्षर के रूप में तेज़ी से दिखाई दे रहा है। इस प्रकार भारतीय कृषि प्रधान समाज का संरचनात्मक अधिकार क्षेत्र भी डगमगा गया है।

औपचारिक कार्य प्रणाली में कोई भी व्यक्ति अपने अधिकार का प्रयोग उन लोगों पर भी कर सकता है जो उससे उम्र और सामाजिक संरचना में वरिष्ठ और बेहतर हों। एक कृषि प्रधान समाज में बाद की पीढ़ियाँ अपने पारंपरिक धंधों और पारिवारिक लक्ष्यों या मोटे तौर पर जातीय लक्ष्यों का ही अनुसरण करती थीं। आगे चल कर प्रौद्योगिकी विकास के नए व्यवसाय शुरू हुए और परिणामस्वरूप नए लक्ष्य बिंदुओं का उदय हुआ। संयुक्त और विस्तृत परिवार प्रणाली के विपरीत अब समाज में लघु परिवारों का चलन, माता-पिता दोनों के बजाय केवल माँ या केवल पिता, अविवाहित संबंध और ऐसी अनेक बातें दिख रही हैं। आधुनिक औपचारिक श्रम या कार्य रोज़गार संगठनों से सह-समूहों का जन्म हुआ और सहभागी कार्य-प्रणाली पैदा हुई। ब्रिटिश शिक्षा-प्रणाली, जो इस देश में आज़ादी के बाद तक भी जारी रही, ने इस प्रकार के तौर-तरीकों के विकास में काफ़ी योगदान दिया। यह हमारे कृषि-प्रधान समाज की कार्य-रचना के एकदम विपरीत था क्योंकि कृषि-प्रधान समाज में तो सादगी और टैक्नोलॉजी की शृंखलाबद्धता के कारण व्यक्ति सभी काम स्वयं ही पूरे कर सकते थे। सांस्कृतिक क्षेत्र में विधेयकों के ज़रिए बड़े-बड़े परिवर्तन लागू किए गए जिससे परंपरा से चली आ रही सामाजिक असमानता और शोषण को समाप्त करने तथा समाज के सभी सदस्यों को लोकतांत्रिक अधिकार एवं संवैधानिक सुविधाएँ प्रदान करने की दिशा में सहायता मिली।

सामान्यतया यह माना जाता है कि निर्धारित कार्य के लक्ष्यों को प्राप्त करने तथा सामाजिक समरसता स्थापित करने की दृष्टि से यथेष्ट गुणात्मक तथा व्यापक शिक्षा एक बहुत ही शक्तिशाली साधन है। कुछ महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय लक्ष्य हैं : पंथनिरपेक्षता, लोकतंत्र, समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व, न्याय, राष्ट्रीय एकता और देशभक्ति। शिक्षा का दायित्व है कि वह बच्चों में मानव अधिकारों और कर्त्तव्यों के प्रति सम्मान की भावना विकसित करे। निर्बल समुदाय जिनमें अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, महिलाएँ, विकलांग बच्चे और अल्पसंख्यक आते हैं, अब और देर तक सुविधावंचित नहीं रखे जा सकते। शिक्षा को चाहिए कि वह इस बड़ी ज़िम्मेदारी को निभाते हुए इन लोगों के उत्थान और सबलीकरण में योगदान दे।

1.2 विद्यालयी शिक्षा का परिदृश्य

गत अनेक दशकों से भारत में शैक्षिक विकास की मुख्य विशेषता यह रही है कि वह राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली विकसित करने की दिशा में लगातार प्रयत्नशील रही है। श्री अरविंद पहले ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने सन् 1910 में ही *राष्ट्रीय शिक्षा-व्यवस्था* का स्वप्न सँजोया था। उनका मुख्य ज़ोर मानव मस्तिष्क की प्रवृत्ति और शक्ति, मानसिक और तार्किक प्रवृत्तियों के विकास और साथ-साथ तथा अनवरत चलने वाले अध्यापन एवं प्रशिक्षण की प्रकृति पर था। गांधी जी की बुनियादी तालीम (बेसिक एजुकेशन), जिसकी परिकल्पना वर्धा योजना में की

गई थी, वह शक्तिशाली स्वदेशी भारतीय शिक्षा का एक ऐसा प्रतिमान था जिसकी जड़ें भारतीय भूमि में थीं। वर्धा योजना के अंतर्गत विकसित की गई पाठ्यचर्या में बच्चों के ऐसे संपूर्ण विकास का लक्ष्य निहित था जो गांधी दर्शन को परिलक्षित करता था जिसमें शरीर, मन और आत्मा का पूर्ण विकास हो। भारत इन पाठ्यचर्याओं को राष्ट्रीय पाठ्यक्रम के रूप में लागू नहीं कर सका। इस तथ्य से यह संकेत मिलता है कि उस समय की स्थापित शिक्षा संरचना और प्रचलित पाठ्यचर्या को बदलना जटिल और दुष्कर कार्य था।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में विद्यालयी शिक्षा विभिन्न चरणों से गुज़री है। स्वतंत्रता के तुरंत बाद *माध्यमिक शिक्षा आयोग* (1951-53) का गठन भारत सरकार ने किया और उस आयोग ने विद्यालयी शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए अनेक सिफ़ारिशें प्रस्तुत कीं। 1964-66 में एक *शिक्षा आयोग* गठित किया गया, जिसने शिक्षा के सभी आयामों और स्तरों को व्यापक रूप से शामिल करते हुए एक अधिक समग्र दस्तावेज़ तैयार किया। यह *शिक्षा आयोग* भारत की आधुनिक शिक्षा प्रणाली में एक मील का पत्थर था। इस आयोग की अनेक सिफ़ारिशों को राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 का आधार बनाया गया। विद्यालयी शिक्षा में सुधार की दृष्टि से इस नीति के अनुसार महत्त्वपूर्ण कदम थे : कॉमन विद्यालय प्रणाली के लिए सहमति अर्थात् 10+2 की प्रणाली को स्वीकार करना और पूरे देश में समान रूप से दस वर्षीय शिक्षा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 में बल दिया गया था कि "शिक्षा प्रणाली में ऐसा आमूलचूल परिवर्तन हो ताकि वह अधिक आत्मीय ढंग से लोगों के साथ जुड़े, लोगों के शैक्षिक अवसरों का विस्तार करे, सभी स्तरों पर शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए अनवरत और गंभीर प्रयास करे, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास पर ज़ोर दे और नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों के विकास के प्रति जागरूकता पैदा करे।" इसके पश्चात् राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986), संशोधित 1992 में सामान्य शैक्षिक संरचना (10+2+3) पर आधारित राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली विकसित करने पर ज़ोर दिया गया जिसके अनुसार शिक्षा के प्रत्येक स्तर के लिए न्यूनतम अधिगम स्तर तय करना और एक राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा बनाना आवश्यक था। इस प्रकार देश में पहली बार इस नीति के क्रियान्वयन की एक विस्तृत कार्य योजना (पी.ओ.ए. 1992) तैयार की गई जिसमें संस्थागत और वित्तीय सहायता के लिए स्पष्ट उत्तरदायित्व भी निर्धारित किए गए। लेकिन स्पष्ट है कि इन दस्तावेज़ों में निर्धारित लक्ष्यों को उपलब्ध करने के लिए हमारे प्रयास नाकाम सिद्ध हुए। यद्यपि अनेक क्षेत्रों में देश की उपलब्धियाँ संख्यात्मक दृष्टि से काफ़ी महत्त्वपूर्ण रहीं फिर भी वास्तविक रूप से आगे जाने के लिए ये प्रयास पर्याप्त नहीं रहे हैं। चौदह वर्ष की आयु तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के संवैधानिक प्रावधान के बावजूद प्रारंभिक शिक्षा के सार्वजनीकरण का लक्ष्य अभी तक प्राप्त नहीं हो पाया है। सार्वजनीन प्रारंभिक शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भारत के सामने आज भी चुनौतियाँ तो वे ही होंगी, जैसे– पहुँच के भीतर विद्यालय,

अधूरी पढ़ाई छोड़ने पर नियंत्रण, सीखने की उपलब्धियों को अपेक्षित गुणवत्ता स्तर के अनुरूप उन्नत करना और विभिन्न राज्यों और समूहों के बीच शैक्षिक परिणामों की असमानताओं को दूर करना। आज भी देश शैक्षिक उपलब्धि की उस सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मंज़िल तक नहीं पहुँच सका है जहाँ पहुँच कर लाभ अधिकतम हो और आर्थिक विकास दर भी बनी रहे।

1.3 पाठ्यचर्या-विकास : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

गत चार दशकों के दौरान विद्यालयी पाठ्यचर्या के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण बात यह हुई है कि पाठ्यचर्या विकास, पाठ्यक्रम रचना और पाठ्यपुस्तक एवं उनके मूल्यांकन सहित शिक्षण सामग्री निर्माण का व्यवसायीकरण हुआ है। एन.सी.ई.आर.टी. विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में राष्ट्रीय स्तर पर एक अग्रणी अभिकरण के रूप में उभरी है। पाठ्यचर्या-विकास और पाठ्यपुस्तक-रचना की प्रक्रिया में उसे सीधे-सीधे संलग्न किया गया है। राज्य/केंद्र शासित क्षेत्रों के स्तर पर पाठ्यचर्या-निर्माण और पाठ्यपुस्तक-रचना से संबंधित तकनीकी और शोध सहयोग प्रदान करने के लिए धीरे-धीरे इस प्रक्रिया का अनुसरण राज्य शिक्षा संस्थानों, पाठ्यपुस्तक मंडलों और राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषदों की स्थापना के द्वारा किया जाने लगा।

एन.सी.ई.आर.टी. ने 1975 में *दस वर्षीय विद्यालय के लिए पाठ्यचर्या : एक रूपरेखा* और 1976 में *हायर सेकेंडरी एजुकेशन एंड इट्स वोकेशनलाईजेशन* प्रकाशित करके विद्यालयी शिक्षा की पुनर्रचना और *शिक्षा आयोग* (1964-66) द्वारा अनुशंसित 10+2 प्रणाली को अपनाने के प्रयासों को ठोस रूप दिया। इसके पश्चात् तत्संबंधी पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें तैयार कीं जो राज्यों और केंद्र शासित क्षेत्रों में आदर्श के रूप में इस्तेमाल की गईं। *दस वर्षीय विद्यालय के लिए पाठ्यचर्या : एक रूपरेखा* (1975) में पर्यावरणीय अध्ययन, विज्ञान और गणित को प्राथमिक स्तर की सामान्य शिक्षा में शामिल करने के लिए प्रेरित किया। नई पाठ्यचर्या को लागू करने के साथ विज्ञान-शिक्षण को अद्यतन रूप देने के लिए आवश्यक क्रियाकलाप आधारित शिक्षण-सामग्री विकसित की गई जो धीरे-धीरे राष्ट्रीय स्तर पर स्कूली बच्चों में विज्ञान-शिक्षा को लोकप्रिय बनाने में कारगर सिद्ध हुई।

सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक पहलुओं के साथ-साथ कुछ महत्त्वपूर्ण शिक्षाशास्त्रीय सरोकारों को शामिल करते हुए जिन मुख्य विषयों और सिफ़ारिशों पर *राष्ट्रीय शिक्षा नीति* (1986) और *कार्य योजना* (अगस्त, 1986) ने विशेष बल दिया था, उनको एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा 1988 में तैयार की गई *प्रारंभिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम : एक रूपरेखा* में संबोधित किया गया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में जिन शिक्षाशास्त्रीय मुद्दों पर विशेष ज़ोर दिया गया था उनको भी पर्याप्त रूप से (1988) की पाठ्यचर्या में प्रतिबिंबित किया गया। सतत और समग्र मूल्यांकन के साथ-साथ मीडिया और शैक्षिक प्रौद्योगिकी के उपयोग पर भी बल दिया गया। कुल मिला कर यह कहा जा सकता है कि 1988 की पाठ्यचर्या-रूपरेखा ने समान स्तरों को सुनिश्चित करते हुए विद्यालयी शिक्षा की एक राष्ट्रीय प्रणाली विकसित करने में योगदान किया। इसके अतिरिक्त जो लक्ष्य भारतीय संविधान में निर्धारित किए गए थे उन्हें प्राप्त करने को भी 1988 की पाठ्यचर्या-रूपरेखा में महत्त्वपूर्ण उद्देश्य बनाया गया। जिस प्रकार 1975 में हुआ था, वैसे ही विद्यालयी शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिए विस्तृत पाठ्यक्रम तैयार करने के उद्देश्य से समग्र रूप से दिशा-निर्देश पुनः विकसित किए गए। राज्य सरकारों ने भी अपने-अपने राज्यों में पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और शिक्षण-सामग्री तैयार करने के लिए कदम उठाए।

1988 की पाठ्यचर्या-रूपरेखा की बुनियादी विशेषताएँ और मुख्य बल-बिंदुओं का उद्गम *राष्ट्रीय शिक्षा नीति* (एन.पी.ई. 1986) और *कार्य योजना* (पी.ओ.ए. 1986) का दस्तावेज़ ही है। विभिन्न महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों के क्रियान्वयन की समीक्षा करने पर यह लगता है कि अभी भी बहुत कुछ करना बाकी है। अनेक महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में से कुछ बिंदुओं को ही लागू किया जा सका और वह भी सीमित रूप में। केंद्र प्रवर्तित 'ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड योजना' के अंतर्गत जो विज्ञान-किट्स, संगीत वाद्य उपकरण आदि एक समय सहयोग के रूप में दिए गए थे वे भी सीमित प्रभाव ही डाल सके। स्पष्ट है कि नीति निर्माताओं द्वारा शिक्षा की जिस राष्ट्रीय प्रणाली को विकसित करने के प्रयास किए गए थे उन्हें आगे और भी शक्तिशाली तथा कारगर बनाना होगा।

विगत एक दशक में मानवीय प्रयास के प्रत्येक क्षेत्र में जो परिवर्तन हुए और जिनका प्रभाव पड़ा वे गत पाँच-छह दशकों की तुलना में कहीं अधिक प्रभावशाली रहे। शैक्षिक और सामाजिक माँगों में भी परिवर्तन आया। सच पूछा जाए तो शिक्षण और अधिगम, दोनों तत्वों का कायाकल्प हो गया। भारत एवं अनेक देशों ने अपनी-अपनी शिक्षा प्रणाली की तटस्थ आलोचनात्मक समीक्षा की और वे एक सच्चे तथ्य और स्पष्ट आकलन के साथ सामने आए। *द चैलेंज ऑफ़ एजुकेशन* (भारत, 1985), *ए नेशन एट रिस्क* (संयुक्त राज्य अमेरिका, 1983) और *लर्निंग टू सक्सीड* (यूनाइटेड किंगडम, 1993) के माध्यम से अपनी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का गंभीर विश्लेषण किया गया। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यूनेस्को द्वारा *लर्निंग : द ट्रेज़र विदिन* (1996) नामक दस्तावेज़ में शिक्षा के विश्व परिदृश्य की विवेचना की गई और अनेक दीर्घकालीन उपयोगी और सार्थक सुझाव दिए गए।

शिक्षा प्रणाली और शैक्षिक संरचना के अंतर्गत पाठ्यचर्या निर्माण की महत्त्वपूर्ण भूमिका

रहती है। यह भी सामान्य रूप से माना जाता है कि पाठ्यचर्या नवीकरण और निर्माण एक सतत जारी रहने वाली प्रक्रिया है और कोई देश इस मामले में धीमी गति नहीं अपना सकता। इसे तेज़ी से आगे बढ़ाना ही पड़ेगा। एक पाठ्यचर्या में शिक्षार्थी की आवश्यकताओं, समाजगत अपेक्षाओं, सामुदायिक आकांक्षाओं और अंतर्राष्ट्रीय तुलनीयता का अनिवार्य रूप से समावेश होना चाहिए। *राष्ट्रीय शिक्षा नीति* (1986) और *कार्य योजना* (1992) की तो समय-समय पर समीक्षाएँ हुई भी हैं, मगर ठीक इसके विपरीत *प्रारंभिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम : एक रूपरेखा* (1988) की उसके प्रकाशन के बाद से आज तक कभी कोई समीक्षा नहीं हुई और यही वज़ह है कि अब यह काम अत्यंत ज़रूरी माना गया। यह कार्य नवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002) के दस्तावेज़ (पृ. 123) में दी गई सिफ़ारिशों के अनुरूप भी है।

1.4 पाठ्यचर्या के सरोकार

पाठ्यचर्या-निर्माण आवश्यक रूप से एक अंतहीन प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत समाज में घटित होने वाले परिवर्तनों की दृष्टि से शिक्षा में गुणात्मक विकास की सतत खोज की जाती है। इस दृष्टि से यह कोई जड़ प्रक्रिया न होकर एक गतिशील आयाम है। एक सार्थक पाठ्यचर्या को समाज के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए और उसमें शिक्षार्थी की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं की झलक मिलनी चाहिए। यहाँ तक कि नई सहस्राब्दी में भी कुछ देशों के मुख्य सामाजिक सरोकार अपरिवर्तित बने रहेंगे क्योंकि पूर्व में उन सरोकारों को पर्याप्त रूप से क्रियान्वित नहीं किया जा सका। इसके अतिरिक्त अनेक नए सरोकारों का उदय देश और विश्व के तेज़ी से बदलते संदर्भों में हुआ है। पाठ्यचर्या को इस प्रकार की शिक्षा की रचना करनी होगी जो असमानता के विरुद्ध संघर्ष कर सके और शिक्षार्थी की सामाजिक, सांस्कृतिक, भावनात्मक और आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा कर सके। यह केवल संपूर्ण शैक्षिक प्रयासों में घटिया तत्वों या मामूली बातों को अपनाकर संभव नहीं हो सकता। उत्कृष्टता से कम अन्य कोई भी बात विद्यालयी शिक्षा में मान्य नहीं की जा सकती। अगर वर्तमान और भविष्य की बहुआयामी चुनौतियों का मुकाबला करना है तो उत्कृष्टता ही पहली ज़रूरत है। अन्य शब्दों में कहें तो पाठ्यचर्या के तीन आधार स्तंभ हैं– *प्रासंगिकता, समानता* और *उत्कृष्टता*।

1.4.1 समरसतापूर्ण समाज के लिए शिक्षा

आज़ादी की आधी सदी बीत जाने के बावजूद भारत आज भी अनेक प्रकार के पूर्वग्रहों और असंतुलनों, जैसे– ग्रामीण-शहरी, मालदार-गरीब और जाति, पंथ, विचारधारा, लिंग आदि के

भेदभाव से मुक्त होने के लिए संघर्ष कर रहा है। शिक्षा इन भेदभावों को कम करने और अंततः मिटाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हुए सभी को समान रूप से *गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए समान अवसर* प्रदान कर सकती है।

अवसर की समानता का अर्थ है यह सुनिश्चित करना कि प्रत्येक व्यक्ति को यथोचित शिक्षा इस गति और पद्धति से मिले जो उसके अनुरूप हो। इस दृष्टि से सुविधावंचित, सामाजिक भेदभाव के शिकार समूहों और शारीरिक रूप से चुनौतियों का सामना कर रहे बच्चों की शिक्षा पर खास ध्यान देना अनिवार्य है।

सभी को समानता के अवसर सुलभ कराने का प्रावधान ही पर्याप्त नहीं है बल्कि वांछित सफलता के लिए ऐसी स्थितियाँ भी बनानी होंगी जिनमें समानता को बढ़ाने पर विशेष बल हो। पुनः दोहराना उचित होगा कि पाठ्यचर्या में अंतर्निहित समानता की चेतना अनिवार्य रूप से उत्पन्न करते हुए उन पूर्वग्रहों और जटिलताओं को समाप्त करे, जो सामाजिक परिवेश और जाति विशेष में जन्म लेने से उन्हें सौंपी जाती रही हैं।

बालिकाओं की शिक्षा

लिंग के आधार पर समानता का अधिकार भारतीय संविधान के अनुसार मौलिक अधिकार है। राज्यों को भी इस प्रकार का अधिकार प्राप्त है कि वे सुविधावंचित जन-समूहों, जिनमें महिलाएँ शामिल हैं, को सकारात्मक और संरक्षणात्मक तरजीह देने के लिए इन समूहों के पक्ष में अपने अधिकारों का उपयोग करें। शिक्षा में जिन बातों पर ज़ोर दिया जा रहा है उनमें परिवर्तन हुआ है और 'शैक्षिक अवसरों की समानता' (एन.पी.ई. 1968) से 'महिलाओं की समानता और सबलीकरण की शिक्षा' (एन.पी.ई. 1986) पर अब ज़ोर दिया गया है। इसके परिणामस्वरूप पाठ्यचर्यागत और प्रशिक्षणगत कार्यनीतियों में बालिकाओं की शिक्षा पर अब अधिक ध्यान देना होगा। अधिक से अधिक बालिकाओं के लिए शिक्षा सुलभ कराने और खास तौर पर ग्रमीण बालिकाओं के लिए अतिरिक्त विद्यालयी-पाठ्यचर्या, पाठ्यपुस्तकों और उन्हें पढ़ाने की प्रक्रिया से सभी प्रकार के लैंगिक भेदभाव और लैंगिक पूर्वग्रह मिटाना अत्यंत आवश्यक है। इसके अलावा भारत की श्रेष्ठतम परंपरा के अनुसार स्त्री-पुरुष दोनों की श्रेष्ठतम विशेषताओं को मानना और उनका पोषण करना अत्यंत उपयुक्त होगा। आखिरकार भारत ही वह देश है जहाँ पश्चिमी देशों के विपरीत बिना किसी संघर्ष के स्त्रियों को शीघ्र मताधिकार दे दिया गया। अब तो इस बात की ज़रूरत है कि समान रूप से बालक-बालिकाओं दोनों को ध्यान में रखकर ऐसी प्रभावशाली पाठ्यचर्या-कार्यनीति विकसित और लागू करें जो ऐसे बालक-बालिकाओं की पीढ़ियों का पोषण करे, जो समान रूप से सक्षम हों, एक दूसरे के प्रति संवेदनशील हों और जो एक दूसरे की चिंता से जुड़ कर एक दूसरे के साथ समान रूप से भागीदार बनें, न कि एक दूसरे के विरुद्ध हों।

विशेष आवश्यकताओं वाले शिक्षार्थियों की शिक्षा

सिद्धांत और व्यवहार दोनों दृष्टियों से पाठ्यचर्या-योजना विद्यालयों में प्रभावशाली समेकन कार्यक्रम को प्रखर बनाकर रूपायित करने का साधन प्रदान करती है। इसके द्वारा उपयुक्त शैक्षिक उद्देश्यों, विषयवस्तु, शैक्षिक सामग्री, प्रविधि और मूल्यांकन प्रणाली की पहचान कर शिक्षण-अनुभवों के उत्थान और बच्चों के मन में मौजूद असंतुलनों को दूर करने के लिए समुचित प्रयास किए जाने चाहिए। मुख्य धारा से जुड़े सामान्य विद्यालयों में लचीली शैक्षिक प्रणाली उन्नत शैक्षिक अनुभवों की रचना में छात्रों की पृष्ठभूमि और योग्यता को बड़े पैमाने पर अपने में समेट लेती है। विशेष आवश्यकताओं वाले सभी छात्रों के लिए व्यक्तिशः शिक्षण के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए शैक्षिक अनुभवों को समेकित करने की दृष्टि से इकाई-अवधारणा की सिफ़ारिश एक सार्थक साधन के रूप में प्रस्तुत हुई है। पाठ्यचर्या योजना में वह कक्षा-सेवाओं, विशेष सहायता सेवाओं, सेवाकर्मी और पाठ्यचर्यागत गतिविधियों के बीच अंतर्संबंध स्थापित कर एक नए और प्रभावी कार्यक्रम की रचना होनी चाहिए जिससे सर्वाधिक विशिष्ट स्थितियों में भी पाठ्यक्रम समेकन में सुविधा हो।

विशेष आवश्यकता वाले छात्रों की विभिन्न आवश्यकताएँ होती हैं जिन पर गौर करना होगा। इन छात्रों को अपनी संपूर्ण विद्यालय अवधि में पाठ्यचर्या और व्यक्तिगत रूप से सिखाने वाली शिक्षण पद्धति तक आसानी से पहुँचने के अवसर मिलने चाहिए। शिक्षकों को निष्ठा के साथ ऐसे प्रयत्न करने होंगे जिनसे वे इन बच्चों से संबंध स्थापित कर आत्म-प्रेरित, आत्म-परिचालित और आत्म-नियंत्रित-शिक्षण हेतु वातावरण बना सकें। शिक्षण-सामग्री का निर्माण नवीन, उपयुक्त और अनुकूल स्थितियों की रचना करें जिससे विद्यालयों के वास्तविक या वैधानिक अलगाव के कारण सीधे शिक्षण-अनुभवों के अवसरों से वंचित लोगों को शैक्षणिक अनुभव प्राप्त हो सकें। व्यवस्था को चाहिए कि वह विशेष आवश्यकताओं वाले छात्रों और उनके माता-पिता का सबलीकरण सुनिश्चित करे और यह कार्य किया जा सकता है माता-पिता को भागीदार बनाकर, उन्हें प्रक्रिया में विभिन्न स्तरों पर शामिल करके, जो निर्णय लेने के स्तर से शुरू होकर मूल्यांकन योजना तक जारी रहे।

शिक्षा में समानता के लिए व्यक्तिपरक शिक्षण प्रविधि और व्यक्तिगत अभिरुचियों की सावधानीपूर्वक छानबीन करने की ज़रूरत है। वंचित, सुविधारहित और चुनौतीयुक्त बच्चों के अनुकूल, उपयुक्त और ऐसे छात्रों को अन्य छात्रों के बराबर स्तर पर लाने की दृष्टि से पूरक एवं उपचारात्मक उपाय करना आज एक केंद्रीय महत्त्व का विषय बन गया है।

सुविधावंचित समूहों के शिक्षार्थियों की शिक्षा

एक समरसतापूर्ण समाज के निर्माण के लिए ऐसे शिक्षार्थी समूहों की विशेष शैक्षिक ज़रूरतों

पर गौर करना ज़रूरी है जो अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के हैं। ऐसा करने के लिए आंशिक रूप से ही सही, मगर भाषाई विशिष्टताओं और शिक्षण-पद्धति संबंधी ज़रूरतों को ध्यान में रख कर जीवन के सामाजिक-सांस्कृतिक आयामों की चिंता करना आवश्यक है। बहुभाषी और बहु-सांस्कृतिक परिवेश की चिंता विशेष रूप से निर्धारित शिक्षण-प्रविधि के ज़रिए करनी होगी। पाठ्यचर्या का संदर्भीकरण पाठ्यसामग्री के माध्यम से ही संभव है। सुविधावंचित समूहों के मौलिक अधिकारों का पूरी चेतना के साथ पाठ्यचर्या में समावेश करना होगा। यायावर जनसंख्या (स्थान बदलते रहने वाली आबादी) की शिक्षा विशेष सघन शैक्षिक कार्यक्रमों के द्वारा करनी होगी जो राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के मुख्य तत्वों पर आधारित होगी।

होनहार और प्रतिभावान बच्चों की शिक्षा

समानता और उत्कृष्टता को प्रोत्साहित करने के लिए शिक्षा की दोहरी भूमिका है। मानव-संचेतना की समस्त सर्जनात्मक शक्तियों को प्रस्फुटित करने के लिए शिक्षा की ज़रूरत तेज़ी से बढ़ रही है। मनुष्य अपने आपको सृजन में और सृजन के माध्यम से ही पूर्ण महसूस करता है। इसी संदर्भ में होनहार एवं प्रतिभावान बच्चों की शिक्षा का महत्त्व बढ़ गया है। एक ओर जहाँ पाठ्यचर्यागत कार्यक्रमों के माध्यम से ऐसी प्रतिभाओं की पहचान करना आवश्यक है, वहीं दूसरी ओर इन कार्यक्रमों द्वारा बच्चों की विविधतापूर्ण सर्जनात्मक योग्यताओं के पोषण पर भी विशेष ध्यान देना होगा। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि ऐसी पहचान करके प्रतिभाओं का पोषण प्रारंभिक अवस्था से ही शुरू होता है। इसके साथ ही होनहार और प्रतिभावान बच्चों की पहचान केवल मानवीय गुणों पर आधारित न होकर बहुआयामी होगी और उसकी प्रक्रिया भी बड़ी व्यापक होगी। न केवल उनके बुद्धि-स्तर (आई.क्यू.) बल्कि संवेग-स्तर (ई. क्यू.) और आध्यात्मिक स्तर (एस.क्यू.) भी ध्यान में रखने होंगे। इसलिए होनहार एवं प्रतिभावान बच्चों की पहचान करने के लिए एक उपयुक्त कार्यतंत्र तैयार करना होगा।

राष्ट्र में सामाजिक समरसता प्राप्त करने के लिए युवा पीढ़ी में 'साथ-साथ जीने की कला सीखने' की भावना सुदृढ़ करने वाली शिक्षा अपरिहार्य है। भारतीय परंपरा में इस विचार के प्रति सम्मान व्यक्त करते हुए कहा गया है 'सहृदयासर्वभूतानाम्'। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर 'साथ-साथ जीना सीखने की कला' संबंधी यह विचार बड़े ज़ोरदार तरीके से डेलर्स कमीशन के प्रतिवेदन *लर्निंग : द ट्रेज़र विदिन* के माध्यम से व्यक्त हुआ है। साथ-साथ जीना सीखने के लिए यह सुनिश्चित करना ज़रूरी है कि समाज एवं समुदाय के अंदर मौजूद स्थितियों में और पूर्वग्रहों का सही किस्म के अनुभव प्रदान करते हुए बड़ी संवेदनशीलता और समझ के साथ निराकरण किया जाए।

1.4.2 राष्ट्रीय अस्मिता का सुदृढ़ीकरण और सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण

विद्यालयी पाठ्यक्रम से अपेक्षित है कि वह भारतीय सभ्यता का विश्व सभ्यता पर एवं विश्व सभ्यता का भारतीय सभ्यता के विचार एवं कर्म पर पड़ने वाले प्रभाव के सम्यक बोध के माध्यम से शिक्षार्थियों में भारतीय होने में गर्व करने की भावना का संचार और पोषण करे। राष्ट्रीय अस्मिता एवं एकता का सुदृढ़ीकरण भारत की सांस्कृतिक विरासत के अध्ययन के साथ गहराई से जुड़ा है, जो कि नाना प्रकार के रंग-रूपों से समृद्ध है। यहाँ आकर ही शिक्षा को दो प्रकार की भूमिका एक साथ निभानी है जिसमें परंपरा संरक्षण के साथ गतिशीलता निहित होगी। परिणामतः परिवर्तन-उन्मुखी प्रौद्योगिकी और देश की सांस्कृतिक परंपरा की निरंतरता के बीच सुंदर संश्लेषण एवं समन्वय लाया जा सकेगा। जहाँ एक तरफ शिक्षा को भूमंडलीय विश्व व्यवस्था की मदद करनी चाहिए वहीं दूसरी ओर शिक्षा ऐसी दिखाई देनी चाहिए कि वह राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रीय़ भावना और राष्ट्रीय पहचान के लिए आवश्यक राष्ट्रीय एकता को विकसित करने वाली बने। विद्यालयी पाठ्यचर्या राष्ट्रीय पहचान को समाहित करने वाली विशेष विषय-वस्तु की, वसुधैव कुटुंबकम् की भावना से युक्त देशभक्ति और राष्ट्रीयता की प्रबल भावना की, पंथ-रहित मानसिकता की और जाति, धर्म, विचारधारा, क्षेत्र, भाषा, लिंग आदि से उत्पन्न मतभेदों को सहन करने की क्षमता की किसी भी समय उपेक्षा या अवहेलना नहीं कर सकती। यह भी महत्त्वपूर्ण है कि दूसरे देशों के योगदान के साथ-साथ विश्व सभ्यता के लिए भारतीय योगदान का पाठ्यचर्या में समावेश हो। यह इसलिए भी बहुत ज़रूरी हो जाता है कि आज भी भारत में कई लोग ऐसे हैं जो यहाँ की प्रगति और उपलब्धियों, विशेषतः विज्ञान और प्रौद्योगिकी क्षेत्रों में की गई प्रगति से अनभिज्ञ हैं। वे न केवल अतीत की उपलब्धियों से अनभिज्ञ हैं, बल्कि स्वदेशी ज्ञान में निहित विराट शक्तियों, उसकी गहराई और प्रासंगिकता से भी अपरिचित हैं। राष्ट्र की एकता को सुदृढ़ बनाने की दृष्टि से यह आवश्यक है कि सांस्कृतिक विरासत, परंपरा और देश के विभिन्न जातीय एवं क्षेत्रीय समूहों के इतिहास और उनके योगदान को सही परिप्रेक्ष्य में पढ़ा और समझा जाए। इससे ही वास्तव में देश के बहुलतानिष्ठ समाज और उसकी सामासिक संस्कृति की प्रकृति को सही ढंग से समझने में मदद मिलेगी।

भारतीय स्वतंत्रता के संघर्ष की लंबी गाथा में राष्ट्रीय भावना और राष्ट्रीय पहचान का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसलिए विद्यालयी शिक्षा के सभी स्तरों पर स्वतंत्रता-संग्राम के अध्ययन का महत्त्व बना रहेगा। स्वतंत्रता के संघर्ष में देश के अलग-अलग भागों, उत्तर से दक्षिण और पश्चिम से पूर्व तक और साथ ही उत्तर-पूर्व के सभी क्षेत्रों एवं दूरस्थ द्वीपों के लोगों ने जो बलिदान किए हैं उनसे छात्रों को परिचित कराने के प्रयत्न जारी रखने होंगे।

1.4.3 स्वदेशी ज्ञान का समेकन और मानवता के लिए भारतीय योगदान

आज और यहाँ तक कि पहले से कहीं ज़्यादा भारतीय स्वदेशी ज्ञान प्रणाली को विश्वव्यापी

मान्यता मिली है। उदाहरण के लिए भारतीय चिकित्सा और मनोविज्ञान के क्षेत्र में आयुर्वेद को तुलनात्मक रूप से अधिक समग्र और पूर्ण माना जा रहा है। इस संदर्भ में यह बताना प्रासंगिक होगा कि ज्ञान के ऐसे परिक्षेत्र हैं जिन्हें 'समांतर', 'स्वदेशी', 'पारंपरिक' या 'सभ्यतागत' ज्ञान-प्रणाली कहा जा सकता है। ये विकासशील विश्व के उन समाजों से भी संबंधित हैं जिन्होंने अपनी ज्ञान प्रणाली को पाला-पोषा और परिभाषित करके उसका विभिन्न प्रकार के ज्ञान परिक्षेत्रों से नाता जोड़ दिया, जैसे—भूगर्भ विज्ञान, परिस्थिति विज्ञान, कृषि, स्वास्थ्य आदि।

शिक्षा को प्रासंगिक और सार्थक बनाने के लिए छात्रों के सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों से संबद्ध होना होगा। एक स्वदेशी भारतीय पाठ्यचर्या देश के महान विचारकों, जैसे—श्री अरविंद, विवेकानंद, दयानंद सरस्वती, महात्मा फुले, गांधी, रवींद्रनाथ ठाकुर, ज़ाकिर हुसैन, जे.कृष्णमूर्ति और गिजुभाई बधेका के विचारों के अनुरूप होगी। ऐसी पाठ्यचर्या उन नवाचारात्मक प्रयोगों और अनुभवों पर भरोसा करेगी जो स्वयं उसी के संदर्भों से प्रकट हुए हैं। इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ यह पुनः ज़ोर देकर कहा जा सकता है कि अन्य देशों के योगदान के साथ-साथ विश्व ज्ञान के क्षेत्र में भारत के योगदान से बहुत ही स्पष्ट रूप से सामान्य जन को अवगत कराना होगा। कितनी बड़ी विडंबना है कि हमारे बच्चे न्यूटन के बारे में तो जानते हैं लेकिन वे आर्यभट के बारे में कुछ नहीं जानते। वे कंप्यूटरों के बारे में तो जानते हैं लेकिन शून्य की अवधारणा के उद्भव और दशमलव प्रणाली के विकास के बारे में कुछ नहीं जानते। योग और योगिक क्रियाओं/अभ्यासों के साथ-साथ भारतीय चिकित्सा पद्धति, जैसे आयुर्वेद और यूनानी पद्धति, जो कि अब सारी दुनिया में मान्य होकर अपनाई जा रही है, का भी उल्लेख करना होगा। देश की पाठ्यचर्या में इस प्रकार की कमियों के असंतुलनों को ठीक करना ही पड़ेगा।

भारत की स्वदेशी ज्ञान प्रणाली की रक्षा हर हालत में करनी होगी और ऐसा उन समाजों और समूहों को सक्रिय सहायता देकर किया जा सकता है जो ज्ञान के पारंपरिक भंडार हैं, चाहे वे ग्रामीण लोग हों या आदिवासी, उनकी जीवन प्रणाली हो, उनकी भाषाएँ हों, उनके सामाजिक संगठन हों या वह पर्यावरण एवं परिवेश हो जिसके बीच वे रहते और जीते हैं। ऐसे ज्ञान को धूमिल पड़ने या मिटने से बचाने के लिए नवाचारात्मक तरीके अपनाने होंगे क्योंकि ऐसा ज्ञान अक्सर जिन लोगों के पास होता है, वह उनके बाद तिरोहित हो जाता है और इसलिए यही वह मुकाम है जहाँ आकर शिक्षा को बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करनी है। उतना ही महत्त्वपूर्ण यह भी है कि हम अंतर्दृष्टियों के समानांतरवाद के बीच एक ओर स्वदेशी ज्ञान-प्रणाली का गहराई से विश्लेषण करें और दूसरी ओर उन कतिपय आधुनिक विज्ञान और विचारों को भी परखें जो जीवन के बुनियादी तत्वों से जुड़े हैं। विभिन्न समाजों,

संस्कृतियों और सांस्कृतिक संदर्भों से पैदा होने वाले विचारों को अपनाने का स्वदेशीपन में कहीं कोई विरोध नहीं है।

1.4.4 भूमंडलीकरण के प्रभाव के प्रत्युत्तर में

नई सदी में देश को अनेक अपूर्व चुनौतियों का सामना करना है। उनमें से एक उदारीकरण की परिस्थितियों, निजीकरण और भूमंडलीकरण के वे प्रभाव हैं जिनका आज दुनिया के अनेक हिस्सों पर गहरा प्रभाव पड़ रहा है। भूमंडलीकरण तीव्र प्रगति से होने वाले महत्त्वपूर्ण प्रौद्योगिकी परिवर्तनों का एक परिणाम है और एक प्रकार का भू-राजनैतिक विकास है। यह उस प्रभावशाली विचारधारा का भी परिणाम है जिसका नियमन बाज़ार द्वारा किया जाता है। भूमंडलीकरण कुछ आवश्यक तत्वों के माध्यम से चरितार्थ होता है और ये तत्व हैं– समूची पृथ्वी पर व्याप्त बाज़ारवादी अर्थशास्त्र, तीव्रगति युक्त प्रौद्योगिकी नवाचार जिसमें संचार प्रणाली शामिल है और ऐसे तमाम आयाम जो एक दूसरे पर आंतरिक रूप से निर्भर करते हैं। भूमंडलीकरण के फलस्वरूप अधिकांश सार्वभौमिक किस्म की समस्याएँ किसी एक देश की सीमा-रेखा पर ही समाप्त नहीं होतीं बल्कि वे अपने विश्व-व्यापी समाधान की भी माँग करती हैं।

भूमंडलीकरण किसी भी तरह से शिक्षा का संपूर्ण कायाकल्प नहीं कर सकता। इसलिए शिक्षा को अपने पारंपरिक बुनियादी लक्ष्यों को नज़रअंदाज नहीं करना चाहिए, जैसे– पढ़ना, लिखना, गणित की जानकारी और कौशलों का विकास। भूमंडलीकरण लोगों के लिए ज्ञानयुक्त समाज में अधिक स्वायत्तता का मार्ग प्रशस्त कर सकता है जिसका मतलब यह हो सकता है कि विद्यालयों को अपने छात्रों में ऐसी क्षमता पैदा करनी होगी कि वे उपयुक्त ज्ञान अर्जित करें और नवीन मूल्यों को अपनाकर उनकी व्याख्या करें जो आगे चल कर उन्हें अपने विकासोन्मुखी पर्यावरण और परिवेश के साथ अद्यतन बने रहने की गारंटी देगा।

भूमंडलीकरण शिक्षा के माध्यम से सामाजिक कड़ियों को पुनः जोड़ने या बनाने की ज़रूरत को भी रेखांकित करेगा। यह काम वह दो स्तरों पर करेगा–औपचारिक विद्यालयों में भी और अनौपचारिक शिक्षा केंद्रों पर भी। इससे साथ-साथ रहने की इच्छा और फ़ायदों को टोलियों में काम करके और व्यक्तिगत योग्यताओं का विकास करके सीखा जाएगा। भूमंडलीकरण दूसरों की बातें धैर्यपूर्वक सुनने का गुण विकसित करेगा और राष्ट्रीय तथा वैश्विक घटनाओं से सीखने के मौके देगा। इससे आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक पर्यावरण की समझ भी बढ़ेगी। शिक्षा को एक ऐसे उत्प्रेरक की भूमिका अदा करनी होगी जिससे शिक्षण के माध्यम से यह सिखाया जाएगा कि लोग एक ओर तो अपने ही समाज में एक साथ रहने की इच्छा पूरी कर सकें और दूसरी ओर विश्व-ग्राम की कल्पना को भी स्वीकार सकें। इसके लिए

सार्वभौम मानवीय मूल्य, सहिष्णुता, मानव अधिकार, संस्कृतियों के बीच विविधता, दूसरों के प्रति सम्मान जैसी बातों के साथ सामाजिक-सरोकारों और व्यक्तिगत पवित्रता के बीच पर्यावरण और परिवेश में संतुलन रखना भी सिखाना होगा।

भूमंडलीकरण के मुख्य निहितार्थ 'सीखने वाले समाज' का विकास, सूचना और संचार के स्रोतों की अधिकाधिक संवृद्धि, अधिक लचीलेपन की आवश्यकता के साथ कार्य की प्रकृति का रूपांतरण, समूह में या मिलजुल कर काम करने की ज़रूरत और नई प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल होंगे। शैक्षिक प्रक्रियाओं के लिए भूमंडलीकरण से जो चुनौतियाँ पैदा होंगी उनका अर्थ शैक्षिक विषयवस्तु के चयन और वितरण पर पुनर्विचार, सूचना के नए स्रोतों का समेकन, ज्ञान के साथ-साथ दक्षता का विकास, विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक समूहों की आवश्यकताओं के अनुसार पाठ्यक्रमों का अनुकूलन और देश की राष्ट्रीय और सामाजिक समरसता का संरक्षण करना होगा। भूमंडलीकरण के संदर्भ में साथ-साथ रहने और काम करने तथा उनके लिए तरीके और साधन विकसित करने का बहुत महत्त्व है।

भूमंडलीकरण की समझ पुराने विषयों के लिए नई खोजों की ओर प्रवृत्त करेगी, जैसे– इतिहास, भूगोल और विदेशी भाषाएँ और पाठ्यचर्यागत ऐसे नए सरोकारों की शुरूआत करेगी, जैसे–सक्रिय नागरिकता और मानव अधिकार, पर्यावरणीय मुद्दे और सामान्य मूलभूत एवं सार्वभौम मूल्यों के प्रति आम सहमति को प्रोत्साहन।

1.4.5 सूचना और संचार प्रौद्योगिकी की चुनौतियों का सामना

नई प्रौद्योगिकी में क्रांति एक मूलभूत चुनौती है। यह सूचनात्मक समाज को ज्ञानात्मक समाज में बदल देगी। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी को संक्षेप में कहा जा सकता है कि वह दूरसंचार, दूरदर्शन और कंप्यूटरों का एक ही बिंदु पर मिलन है। नई प्रौद्योगिकी में इतनी अधिक क्षमता है कि वह शिक्षा में क्रांति ला देगी। यह विद्यालयों का नाटकीय रूपांतरण कर सकती है। यह उम्मीद की जाती है कि इससे औपचारिक शिक्षा और औपचारिक विद्यालय व्यवस्था का एकाधिकार इन संस्थाओं से बाहर प्राप्त किए गए ज्ञान और अनुभव के द्वारा समाप्त हो जाएगा। शिक्षक एक प्रोत्साहनदाता बन जाएगा और पुस्तकालयों का अधिक से अधिक उपयोग किया जाएगा। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी वर्तमान शैक्षिक प्रावधानों को प्रभावित कर उनका कायाकल्प करेगी, वर्तमान पाठ्यक्रमों को बदलेगी, नवीन शिक्षण-सामग्रियों का विकास करेगी और विद्यालयों का जाल बिछा देगी।

सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के समेकन की एक माँग यह होगी कि शिक्षा के योजनाकार वर्तमान शहरी कक्षाओं से ऊपर उठकर देखें। दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों में इलेक्ट्रॉनिक पर्यावरण में आकार का विस्तार करते हुए शैक्षिक योजनाओं को इस प्रकार अद्यतन बनाना होगा कि

कंप्यूटर का अध्ययन एक अधिक व्यापक विषय बन सके। इसका परिणाम सार्वभौम कंप्यूटर साक्षरता, कंप्यूटर की सहायता से शिक्षण और अंततः देश भर में कंप्यूटर आधारित शिक्षा के रूप में दिखाई देगा। वह केवल वर्तमान पाठ्यक्रम में समेकित ही नहीं किया जाए वरन् वह विद्यालयी प्रक्रिया का अभिन्न अंग बन जाए। मीडिया निर्माण और अंतर्क्रियात्मक वीडियो और मल्टीमीडिया सॉफ्टवेयर के क्षेत्र से संबंधित सभी नवाचारात्मक प्रयोग पाठ्यचर्या-निर्माण प्रक्रिया के आंतरिक और अभिन्न तत्व के रूप में देखे जाएँ न कि किसी बाहरी तत्व के रूप में। यह शिक्षकों को शिक्षा के नवीन अभिकल्पों को अपनाने के लिए बाध्य करेगी जो छात्रों को स्वतः खोज करने और चरणबद्ध तरीके से समस्या-समाधान (एल्गोरिदमिक) द्वारा कार्य योजनाओं पर इतना अधिकार प्राप्त करने में मदद करेगी कि वे नई समस्याओं के हल स्वयं खोज लेंगे। यह प्रणाली उन कार्य योजनाओं के ठीक विपरीत होगी जिनमें केवल निर्धारित ज्ञान की पृथक-पृथक इकाइयों में निपुणता प्राप्त करने का उद्देश्य रहता है।

सूचना और संचार प्रौद्योगिकी का प्रभाव केवल शिक्षण शैली पर ही नहीं पड़ेगा बल्कि यह सीखने की शैली भी बदल देगी। यह एक प्रकार से पारंपरिक रूप से सीखने के माहौल से अलग नवीन प्रणाली होगी। इससे एक ऐसे मूल्यपरक माहौल में पदार्पण होगा जहाँ खोज करने, समस्या हल करने और निर्णय लेने और निर्धारित कक्षा प्रणाली से हटना संभव होगा। दूसरी ओर इससे सहभागितापूर्ण शिक्षण प्रणाली में भागीदार बनने, विकेंद्रित एवं अंतर्क्रियात्मक समूह-शिक्षण पद्धति अपनाने जैसे नवाचारों को प्रोत्साहन मिलेगा। पारंपरिक शिक्षण प्रविधि ऐसी नवीन कार्य योजनाओं के लिए जगह बनाएगी जो ज्ञान का एकीकरण करेगी और निर्धारित ज्ञान पर अधिकार करने के बजाए अंश और पूर्ण के बीच मौजूद अंतर्संबंधों के जाल को समझने के लिए प्रेरित करेगी। यह एक कतार में क्रमबद्ध तर्क के साथ सीखने के बजाए प्रतिकृतियों (पैटर्न्स) और संबंधों की खोज करने और सूचनाओं का मात्र संग्रह करने के बजाए सूचनाओं के विश्लेषण की समझ पैदा करेगी। इस परिवर्तन के परिणामस्वरूप जिन कौशलों और योग्यताओं का विकास होगा उनका मूल्यांकन पारंपरिक जाँच या परीक्षण-प्रणाली से नहीं हो सकेगा और इसलिए उस प्रणाली को हटाकर छात्रों की उपलब्धियों का समग्र आकलन एवं मूल्यांकन करने की वह प्रणाली अपनानी होगी जो अवलोकनात्मक और स्थितिगत-जाँच पर आधारित होगी।

यहाँ एक सावधानी बरतना आवश्यक है। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के इस विराट विस्तार को भी न्यायोचित ढंग से निर्देशित करना होगा ताकि इस प्रणाली का उपयोग आवश्यकतानुसार हो और कक्षा में एवं कक्षा से बाहर सही स्वास्थ्यप्रद तरीके से हो। इसके कुछ नकारात्मक पक्षों को दूर करने के प्रभावी तरीके भी अपनाने होंगे, जैसे– कंप्यूटर की

लत, अशैक्षिक या अपशैक्षिक कार्यों में उसका उपयोग जिनसे आँखें खराब होती हैं और वह हमारे भौतिक रूप से उठने-बैठने के तरीकों को भी बिगाड़ता है। इसलिए कंप्यूटर-शिक्षा में इन सब बातों का सावधानीपूर्वक समावेश आवश्यक है।

1.4.6 जीवन-कौशलों से शिक्षा की संबद्धता

मोटे तौर पर शिक्षा छात्रों के जीवंत अनुभव और विषय-वस्तु के बीच मौजूद मूलभूत गहरे अंतर की शिकार रही है। शिक्षा का वास्तविक एवं आदर्श दायित्व है कि वह छात्रों को जीवन की चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार करे। इसके लिए ज़रूरी है कि शिक्षा विभिन्न जीवन-कौशलों से जुड़ी हो। वह ऐसी योग्यताएँ पैदा करे जो व्यक्ति को दैनिक जीवन की माँगों और चुनौतियों से प्रभावी ढंग से निबटने के काबिल बनाए और सकारात्मक व्यवहार के विकास में सहायक हो। वह ऐसे मूलभूत हुनरों को विकसित करे जो बड़े पैमाने पर विविधता के साथ स्वास्थ्य और सामाजिक आवश्यकताओं जैसे तत्वों से जुड़े हों। इन्हीं कौशलों के द्वारा छात्र नशीले पदार्थों की लत, हिंसा, किशोरावस्था में अवांछित गर्भधारण, एड्स एवं अन्य स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं जैसी उत्पन्न चुनौतियों का मुकाबला कर सकते हैं। ये कौशल छात्रों में ऐसे मुद्दों के प्रति भी चेतना पैदा करेंगे जो जीवन से जुड़े हैं, जैसे– उपभोक्ता-अधिकार, उपलब्ध उपभोक्ता-वस्तुओं की गुणवत्ता और उनसे जुड़ी सेवाओं पर प्रश्न खड़े करने का हौसला। उपभोक्ता-वस्तुओं के निर्माताओं या उत्पादकों को लिखकर शिकायत दर्ज़ करने की समझ और नागरिक-अधिकारियों को माल की गुणवत्ता और सेवाओं के बारे में यह लिखने की ज़िम्मेदारी कि दिया गया माल उनकी अपेक्षा के अनुरूप है या नहीं। इससे भी शिक्षार्थियों में बाज़ार चेतना आएगी। इसके अतिरिक्त नागरिक और प्रशासनिक प्रक्रियाओं के लिए विधि-साक्षरता और कानूनी समझ भी छात्रों को उपलब्ध कराई जाएगी ताकि उनका जीवन सरल, अराजकता-मुक्त और सुरक्षित बन सके।

इन जीवन-कौशलों की एक बड़ी विशेषता यह भी है कि वे समय-सापेक्ष भी हैं और स्थानिक भी। वे हमारे समय में आजमाए जाने योग्य भी हैं और कहीं भी किसी भी अवस्था में कारगर हैं। इसलिए इन कौशलों का जीवन संदर्भों से जुड़ना ज़रूरी है। कई ऐसे मूलभूत जीवन-कौशल हैं, जैसे– समस्या-निवारण, आलोचनात्मक सोच, संप्रेषण, आत्म-चेतना, तनाव से विचलित न होना, निर्णय लेना, सृजनात्मक चिंतन और विचारोत्पादक चिंतन, अंतर-वैयक्तिक संबंध और सहानुभूति या दूसरों की भावनाओं के साथ जुड़ना। सफलतापूर्वक जीने के लिए ये जीवन-कौशल बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं।

1.4.7 मूल्य विकास के लिए शिक्षा

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद गत पाँच दशकों से आवश्यक सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक

मूल्यों और गुणों का निरंतर ह्रास दिखाई दे रहा है और सभी स्तरों पर कटुता बढ़ी है। यद्यपि यह सही है कि आसपास व्याप्त उदासीनता के माहौल से विद्यालय भी अनछुए नहीं रहे हैं और वहाँ भी मूल्यों के प्रति अनादर पैदा हुआ है, फिर भी राष्ट्रीय मानस को निर्देशित करने के लिए उनकी प्रभावी भूमिका और दायित्व को कम नहीं माना जा सकता। विद्यालय ऐसा कर सकते हैं और उन्हें ऐसा करना भी चाहिए कि वे उन सार्वभौम और शाश्वत मूल्यों की पुनर्स्थापना के लिए प्रयत्नशील हों जो लोगों को एकता और एकीकरण की ओर उन्मुख करें और उन्हें इस काबिल बनाएँ कि वे अपने नैतिक और आध्यात्मिक विकास के साथ अपने भीतर मौजूद संपदा को महसूस कर सकें, समझ सकें। लोग यह महसूस करें कि 'वे हैं कौन' और 'मानव जीवन का अंतिम लक्ष्य क्या है?' समुचित मूल्य-शिक्षा के द्वारा उनमें आत्म-ज्ञान पैदा होगा जो आध्यात्मिक स्तर को अवचेतन से उठा कर पराचेतना की ओर ले जाने में सहायक होगा। मूल्य-आधारित शिक्षा इस देश को सभी प्रकार की कट्टरता, दुर्भावना, हिंसा, भाग्यवाद, बेईमानी, भ्रष्टाचार, शोषण और मादक पदार्थों की लत जैसी बुराइयों से लड़ने में सहयोग देगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) शिक्षा में समानता और सामाजिक न्याय, देश की अद्वितीय सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान, राष्ट्रीय-समरसता में योगदान, सहिष्णुता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और संविधान में निहित सरोकारों के प्रोत्साहन पर ज़ोर देती है। जस्टिस जे.एस. वर्मा समिति द्वारा नागरिकों के मौलिक कर्त्तव्यों के संबंध में जो सिफ़ारिशें की गई हैं वे मूलभूत मानवीय मूल्यों और सामाजिक न्याय के लिए संकल्प का मार्ग प्रशस्त करती हैं। *प्रारंभिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या : एक रूपरेखा* (1988) में निहित मूलभूत-तत्व वर्तमान परिदृश्य में और अधिक प्रासंगिक हैं। नागरिकों के दस मौलिक कर्त्तव्यों को संविधान में शामिल करने के लिए जो संविधान संशोधन किया गया वह इस बात का मूल्यवान संकेत हैं कि एक देश अपने नागरिकों से क्या अपेक्षाएँ करता है। इन तमाम बातों को विद्यालयी वातावरण सहित समूचे भारत की संपूर्ण विद्यालयी व्यवस्था में अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान मिलना ही चाहिए।

वर्ष 1988 में विद्यालयी पाठ्यक्रम की रचना इसलिए की गई थी कि छात्र राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ज्ञान अर्जित करने, अवधारणाएँ विकसित करने, समाज, संस्कृति, आर्थिक और पर्यावरणीय यथार्थ के अनुरूप मूल्यों को ग्रहण करने और उन्हें अपनाने के योग्य बन सकें। सामाजिक मूल्यों के उद्देश्य थे– मित्रतापूर्ण व्यवहार, सहयोगी-भावना, करुणा, आत्म-अनुशासन, साहस और सामाजिक न्याय के प्रति प्रेम आदि। सत्य, सदाचरण, शांति, प्रेम और अहिंसा ऐसे मूलभूत और सार्वभौम मूल्य हैं, जो फरवरी 1999 में भारतीय संसद में प्रस्तुत एस.बी. चह्वाण समिति की रिपोर्ट में निहित अनुशंसाओं के अनुसार सभी शैक्षिक

कार्यक्रमों को मूल्य-आधारित बनाने के लिए बुनियाद का काम कर सकते हैं। ये पाँच सार्वभौम मूल्य मानव-व्यक्तित्व के पाँच आयामों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो इस प्रकार हैं– बौद्धिक, भौतिक, भावनात्मक, मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक। ये आयाम "शिक्षा के पाँच प्रमुख उद्देश्यों–ज्ञान, कौशल, संतुलन, दृष्टि और अस्मिता से जुड़े हुए हैं" (26 फरवरी 1999 को राज्यसभा में मूल्य आधारित शिक्षा पर प्रस्तुत 81वीं रिपोर्ट का बिंदु क्रमांक 8)।

इसके अतिरिक्त विद्यालयों को चाहिए कि वे कुछ महत्त्वपूर्ण गुणों का भी विकास करें, जैसे– नियमितता और समय की पाबंदी, स्वच्छता, आत्मनियंत्रण, परिश्रमशीलता, कर्त्तव्यबोध, सेवाभावना, उत्तरदायित्व की भावना, उद्यमशीलता, सृजनात्मकता, बड़े पैमाने पर समानता के प्रति संवेदनशीलता, भाईचारे की भावना, लोकतांत्रिक दृष्टिकोण और पर्यावरण संरक्षण के प्रति निष्ठा का भाव।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण तत्व है धर्म जो त्वरित रूप से ध्यान देने योग्य है। यद्यपि धर्म आवश्यक मूल्यों के विकास का एकमात्र स्रोत तो नहीं है फिर भी मूल्य-विकास के लिए निश्चित ही वह मुख्य स्रोत है। आज जिस बात की ज़रूरत है वह है *धर्मों के बारे में शिक्षा।* उनके मूलभूत सिद्धांतों, उनमें अंतर्निहित मूल्यों और सभी धर्मों के दर्शनों के तुलनात्मक अध्ययन की शिक्षा न कि धार्मिक शिक्षा। इस भावना का शिक्षा में उपयुक्त स्तरों से, यहाँ तक कि प्राथमिक स्तर से प्रसार आरंभ करने की ज़रूरत है। छात्रों में यह चेतना उत्पन्न करनी होगी कि सभी धर्मों का सार तो एक ही है, केवल उनके पालन के तरीके अलग-अलग हैं। छात्रों में यह समझ भी पैदा करनी होगी कि अनेक क्षेत्रों में मतभेद होना स्वाभाविक है और मतभेदों के प्रति भी सम्मान रखना चाहिए। चह्वाण समिति (1999) दृढ़तापूर्वक यह आग्रह करती है कि सभी धर्मों की शिक्षा देना सामाजिक-समरसता और सामाजिक एवं धार्मिक सद्भाव के लिए एक महत्त्वपूर्ण उपकरण है। *यूनेस्को का शांति की संस्कृति के लिए अंतर-सांस्कृतिक संवाद और बहुलता का विभाग (डिपार्टमेंट फॉर इंटर-कल्चरल डायलॉग एंड प्लूरलिज़्म फॉर कल्चर ऑफ पीस)* भी 'आध्यात्मिक संकेंद्रण' की वकालत करता है और प्रस्तावित करता है कि सारी दुनिया में जहाँ पंथ के विषय में पंथों में स्वयं और इसी विषय पर उनकी अन्य पंथों से टकराहट आज आम स्थिति हो गई है, उसे समाप्त करने के लिए विभिन्न धार्मिक और आध्यात्मिक-परंपराओं के बीच संवाद स्थापित हो (जनवरी 2000)। इस विभाग का कहना है–"शैशवकाल से ही 'अन्य व्यक्तित्वों' का महत्त्व समझाया जाए। उनमें सहिष्णुता का मूल्य, आदर और दूसरों के प्रति विश्वास की भावना विकसित की जाए। इससे दूसरों के प्रति किए जाने वाले व्यवहार और दृष्टिकोण में परिवर्तन आएगा। उपयुक्त शैक्षिक साधनों के माध्यम से जो अंतर-सांस्कृतिक और अंतर-धार्मिक संवाद पर आधारित विशेष शिक्षण शुरू किया जाएगा उसे ऐसे मूल्यों में हिस्सेदारी के लिए आदान-प्रदान करने

योग्य और ऐसे ज्ञान के साधन के रूप में देखा जाएगा जिसमें सभी धर्मों और आध्यात्मिक परंपराओं के संदेश निहित होंगे और जिन्हें समान आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विरासत माना जाएगा।" फिर भी यहाँ बड़ी सावधानी की ज़रूरत है। धर्मों के बारे में शिक्षा अत्यंत सावधानीपूर्वक देनी होगी। ऐसे कदम पहले ही उठाने होंगे जो यह सुनिश्चित करें कि धर्मों के विषय में दी जाने वाली शिक्षा में कहीं कोई व्यक्तिगत पूर्वग्रह, मान्यताओं की कोई ऐसी संकीर्णता न आ जाए जो इसके उद्देश्य को ही विकृत कर दे। साथ ही यह भी देखना होगा कि धर्मों के बारे में शिक्षा के नाम पर रूढ़ियाँ, कट्टरता और अंधविश्वास जैसी बातें न पढ़ाई जाएँ। इसलिए सभी धर्मों के प्रति समान आदर का व्यवहार करना होगा (सर्वधर्म समभाव) और किसी भी पंथ के मूल पर कहीं भी कोई भेदभाव नहीं रखना होगा (पंथनिरपेक्षता)।

1.4.8 प्रारंभिक शिक्षा का लोकव्यापीकरण

भारतीय संविधान के अनुसार चौदह वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने के लिए देश प्रतिबद्ध है। गत पाँच दशकों से यह संकल्प लगभग सभी सरकारी दस्तावेज़ों में दोहराया जाता रहा है। सभी बच्चों के लिए शिक्षा में पहुँच सुलभ बनाने, सभी को शाला में दर्ज़ करने, सभी को शाला में बनाए रखने और शाला त्याग को रोकने (अर्थात् सार्वजनिक पहुँच, लोकव्यापी प्रवेश, लोकव्यापी निरंतरता और शाला त्याग पर नियंत्रण) के लिए किए जाने वाले प्रयत्नों पर बहुत ज़ोर दिया गया है। *सर्व शिक्षा अभियान* का शुभारंभ इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है। इसके लिए शिक्षा के क्षेत्र में सकल घरेलू उत्पाद (GDP) से अधिक धनराशि के आवंटन की आवश्यकता होगी। विकसित देश शासन के भाग के रूप में अपने सकल घरेलू उत्पाद का नौ से दस प्रतिशत शिक्षा पर व्यय करने की सामान्य स्थिति में पहुँच चुके हैं।

यदि महिलाओं को इस परिवर्तन का मुख्य माध्यम बनना है तो शिक्षा में पहुँच की सुलभता के लिए अवसर की समानता बहुत ज़रूरी है। परिवार के स्वास्थ्य पोषण और शिक्षा स्तर में सुधार के लिए तथा महिलाओं की निर्णय में भागीदारी की दृष्टि से उनकी शिक्षा अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। सामान्यतः छोटे बच्चों की शिक्षा और विशेषकर बालिकाओं की शिक्षा के लिए औपचारिक और अनौपचारिक दोनों ही क्षेत्रों में निवेश से समाज को बहुत ऊँचे सामाजिक और विकासात्मक लाभ मिलने की उम्मीद है।

सार्वजनिक प्रारंभिक शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए औपचारिक विद्यालयी व्यवस्था से अलग हटकर वैकल्पिक व्यवस्था को प्रोत्साहन दिया जा सकता है क्योंकि अंततः शिक्षा प्रणाली को छात्र की ज़रूरतों के अनुरूप ही बनना होगा। इसलिए अभी तक जो पहुँच से

वंचित रहे उन तक पहुँचने का मुद्दा एक बड़े सरोकार के रूप में उभरा है। इसके लिए ज़रूरत होगी, ऐसे नए प्रतिरूप बनाने की और उनकी वितरण व्यवस्था की जो विशेष समूहों की आवश्यकता-पूर्ति के लिए उपयुक्त होंगे और जिससे यह सुनिश्चित किया जा सकेगा कि देश के प्रत्येक छात्र को उच्च स्तर की बुनियादी शिक्षा दी जा रही है। प्रारंभ में सभी के लिए शिक्षा का अर्थ होगा ऐसी शिक्षा जिसमें आवश्यक जीवन कौशल विद्यमान हों और जो सभी की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम हो। यह भी प्रारंभिक शिक्षा के लोकव्यापीकरण के लिए एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण और चिंतनीय सरोकार है। इसका आशय पाठ्यक्रम से भी जुड़ा होगा अर्थात् इसके अंतर्गत सीखने की बुनियादी आवश्यकताओं की पहचान होगी, न्यूनतम आवश्यक सुविधाओं के लिए प्रावधान करना होगा और ऐसे सक्षम और सुयोग्य शिक्षक देने होंगे जो पाठ्यक्रम को सही ढंग से लागू करके बच्चों के बहुआयामी विकास को सुनिश्चित कर सकें। जहाँ कुछ सार्वभौम प्रकृति की पूर्व से ही पहचानी गई ऐसी क्षमताएँ होंगी जिन्हें सभी बच्चों को अर्जित करना होगा, वहीं विभिन्न संदर्भों में जीवन की विशेष स्थानीय चुनौतियों का सामना करने के लिए कुछ क्षमताओं को अलग से पहचानने की गुंजाइश भी होगी।

माता-पिता की शिक्षा और समुदाय की शिक्षा में भागीदारी, ये दो तत्व प्रारंभिक शिक्षा के लोकव्यापीकरण के लक्ष्य को हासिल करने की दृष्टि से पाठ्यक्रम निर्माताओं, योजनाकारों और प्रारंभिक शिक्षा की गुणवत्ता से जुड़े लोगों के लिए ध्यान देने योग्य विषय होंगे। आज जबकि संविधान संशोधन के द्वारा पंचायती राज संस्थाओं की प्रारंभिक शिक्षा में भागीदारी सुनिश्चित कर दी गई है, यह वांछनीय होगा कि प्रारंभिक शिक्षा को सुसंगठित करके कारगर बनाया जाए।

इस प्रकार उपयुक्त योजना निर्माण और प्रभावशाली क्रियान्वयन *सभी के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा* उपलब्ध कराने का मूलमंत्र है जो कि प्रारंभिक शिक्षा के लोकव्यापीकरण का भी लक्ष्य है। प्रारंभिक स्तर के बच्चों को समुचित दृष्टिकोण और मूल्यों के साथ कौशल-संपन्न बनाना ज़रूरी है ताकि वे ऐसे सामाजिक व्यक्तियों के रूप में उठ सकें जो स्वयं अपने लिए और अपने समाज के लिए योगदान करने में सक्षम हों और जीवन भर सीखने के लिए तत्पर रहें। जहाँ सभी अकादमिक क्षेत्रों में संयुक्त और संगठित प्रयासों की आवश्यकता है वहीं प्रारंभिक शिक्षा के लोकव्यापीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए ठोस और दृढ़ राजनैतिक और प्रशासनिक संकल्प एवं इच्छाशक्ति की आवश्यकता है।

1.4.9 वैकल्पिक और मुक्त विद्यालयी व्यवस्था

वैकल्पिक विद्यालय प्रणाली में शामिल हैं—अनौपचारिक शिक्षा, पत्राचार शिक्षा और अन्य वे तमाम लचीली प्रणालियाँ जिनका संचालन सरकार और गैर-सरकारी संगठन कर रहे हैं।

अनौपचारिक शिक्षा छह से चौदह वर्ष के आयुवर्ग के ऐसे छात्रों पर ध्यान देती है जो या तो कहीं भर्ती ही नहीं हुए हैं या शिक्षा पूरी करने के पहले ही विद्यालय छोड़ चुके हैं। यद्यपि इस दिशा में विगत कुछ दशकों में काफी प्रगति हुई है फिर भी प्रारंभिक शिक्षा के लोकव्यापीकरण के राष्ट्रीय लक्ष्य को हासिल करने के लिए बहुत अधिक प्रयत्न की ज़रूरत है। शिक्षार्थियों की प्रवेश संख्या बढ़ना मात्र ही पर्याप्त नहीं है, वरन् इन छात्रों को शिक्षा में बनाए रखना और उन्हें सीखने के सार्थक अनुभव प्रदान करना भी बहुत महत्त्व का विषय है।

मुक्त विद्यालय की धारणा भी अब परिपक्व हो गई है। एक राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय दिल्ली में स्थित है। राज्यों में भी अन्य मुक्त विद्यालय हैं। ये सभी मुक्त विद्यालय प्रारंभिक, माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्तर की शिक्षा दे रहे हैं। इन मुक्त विद्यालयों का विस्तार करके उन्हें साधन-संपन्न बनाना होगा ताकि ये विद्यालय बड़ी संख्या में उपलब्ध शिक्षार्थियों, जो कि सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक या अन्य किसी भी कारण से विद्यालय से वंचित रह गए हैं या जिन्हें विद्यालय बीच में ही छोड़ना पड़ा है, तक शिक्षा का प्रसार कर सकें। जो बच्चे अपनी माताओं, वरिष्ठ या सेवानिवृत्त शिक्षकों और समुदाय के ऐसे ही अन्य सदस्यों के माध्यम से निजी-स्तर पर पढ़ते हैं उनके लिए बहुआयामी प्रवेश प्रणाली लागू करनी होगी। इसके लिए इसी उद्देश्य से स्थापित किए गए विशेष मूल्यांकन केंद्रों द्वारा प्रमाणपत्रीकरण करना भी ज़रूरी होगा। मुक्त शिक्षण और वैकल्पिक स्कूलिंग्स दोनों ही लचीलेपन और छात्र की स्वायत्तता को प्रोत्साहित करती हैं और शैक्षिक तथा प्रशासनिक कठोरता के बजाय छात्र की सीखने संबंधी सुविधा पर विशेष ध्यान देती हैं।

मुक्त विद्यालय प्रणाली में शिक्षार्थियों पर अधिक उम्र का प्रतिबंध नहीं होता । एक बड़ी तादाद में पंद्रह से पैंतीस आयुवर्ग के छात्र इस प्रणाली में हैं। इस आधार पर मुक्त विद्यालय और वैकल्पिक विद्यालय की व्यवस्था छह से चौदह और पंद्रह से पैंतीस आयुवर्गों के छात्रों के लिए बड़े पैमाने पर करनी होगी ताकि बहुत बड़ी संख्या में जो छात्र विद्यालय से बाहर हैं उन्हें शैक्षिक अवसर मिल सके। संज्ञानात्मक परिक्षेत्र में अध्ययन-योजना और अकादमिक-स्तर वैकल्पिक और मुक्त स्कूलिंग में भी वैसे ही होने चाहिए जैसे कि औपचारिक प्रणाली के छात्रों के लिए हैं, मगर शिक्षण-सामग्री और उनके कक्षा-उपयोग की युक्तियाँ उक्त दोनों प्रणालियों के लिए अलग-अलग प्रकार की होंगी।

1.4.10 पाठ्यचर्यागत विविध सरोकारों का समेकन

पाठ्यक्रम बनाने की प्रक्रिया अक्सर हड़बड़ी से प्रभावित हो जाती है। इसमें कुछ स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय घटनाएँ सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक दृष्टिकोण के साथ पाठ्यक्रम-संबंधी निर्णयों को प्रभावित करती हैं। ऐसी हड़बड़ी के कारण सुविचारणीय ढंग और योजनाबद्ध तरीके से काम नहीं हो पाता। इस हड़बड़ी-युक्त तरीके में नवीन और

सामाजिक पाठ्यक्रमगत सरोकार निहित होते हैं और इन्हें अपनाने के कारण पाठ्यक्रम अक्सर बोझिल हो जाते हैं। जब कभी भी कोई नए मुद्दे सामने आएँ और जिन पर ध्यान देना ज़रूरी हो तो सबसे पहले यह जाँच करनी चाहिए कि क्या पाठ्यक्रम में जो विषय पहले से मौजूद है वह अभी प्रासंगिक है और क्या वह नए मुद्दों को प्रभावी ढंग से शामिल कर सकेगा।

आज जबकि साक्षरता, पर्यावरण शिक्षा, परिवार-प्रणाली, पड़ोस-शिक्षा, उपभोक्ता शिक्षा, पर्यटन शिक्षा, एड्स शिक्षा, मानव अधिकार शिक्षा, विधि-साक्षरता, शांति शिक्षा, जनसंख्या शिक्षा और आव्रजक शिक्षा, भूमंडलीय शिक्षा जैसे विषय पाठ्यक्रम में पृथक स्थान की माँग करने लगे हैं तो सर्वश्रेष्ठ तरीका तो यही होगा कि इन समस्त विचारों और अवधारणाओं का सावधानीपूर्वक विश्लेषण करने के बाद उन्हें प्रचलित शिक्षण-योजना में ही समाहित कर लिया जाए। विस्तृत पाठ्यचर्याओं में इस प्रकार के समेकन के लिए उपयुक्त युक्तियाँ तैयार करनी होंगी।

1.4.11 कार्यजगत से शिक्षा की संबद्धता

कार्य शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा विद्यालयी शिक्षा प्रणाली के अविभाज्य अंग हैं। कार्य शिक्षा से संबद्ध वर्तमान नीति, जिसमें कार्य शिक्षा को उद्देश्यपरक, सार्थक मानव-श्रम-गतिविधि के रूप में रखा गया है, को प्राथमिक स्तर पर अधिक प्रभावी ढंग से लागू करना ज़रूरी है। कार्य शिक्षा एक विचारपूर्ण कार्यनीति है जो विभिन्न प्रकार के कार्यों में निहित तथ्यों और सिद्धांतों की समझ बढ़ाती है और कार्य करने के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण पैदा करती है। इससे राष्ट्र-निर्माण के लिए महात्मा गांधी का विचाररत उँगलियों (थिंकिंग फिंगर्स) की रचना का स्वप्न साकार होगा। प्राथमिक स्तर पर बच्चों को कार्य-स्थितियों के अवलोकन, कार्य में भागीदारी, उत्पादन और कुछ चीज़ों के निर्माण में लगाया जा सकता है। उच्च-प्राथमिक स्तर पर कार्य शिक्षा की निरंतरता से सार्थक कार्य के प्रति आदर की भावना पुष्ट होगी। माध्यमिक स्तर पर छात्रों की परिपक्वता को देखते हुए कार्य शिक्षा की गतिविधियाँ कुछ अधिक विविधतायुक्त और जटिल प्रकृति की होंगी। इनसे छात्र उच्चतर माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा-धारा में प्रवेश के प्रति मानसिक रूप से तैयार होंगे। इसके व्यापक विश्लेषण से यह तात्पर्य निकलता है कि कार्य शिक्षा को एक उद्देश्यपूर्ण और सार्थक श्रमयुक्त कार्य के रूप में देखा जाए और शिक्षण-प्रक्रिया में उसके अविभाज्य अंग के रूप में शामिल किया जाए।

गत दशकों में व्यावसायिक शिक्षा के लिए जो प्रयास किए गए उनसे अनेक अवसरों के द्वार खुले। उनमें से कुछ तो भविष्य में ज्ञान और योजना निर्माण की दृष्टि से बहुत निर्णायक हैं। व्यावसायिक शिक्षा की सामाजिक और सामुदायिक स्वीकार्यता धीरे-धीरे बढ़ी है, यद्यपि

इसकी गति अपेक्षा के अनुरूप नहीं है। सच पूछा जाए तो सफलता उन क्षेत्रों में स्पष्ट दिखाई देती है जहाँ योजना-निर्माण और व्यवसायों की पहचान का काम प्रारंभ में व्यावसायिक कुशलता और सुदृढ़ समझ के साथ किया गया था। अब सफलता सुनिश्चित करने के लिए उन स्थानीय स्थितियों और स्थानीय कारीगरों पर ध्यान देना होगा जो इस विषय में प्रमुख भूमिका अदा करते हैं।

व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र और कार्य का विस्तार संगठित क्षेत्र की रोज़गार-संभावनाओं से ऊपर तक ले जाकर विस्तारित करना होगा। व्यावसायिक शिक्षा के मॉडल में संपूर्ण जनसंख्या की आकांक्षाओं को परिलक्षित किया जाना चाहिए। यही बात शिक्षा के बेहतर कायाकल्प के लिए प्रवृत्त करेगी और मानवीय क्षमताओं के विकास के लिए ऐसे रास्ते खोलेगी जिन्हें संगठित औद्योगिक क्षेत्र तक सीमित नहीं रखा जा सकता। वस्तुतः बृहत् असंगठित स्वरोज़गार क्षेत्रों पर ध्यान देना होगा। व्यावसायिक शिक्षा-धारा में अधिक भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रम में कार्य शिक्षा के तत्वों का समावेश ज़रूरी है। कुल मिलाकर देखा जाए जो केवल कार्य शिक्षा से ही विभिन्न गतिविधियों के लिए कुशल जनशक्ति के विकास की दिशा में आगे बढ़ा जा सकता है।

व्यावसायिक या पूर्व-व्यावसायिक पाठ्यक्रम समूह के हित में, कक्षा के हित में, विद्यालय और अंततः समुदाय के हित में छात्रों को मिलजुलकर काम करने के ठोस अवसरों को सुसंगठित करने की संभावनाओं को उत्पन्न कर सकेगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए क्षेत्र विशेष के प्रमुख व्यवसायों के अनुरूप सही ढंग की योजनाएँ एवं कार्यक्रम बनाने होंगे। कई कौशल-कार्य सेवाओं के माध्यम से सिखाए जा सकते हैं जो पूरे समुदाय को लाभ पहुँचाते हैं और जो विद्यालय को उसके आस-पास के वातावरण के नज़दीक लाते हैं और छात्रों में विद्यालय और समुदाय के प्रति उनके संकल्पों की चेतना जगाने में मदद करते हैं। यह चेतना ही सहकारी गतिविधियों, मित्रता, सांप्रदायिक सद्भाव और दूसरों के प्रति आदर को बढ़ावा देती है।

व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रमों को पर्यावरण संबंधी प्रमुख सरोकारों के पोषण तथा उत्तम जीवन-स्तर पर सभी के समान अधिकार की चेतना पर केंद्रित होकर स्थायित्वपरक विकास पर बल देना होगा।

1.4.12 पाठ्यक्रम भार को घटाना

बहुत लंबे समय से आज तक माता-पिता और समुदाय की बड़ी शिकायत रही है कि विद्यालयी पाठ्यक्रम बहुत भारी है। पाठ्यक्रमों का भार केवल भौतिक ही नहीं है बल्कि बोध-हीनता का भी है, जो कुछ बुनियादी अवधारणाओं के प्रति समझ के अभाव का फल

है। इससे छात्रों के मन में जबरदस्त तनाव पैदा होता है और इस कारण उनके स्वाभाविक विकास की गति अवरुद्ध होती है। कुछ समय पहले ही इस समस्या का आकलन करने के प्रयास हुए थे। वे तरीके और साधन खोजने की भी कोशिश की गई थी जिनसे विद्यालयी छात्रों का और खास तौर से छोटे बच्चों का पाठ्यक्रम-बोझ घटाया जा सके। अनेक उपाय सुझाने के बावजूद विद्यालयी पाठ्यक्रमों का बोझ अब भी बना हुआ है और अपेक्षाएँ भी बहुत अधिक हैं। इस समस्या का पूरी ईमानदारी के साथ हल निकालना अब अनिवार्य है।

पाठ्यक्रम-भार का मुद्दा कई अन्य संबंधित मुद्दों से जुड़ा है। इस मुद्दे का हल केवल पाठ्यपुस्तकों के आकार घटा कर ही नहीं हो सकता बल्कि इस मुद्दे का हल इसकी संपूर्णता में खोजना होगा। आंशिक रूप से इस समस्या को हल करने का एक रास्ता तो यह हो सकता है कि अवधारणाओं की समग्र निरंतरता को प्रभावित किए बिना पुरानी और अनावश्यक विषयवस्तुओं को हटा दिया जाए। यह बोझ इस तरह भी कम किया जा सकता है कि एक ओर बच्चों की विकासात्मक क्षमताओं के बीच जो असंगतियाँ हैं उन्हें हटा दिया जाए और दूसरी ओर पाठ्यचर्यागत अपेक्षाओं और सीखने-सिखाने की पद्धति के बीच जो असंतुलन है वह भी समाप्त कर दिया जाए। अनेक तथ्यों, अवधारणाओं के जटिल अंतर्संबंधों, रटने की प्रवृत्ति और अनावश्यक गृहकार्य को हटाना पड़ेगा। अब 'विषयवस्तु' से हटकर 'सीखने की प्रक्रिया' की ओर जाना होगा। शिक्षण की दिशा अब यह होगी कि बच्चे 'सीखना कैसे सीखें'। शिक्षकों को तैयार करने के लिए सेवापूर्व और सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रमों में इसकी अपनी भूमिका रहेगी। नवाचारात्मक मूल्यांकन प्रणाली को प्रोत्साहित करके भी बोझ कम किया जा सकता है, जिसमें योग्यताओं, अवबोध, प्रयोग और विश्लेषण की जाँच की जाती है और उसके बाद उचित समय पर उपचारात्मक शिक्षण किया जाता है। इस विकराल समस्या का व्यावहारिक और प्रभावी हल खोजने के लिए खंडित प्रणालियों की बजाय एक समग्र प्रणाली अपनाना पहली ज़रूरत है।

1.4.13 ज्ञान-निर्माता के रूप में बच्चे

बच्चे अपनी ही सामाजिक दुनिया में बड़े होते हैं। इस प्रकार शिक्षा भले ही औपचारिक संस्थागत प्रणाली से दी जाए या अन्य किसी तरीके से, उसमें बड़ी तादाद में सामाजिक गतिविधियाँ शामिल रहेंगी ही। इससे ज्ञान के सामाजिक-चयन का उनके भीतर संचार होता है। ज्ञान-मीमांसा मॉडल के विरुद्ध, जो कि बच्चों को सामाजिक अनुभव प्रदान करने की कोई जगह नहीं देता, रचनावादी आंदोलन ज्ञानार्जन के लिए बच्चों की समुचित भूमिका पर बार-बार ज़ोर देता है। ज्ञान का समाज के संदर्भ में उद्भव सामाजिक-सांस्कृतिक सिद्धांत का मुख्य अंग रहा है। ज्ञान की प्राप्ति विषय-वस्तु के साथ सक्रिय रूप से जुड़कर की जाती है। इसमें न तो ज्ञान-सामग्री की नकल की जाती है, न उसे रट कर याद किया जाता है।

रचनावादी माहौल में छात्रों को स्वयं सीखने की स्वायत्तता होती है, साथियों के साथ मिलकर और उनका सहयोग लेकर सीखने के मौके होते हैं, छात्र द्वारा उठाए गए प्रश्नों का उत्तर स्वयं उसी के द्वारा खोजने के लिए अवसर होते हैं। वे पाठ्यक्रम का संचालन करते हैं, आत्म-अवलोकन और मूल्यांकन के लिए भी उनके पास समय होता है और अपने चिंतन को ज़ाहिर करने के रास्ते होते हैं। स्वायत्तता छात्रों को अपने ज्ञान की स्वयं खोज करने के लिए प्रोत्साहित करती है और निर्धारित सूचना का अनुसरण करने के बजाए अनुभवों के स्पर्श से नए परिप्रेक्ष्य प्राप्त करने के लिए प्रेरित करती है। यह आयाम शिक्षक को मुख्य रूप से सीखने में योगदान देने वाले प्रेरक के रूप में पहचान देता है। 'क्या किया जाना चाहिए' यह बात थोपने की बजाए इस प्रतिरूप में अध्यापक एक मार्गदर्शक के रूप में कार्य करता है। वह छात्रों को संसाधन उपलब्ध कराकर उन्हें यह तय करने के योग्य बनाता है कि कैसे सिखाया जाए और क्यों सीखा जाए?

रचनावादी शिक्षक सफल शिक्षण के लिए किसी कठोर नुस्खे का अनुसरण नहीं करता, वह तो संपूर्ण शिक्षण गतिविधि में नेता बनने के बजाए, अर्थ-निष्पादन में प्रेरक का काम करता है। वह उन विभिन्न संदर्भों का अनुकूलन करता है जो विद्यालय-शिक्षण पर प्रभाव डालते हैं और बड़ी गहराई से शिक्षा के उद्देश्य से जुड़ी प्रक्रिया में लीन रहता है।

1.4.14 संज्ञान, संवेग और क्रिया के बीच सामंजस्य

शिक्षा को छात्रों के व्यक्तिगत विकास के लिए अनिवार्य रूप से सुलभ बनाना चाहिए और मनोवैज्ञानिक रूप से उन्हें जीवन के सभी क्षेत्रों में तेज़ी से घटित हो रहे परिवर्तनों से जूझने के लिए तैयार करना चाहिए। इस प्रकार शिक्षा का मुख्य केंद्र संज्ञानात्मक कौशलों, जैसे– पढ़ना, लिखना और गणित से हट कर अंतरव्यक्तीय और आंतरव्यक्तीय विकास की ओर मुड़ गया है। प्रशिक्षक यह अनुभव करने लगे हैं कि अकादमिक कमियों के अलावा, एक अलग प्रकार की और अधिक चिंताजनक कमी भी है और वह है 'भावनात्मक-निरक्षरता' की। संवेगात्मक बुद्धि या साक्षरता के तत्वों में भावनात्मक और सामाजिक कौशल शामिल हैं, जो नैतिक और आध्यात्मिक विकास की शिक्षा से संबद्ध हैं। इनके निहितार्थ हैं–क्रोध, आक्रमण, पलायनपरकता पर अंकुश, शराब और ड्रग की लत पर नियंत्रण और यौन शोषण की रोकथाम तथा अंतरव्यक्तीय द्वंद्वों का हल निकालना। हम जो कुछ करते हैं, जो विचार रखते हैं, जो एहसास पैदा करते हैं और समस्त चीजों के बीच जो संबंध तय करते हैं, हमारी अपनी बुद्धि हमें उन सबका अर्थ निकालने के योग्य बनाती है। वह हमें इस काबिल बनाती है कि हम अपने आपको अन्य लोगों में मिला दें, उनका आदर करें, उनके साथ स्पष्ट रूप से संवाद करें, उन्हें अनुप्राणित और प्रेरित करें और व्यक्तियों के बीच के संबंधों को भी समझें। भावनाओं को प्रोत्साहित करने की शिक्षा को कक्षा में शैक्षिक प्रक्रिया के एक आवश्यक तत्व के रूप में मान्यता देनी चाहिए, क्योंकि

भावनाएँ सूचना प्रदान करती हैं, सीधे ध्यान देने योग्य बनाती हैं और लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सुविधा पैदा करती हैं। सच पूछा जाए तो शिक्षक के पास भावनाएँ विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाओं की शिक्षा के लिए एक मूल्यवान साधन हैं।

'भावनात्मक साक्षरता कार्यक्रम' में सफलता के स्तर, उसकी आत्म-गरिमा और कल्याण तथा कुशलता व्यक्ति को सकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। वे शैक्षिक-पतन के प्रभावों की दिशा को उलटने में मदद करती है और इस प्रकार विद्यालय को सुदृढ़ बनाती है। इसलिए पाठ्यक्रम निर्माताओं और विद्यालयों के लिए भावनात्मक बुद्धि का पोषण महत्त्वपूर्ण सरोकार बन जाता है।

इस प्रकार पाठ्यचर्या को ऐसे शिक्षण अनुभव प्रदान करने होंगे जो व्यक्ति के विचारों, उसकी अनुभूतियों और कार्यों का वर्णन करने में मदद करें। बुद्धि की पारंपरिक अवधारणा के विरुद्ध बहुशाखीय बुद्धि प्रत्येक मनुष्य को एक अद्वितीय कृति मानती है। अद्वितीयता उन विभिन्न तरीकों को प्रभावित करती है जिनके बीच शिक्षण दिया जाता है। इस प्रकार यह विचार जो कि बुद्धि को एकल अवधारणा नहीं मानता, बल्कि उसे बहुशाखीय गुण मानता है, कक्षा में सीख रहे छात्र के संपूर्ण जीवन से जुड़ कर शिक्षा के वैयक्तिकरण को प्रोत्साहित करता है। बहुशाखीय बुद्धि विभिन्न प्रकार की बुद्धि को मान्यता देती है, जैसे– भाषिक बुद्धि, तार्किक गणितीय बुद्धि, स्थानगत बुद्धि, शारीरिक-ऊर्जा संबंधी बुद्धि, संगीतात्मक बुद्धि, अंतरव्यक्तीय और आंतर-व्यक्तीय बुद्धि और प्रकृतिवादी बुद्धि। शिक्षण संस्थाओं में इन आठ प्रकार की बुद्धियों का विकास करना सही प्रकार के पर्यावरण और अनुभवों के द्वारा संभव होना चाहिए।

बहुविधि-बुद्धि प्रणाली छात्रों को कई ऐसे अवसर प्रदान करती है जिनसे वे महत्त्वपूर्ण संप्रत्ययों और विषयों की खोज करते हैं और उनके बारे में अपने आप सोचते हैं और जो कुछ वे खोजते या पाते हैं उसका अनेक तरीकों से मतलब निकालते हैं। बहुविधि बुद्धि का पाठ्यचर्या में उपयोग नाना प्रकार के अनुभव प्रदान करता है जो पाठ्यवस्तु में प्रवेश के बिंदु बनते हैं और छात्रों के पास ऐसे तरीकों से पहुँचते हैं जिन्हें वे समझ सकें।

बहुविधि बुद्धि-शिक्षा एक रूपरेखा पेश करती है जो पाठ्यचर्या योजनाकारों और शिक्षकों को छात्रों की शक्ति के तरह-तरह के स्तरों को जाँचने में मदद करती है और उनकी बुद्धि को उत्कर्ष तक ले जाती है। चूँकि यह विभिन्न प्रकार के अनुभवों को प्रदान करती है, इसलिए अपेक्षाकृत बड़ी संख्या में छात्रों को सफलता के अवसर भी देती है।

1.4.15 संस्कृति-विशिष्ट शिक्षाशास्त्र

भारत एक बहुसांस्कृतिक, बहुभाषी और बहुधार्मिक समाज है। प्रत्येक क्षेत्र और राज्य की

भी अपनी विशेष पहचान है। यह विभिन्न संदर्भों में अपनाई जाने वाली शिक्षाशास्त्रीय प्रविधियों में भी अंतर्निहित है। अंतर्राष्ट्रीय रूप से शिक्षाशास्त्र मात्र शिक्षण-विज्ञान के रूप में ही नहीं जाना जाता बल्कि एक संस्कृति या उपसंस्कृतियों की एक शृंखला के रूप में भी देखा जाता है जो कक्षा के अंदर और बाहर के विभिन्न संदर्भों और विभिन्न शिक्षण-व्यवहारों को प्रतिबिंबित करता है। भारतीय समाज की बहुलतावादी प्रकृति शिक्षाशास्त्रीय प्रविधियों में भी झलकनी चाहिए। चूँकि कोई एकमात्र सार्वभौम तरीका ऐसा नहीं है जिससे छात्र सीखते हों, इसलिए इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि उन विशिष्ट सांस्कृतिक संदर्भों में झाँका जाए जिनके बीच एक छात्र स्थित है। यद्यपि सभी छात्र सूचना का विश्लेषण लगभग समान तरीकों से करते हैं, फिर भी विश्लेषण की विषयवस्तु आदिवासी समाज से लेकर उच्च सामाजिक-आर्थिक स्तर के शहरी क्षेत्रों तक बहुत हद तक भिन्न होती है। इसलिए शिक्षाशास्त्र को संस्कृति-विशिष्ट होना चाहिए। एक-समान यांत्रिक तरीकों से शिक्षण की अपेक्षा सांस्कृतिक तरीकों, जैसे– कहानी-कथन, नाटक, कठपुतली, लोकनाट्य, सामुदायिक जीवन आदि पर शिक्षाशास्त्र की सुदृढ़ नींव बननी चाहिए। सांस्कृतिक-विशिष्टता उन शिक्षाशास्त्रीय प्रणालियों से जुड़नी चाहिए जो जनजातीय, ग्रामीण, शहरी और अन्य जातिगत समूहों और समुदायों के लिए विकसित की जानी है। इससे आनंदपूर्ण शिक्षा, स्थानीय लोगों की विद्यालय में सहभागिता, उनके त्योहार, उत्सव और जीवन शैलियों को समझने के अवसर मिलेंगे।

1.4.16 सौंदर्यबोध का विकास

परंपरोन्मुखी और संज्ञान-केंद्रित शिक्षा प्रणाली को अपने मुकाम से हट कर अधिक पूर्णतायुक्त शिक्षा की ओर जाना चाहिए जो शिक्षण को भी छात्र के संपूर्ण अनुभव में स्थापित करती हो। शिक्षा की सौंदर्यबोधात्मक प्रणाली अनुभव, कल्पना, सृजनात्मकता और अंतर्बोध को समान स्तर प्रदान करके सीखने की प्रक्रिया में उपयुक्त संतुलन स्थापित करने का प्रयास करती है, जैसा कि वह जानने, सोचने, याद रखने और तर्क करने के लिए भी करती है। पाठ्यक्रम के प्रति सौंदर्यपरक प्रणाली छात्र में नई अंतर्दृष्टि और समझ के लिए ज्ञानेंद्रियों को सक्रिय बनाने के साधन प्रदान करेगी।

सौंदर्यपरक अनुभव ऐसे किसी भी क्षेत्र के लिए उपयोगी है जिसमें रह कर व्यक्ति पर्यावरण के साथ अंतर्क्रिया करता है। संख्याओं की शृंखलाबद्ध पहेली को हल करना, मूर्ति बनाना, बगीचा लगाना–सभी सौंदर्यानुभूति के स्रोत हो सकते हैं। चूँकि ऐसे अनुभव पूर्ण और सुसंगत होते हैं और आंतरिक संतोष पैदा करते हैं, इसलिए व्यक्तियों का उन विषयों या स्रोतों के प्रति झुकाव पैदा करते हैं जहाँ से उनका उद्गम हुआ है। विषय-सामग्री या विषय-अनुशासन जब सौंदर्यपरक भावना के साथ संबोधित किए जाते हैं तो उनमें संज्ञान की विशेषताएँ, रचना के प्रति संवेदनशीलता, नवीनता के प्रति विशेष रुचि, उद्देश्य के प्रति

लचीलापन, कल्पना का अभ्यास और संतुलन एवं संगति का विकास जैसे तत्व समाहित होते हैं। सौंदर्यपरक शिक्षा छात्रों की योग्यता के विकास के संदर्भ में होती है जिससे वे ऐसे अनुभव प्राप्त करते हैं। इसलिए सौंदर्यपरक शिक्षा पाठ्यक्रम का एक मुख्य सरोकार होनी चाहिए।

1.4.17 सतत और व्यापक मूल्यांकन

पाठ्यचर्या को छात्रों की उन शिक्षण-आवश्यकताओं के प्रति जवाबदेह होना चाहिए जो उनके व्यक्तित्व-निर्माण के कारकों के रूप में प्रायः पहचानी जाती है। छात्रों में शैक्षिक और सह-शैक्षिक आयामों के विकास के अतिरिक्त उनके व्यक्तिगत और सामाजिक व्यवहार में परिवर्तन लाने के लिए आवश्यक निवेश प्रदान करने होंगे। आगे चलकर सुधार करने के लिए प्रतिपुष्टि (फीडबैक) देने की दृष्टि से किसी न किसी प्रकार का आकलन या मूल्यांकन ज़रूरी है। मूल्यांकन के प्रतिफल मोटे तौर पर पहचाने गए साधनों की उन किस्मों, मूल्यांकन-कसौटियों और परिणामों की व्याख्या पर निर्भर करेंगे जो इस उद्देश्य से उपयोग किए गए हैं। मूल्यांकन प्रक्रिया की प्रासंगिकता, विश्वसनीयता और वैधता प्रतिपुष्टि की गुणवत्ता निश्चित करेगी जो कि छात्रों में गुणात्मक सुधार सुनिश्चित करने के लिए तैयार की गई है।

मूल्यांकन को जितना संभव हो उतना विश्वसनीय होना चाहिए और यह सहयोगात्मक भावना से किया जाना चाहिए। सहभागितायुक्त और पारदर्शी मूल्यांकन शिक्षार्थी को अधिक-से-अधिक सीखने के लिए प्रेरित करेगा और अंततः वे आजीवन सीखने वाले व्यक्तियों में बदल जाएँगे। बाह्य परीक्षाओं का भय जो बच्चों में बहुत ही कोमल आयु से बैठ जाता है, उसे भी दूर करना होगा। शिक्षकों को उनके अधीन बच्चों की प्रगति के मूल्यांकन की पूरी ज़िम्मेदारी निभानी होगी। शिक्षकों को इस विषय में जवाबदेह बनाने के पूर्व उन्हें आवश्यक प्रशिक्षण और सहयोग दिया जाएगा।

सतत मूल्यांकन तो शिक्षकों द्वारा ही किया जा सकता है और इसके लिए उन्हें बड़ा सूक्ष्मदर्शी बनना होगा। यह मूल्यांकन वास्तव में अनौपचारिक किस्म का ही होगा। आगे मूल्यांकन की निरंतरता सीखने के समयबद्ध आकलन के ज़रिए कायम रखी जा सकती है और इसका उपयोग समस्यामूलक शिक्षण क्षेत्रों के निदान और उसके आधार पर उपचारात्मक शिक्षा की व्यवस्था के लिए किया जा सकता है।

समग्र या व्यापक मूल्यांकन छात्र की प्रगति को एक संपूर्ण दृष्टि से देखता है जिसमें शैक्षिक और सहशैक्षिक आयाम शामिल होते हैं। व्यक्तित्व की विशेषताओं का आकलन, जिसमें छात्र के दृष्टिकोण, आदत, मूल्य आदि निहित होते हैं, बड़ी सावधानीपूर्वक अंकित करना होगा और उनके द्वारा छात्रों की ऐसी मदद करनी होगी जिससे वे उन गुणों का विकास कर

सकें जो अच्छे और योगदान करने वाले नागरिक के लिए ज़रूरी हों। ऐसा आकलन भी समयबद्ध होगा और अंत में संचयी रेकार्ड का कार्ड तैयार किया जाएगा।

मूल्यांकन प्रणाली को भी रहस्यमुक्त करके पारदर्शी बनाना होगा और माता-पिता एवं समुदाय को विश्वास में लेना होगा। अंतर-शिक्षार्थी तुलनाओं को घटाना होगा। मूल्यांकन प्रतिफलों का संप्रेषण सकारात्मक तरीके से होना आवश्यक है। इससे छात्रों पर मूल्यांकन एक अग्निपरीक्षा की तरह लद जाने के बजाए उन्हें अपना मूल्यांकन स्वयं करने के लिए प्रेरित करेगा। स्व-मूल्यांकन के लिए क्षमता का प्रारंभिक अवस्था से ही धीरे-धीरे विकास करना होगा। हमारी व्यवस्था में मूल्यांकन संबंधी जो बुराइयाँ हावी हो गई हैं उन्हें पहचानने की कोशिश अवश्य होनी चाहिए और उन्हें समाप्त करना चाहिए जिससे कि लोगों का मूल्यांकन प्रणाली में विश्वास पुनः लौटाया जा सके।

1.4.18 पाठ्यचर्या विकास के लिए शिक्षकों का सबलीकरण

पाठ्यचर्या-रचना में सक्रिय रूप से भाग लेने वाले शिक्षकों की संख्या बहुत थोड़ी है जबकि पाठ्यचर्या को लागू करने वालों में शिक्षकों का योगदान शिक्षा-प्रक्रिया में बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। शायद यही वज़ह है कि शिक्षकों को 'पाठ्यचर्या रचनाकार' के बजाए 'पाठ्यचर्या का वाहक' माना जाता है। विद्यालय-आधारित पाठ्यचर्या-विकास का विचार लोकप्रिय हो रहा है और जैसे-जैसे विकेंद्रीकरण का विचार विद्यालयों में व्याप्त होगा, वैसे-वैसे भविष्य में इस प्रक्रिया में शिक्षकों की भागीदारी बड़े पैमाने पर अपेक्षित होगी। यह तब तक संभव नहीं होगा जब तक शिक्षक इस परिवर्तित भूमिका के लिए वास्तव में सक्षम नहीं बनाए जाते। राष्ट्र को शिक्षकों पर विश्वास और पूर्ण विश्वास करना अनिवार्य है। सक्षम शिक्षक समुदाय की परिकल्पना ने शिक्षण को पुनर्व्याख्या की ओर प्रवृत्त किया है। इसके अनुसार शिक्षण-कार्य अधिक चिंतनशील और विचारशील व्यवसाय के रूप में उभरेगा।

परिवर्तन की प्रक्रिया में चूँकि शिक्षक प्रभावशाली कार्यकर्ता हैं, इसलिए उपयुक्त और पर्याप्त शिक्षक-प्रशिक्षण ज़रूरी है, जो पूर्व-सेवाकालीन और सेवाकालीन दोनों ही कार्यक्रमों पर लागू होगा। सेवाकालीन प्रशिक्षण को तो पाठ्यचर्या-विकास-प्रक्रिया का आंतरिक अंग बनना होगा और प्रशिक्षण में अनिवार्य रूप से दोनों तत्वों, शिक्षण प्रविधि और मूल्यांकन प्रक्रिया, को शामिल करना होगा।

पाठ्यचर्यागत परिवर्तनों के अनुसार पाठ्यक्रमों (सिलेबस) की रचना और विकास से शिक्षकों को अलग रखने से यदि कोई परिवर्तन की संभावना हुई भी तो वह इस पूरे परिदृश्य में बहुत मामूली किस्म का परिवर्तन होगा। पाठ्यचर्या-निर्माण में शिक्षकों की भागीदारी इसलिए वांछित है कि यह उनके व्यवसाय के प्रति उनको प्रेरित करेगा और उनमें उस पाठ्यचर्या के प्रति 'अपनत्व' पैदा करेगा जिन्हें कि स्वयं उन्हें ही लागू करके आज़माना है।

1.5 शिक्षा एक आजीवन प्रक्रिया के रूप में

शिक्षा दो प्रमुख आयामों के साथ जीवनपर्यंत चलने वाली प्रक्रिया है—एक है सामयिक और दूसरा स्थानिक। एक व्यक्ति के पूरे जीवन तक शिक्षा जारी रहनी चाहिए क्योंकि कई ऐसे विकासात्मक दायित्व हैं जिनको मनुष्य को अपने जीवन में ही पूरा करना होता है और समस्याओं को हल भी करना होता है। शिक्षा विभिन्न जीवन क्षेत्रों में ही तो घटित होती है। ये जीवन क्षेत्र हैं—घर, विद्यालय, समुदाय, मीडिया आदि। इनमें से प्रत्येक क्षेत्र व्यक्ति के संपूर्ण विकास में बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

जीवन भर शिक्षार्थी रह कर इस आधुनिक दुनिया के प्रति व्यक्ति में उन्नत चेतना का विकास होता है। वह जीवन के हर कदम पर तेज़ी से होने वाले परिवर्तनों को ज्ञान के विस्तार और पुरानेपन और जीवन-भूमिकाओं में घटित होते परिवर्तनों को जानने लगता है। साथ ही उन मनोवैज्ञानिक स्थितियों को वह समझ लेता है जो जीवन के विभिन्न स्तरों पर प्रकट होती हैं। इन्हें प्रोत्साहन देने के लिए पाठ्यचर्यागत विषयों का सामान्य और व्यावसायिक दोनों क्षेत्रों में इस प्रकार चुनाव करना होगा कि वह शिक्षा क्षेत्रों में आगे की शिक्षा के लिए चुनाव करने का योग्य आधार बने। विशेष महत्त्व शिक्षा के उन प्रमुख कारक विषयों को देना होगा, जैसे— एक या दो भाषाएँ— जिनसे भविष्य के शिक्षण के लिए आवश्यक संप्रेषण और अवबोध कौशलों का विकास हो। विषयवस्तु के चयन और संयोजन की प्रक्रिया में अब ज़ोर ज्ञान के ऐसे विशिष्ट खंडों से हटेगा जो शीघ्र ही पुराने पड़ जाते हैं और उन आयामों पर केंद्रित होगा जो विषय की संरचनाओं को बनाते हैं, पाठ्यचर्या परिक्षेत्र में मुख्य अवधारणाएँ रचते हैं और विषय-विशेष के लिए खोजपूर्ण शिक्षण के उपकरण और पद्धतियाँ सुझाते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो पाठ्यचर्या क्षेत्रों या विषयों की रचना इस प्रकार हो कि वे खोजपूर्ण शिक्षण के उपकरण प्रदान करें और पद्धति और सीखने के उपकरणों को अर्जित करने के लिए मूल प्रस्थान-बिंदु से लेकर अभ्यास-स्थलों तक ले जाएँ।

1.6 अग्रणी और भावी पाठ्यचर्या की दिशा

आज की दुनिया बहुत तेज़ी से घटित हो रहे विकास और परिवर्तनों को देख रही है और उन पर त्वरित ध्यान देने की माँग करती है। ये सब तत्व पाठ्यचर्या में शामिल होने के लिए दस या बारह वर्ष के सामान्य पाठ्यचर्या विकासचक्र की प्रतीक्षा नहीं करेंगे। प्रत्येक शिक्षार्थी को इस गतिशील सीखने वाले समाज से ज्ञान और विषय के उन विभिन्न क्षेत्रों से परिचित होना होगा जो भूमंडलीय संदर्भ में सीखने के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। इसलिए शिक्षार्थियों के ज्ञान-आधार को अद्यतन बनाए रखने के लिए हर दो-तीन वर्षों में नियमित पाठ्यवस्तुओं में थोड़ा-बहुत नया ज्ञान जोड़ना होगा। उसी के साथ वर्तमान पाठ्यचर्या में जो हिस्सा अनावश्यक हो गया

है उसे भी सावधानीपूर्वक हटाना होगा ताकि इस प्रकार के कार्य अतिरिक्त पाठ्यवस्तु के परिणामस्वरूप छात्रों पर बोझ न बनें।

अग्रणी पाठ्यचर्या में कुछ क्षेत्र तुरंत शामिल करने योग्य होंगे, जैसे– संचार प्रणाली में नवीनतम विकास, अंतरिक्ष-प्रौद्योगिकी, जैव-प्रौद्योगिकी, अनुवांशिक तंत्र विज्ञान, नए स्वास्थ्य-मुद्दे, ऊर्जा एवं पर्यावरण, विश्व भूगोल, बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ, पुरातत्वीय खोज आदि।

प्रारंभ में तो शिक्षकों को भी छात्रों के साथ सह-शिक्षार्थी बनाना होगा क्योंकि यह पाठ्यक्रम उनके लिए भी उतना ही नया होगा जितना छात्रों के लिए होगा। धीरे-धीरे उन्नत पाठ्यचर्या से ज्ञान अर्जित करने के लिए छात्र स्व-शिक्षण, आत्म-निर्देशित शिक्षण आदि की आदत अपने अंदर विकसित करेंगे।

1.7 पाठ्यचर्या विकास प्रक्रिया के प्रति दृष्टिकोण

पाठ्यचर्या विकास एक समग्र प्रक्रिया है जिसमें तरह-तरह के तत्व निहित हैं, जैसे– पाठ्यचर्या-निर्माण नीति का निर्धारण, पाठ्यचर्या-शोध, पाठ्यचर्या-योजना, उसका क्रियान्वयन और फिर उसका मूल्यांकन–ये सभी तत्व महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

राष्ट्रीय और राज्य स्तर की नीतियों के लिए विद्यालयी पाठ्यचर्या का प्रभाव इतना महत्त्वपूर्ण है कि विश्व के अधिकांश देशों में तो यह ज़िम्मेदारी विभिन्न सरकारों और राष्ट्रीय स्तर के संगठनों एवं अभिकरणों द्वारा निभाई जाती है। वास्तव में कोई भी देश पाठ्यचर्या-निर्माण की प्रक्रिया की अवहेलना नहीं कर सकता।

अंतर्राष्ट्रीय अनुभवों से पता चलता है कि न तो पूरी तरह से केंद्रीकृत और न ही पूरी तरह से विकेंद्रित पाठ्यक्रम-निर्माण की प्रणाली वास्तव में सफल हो पाई है। जिन देशों ने एक समय विकेंद्रित पाठ्यचर्या-निर्माण प्रणाली अपनाने की कोशिश की थी उन्हें भी केंद्रीकृत रूप से निर्मित पाठ्यचर्या-निर्माण नीति की ओर वापस लौटना पड़ा था। इन वैश्विक अनुभवों को ध्यान में रखते हुए बहुत ही उपयुक्त और कार्यशील विद्यालय पाठ्यचर्या-मॉडल वह प्रतीत होता है जो समन्वित-विकेंद्रीकरण प्रक्रिया के प्रतिफल के रूप में जाना जा सके। इसका अर्थ यह होगा कि एक सामान्य रूपरेखा केंद्रीय स्तर पर विकसित की जाएगी। फिर वह राज्यों में उनके अपने संदर्भों में विश्लेषण और अध्ययन के लिए भेजी जाएगी। इस पाठ्यचर्या नीति के विकास में सभी संबंधितों–माता-पिता से लेकर शिक्षक और विभिन्न प्रकार के अन्य सदस्यों और समाज के इच्छुक समूहों आदि के विचारों और उनकी सहभागिता को सुनिश्चित किया जाएगा। पाठ्यचर्या-रूपरेखा निर्णय लेने के विभिन्न स्तरों पर सृजनात्मक सोच पैदा करेगी, जैसे–राष्ट्रीय स्तर पर, क्षेत्रीय, राज्य और ज़िला-स्तरों पर आदि। यह बड़ी मात्रा में स्थानीय विशिष्टता और संदर्भगत वास्तविकता के लचीलेपन को भी अपनाएगी।

2

प्रारंभिक और माध्यमिक स्तर पर पाठ्यचर्या संयोजन

संदर्भ

भारतीय विद्यालयी शिक्षा व्यवस्था में प्रारंभिक और माध्यमिक स्तर की शिक्षा को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है और इसीलिए इस मुख्य क्षेत्र की शिक्षा पर *प्रारंभिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या : एक रूपरेखा,* 1988 में विशेष बल दिया गया था, किंतु अब उस पर नए सिरे से विचार करने की आवश्यकता है। देश में शिक्षा के क्षेत्र में जो अनुभव प्राप्त हुए हैं, उनके प्रकाश में इनमें से कुछ की तो पुनर्रचना और कुछ का पुनःप्रतिपादन करना होगा। आसपास घटित होने वाले परिवर्तनों के परिप्रेक्ष्य में कुछ नए आवश्यक क्षेत्रों को भी जोड़ना ज़रूरी हो सकता है। वर्तमान परिदृश्य में निम्नलिखित पर विशेष ज़ोर देना होगा :

- व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय और आध्यात्मिक मूल्यों, जैसे– स्वच्छता और समय की पाबंदी, सदाचार, सहिष्णुता और न्याय, राष्ट्रीय अस्मिता के प्रति गर्व, कानून-व्यवस्था के प्रति सम्मान और सत्यप्रियता का समावेश और उनकी निरंतरता,
- गरीबी, अज्ञानता, अस्वस्थता, जातिवाद, दहेज, अस्पृश्यता और हिंसा को समाप्त करना और समता, स्वास्थ्य, शांति और समृद्धि को सुनिश्चित करना,
- चिंतन, अनुभव और नवाचारों को, जो कि भारतीय परंपरा और लोकाचार की बुनियाद में हैं, वैश्विक विचारों से जोड़ना,
- पूरे देश में विद्यालयी संरचना अर्थात् 10+2+3 में एकरूपता स्थापित करना,
- माध्यमिक स्तर के अंत तक सभी शिक्षार्थियों को ऐसी व्यापक सामान्य शिक्षा देना जो उन्हें बुनियादी जीवन कौशलों का उच्चस्तरीय बौद्धिक स्तर (आई.क्यू.), संवेगात्मक स्तर (ई.क्यू.) और आध्यात्मिक स्तर (एस.क्यू.) अर्जित करने में सहायक हो,

- प्रारंभिक और माध्यमिक स्तर के लिए अध्ययन की सामान्य योजना बनाना जिसमें 'कैसे सीखा जाए' के कौशल पर ज़ोर हो और जो विषयवस्तु एवं सीखने के तरीकों की दृष्टि से छात्रों के लिए उपयुक्त हो। ध्यान रहे कि इस स्तर के छात्रों में विशेष आवश्यकता वाले छात्र भी हैं,
- विद्यालयी शिक्षा के सभी स्तरों पर मौलिक कर्त्तव्यों और पाठ्यचर्या के केंद्रिक घटकों का समावेश करना,
- मानव अधिकारों का समावेश करना जिनमें बच्चों और विशेष रूप से बालिकाओं के अधिकार भी शामिल होंगे,
- सभी स्तरों पर ज्ञान, समझ और कौशल अर्जित करने के लिए न्यूनतम अधिगम स्तर सुनिश्चित करना जो छात्रों की योग्यताओं और समाजगत संदर्भों के अनुरूप हों,
- विद्यालयी शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर विषयवस्तु के चयन, शिक्षण और प्रविधियों के संदर्भ में स्वतंत्रता, लचीलापन, प्रासंगिकता और पारदर्शिता सुनिश्चित करना,
- ज्ञान के विभिन्न आयामों में सभी छात्रों में बहुविध प्रतिभा और सृजनात्मकता का पोषण करना एवं उनकी निरंतरता कायम रखना,
- सूचना आधारित और शिक्षक-केंद्रित शिक्षण से हटकर प्रक्रिया-केंद्रित और छात्र मित्रवत शिक्षा पर ज़ोर देना, और
- मूल्यांकन की प्रतिसंवेदी और सहायक प्रणाली विकसित करना।

2.1 मूल्य शिक्षा

चूँकि भारत आध्यात्मिक सहअस्तित्व का एक सर्वाधिक उदात्त प्रयोग है, अतः सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों एवं धर्मों के विषय में शिक्षा पूरी तरह से घर और समुदाय के भरोसे नहीं छोड़ी जा सकती। ऐसा लगता है कि विद्यालयी शिक्षा ने भाषा में मूलभूत मूल्यों के संबंध में तटस्थता का भाव विकसित कर लिया है और समुदाय के पास या तो समय नहीं है अथवा उसकी यह रुचि ही नहीं है कि वह सही भावना के साथ धर्मों के बारे में जाने। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि भारतीय विद्यालयी पाठ्यचर्या में मूलभूत मूल्यों को अंतर्निहित करना तथा देश के सभी प्रमुख धर्मों के संबंध में चेतना को एक केंद्रीय घटक के रूप में शामिल किया जाए।

किसी भी स्तर पर मूल्य शिक्षा और धर्मों के बारे में शिक्षा अलग से अध्ययन या परीक्षा के

विषय नहीं होंगे। इन दोनों का समन्वय समस्त शैक्षिक-विषय क्षेत्रों और सह-शैक्षिक विषय क्षेत्रों में इतने औचित्य के साथ होगा कि उनमें निहित उद्देश्यों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कक्षाओं में, सभास्थलों पर, खेल के मैदानों में, सांस्कृतिक केंद्रों एवं ऐसे ही अन्य स्थानों पर प्राप्त किया जा सके।

विद्यालयी शिक्षा के बहुत प्रारंभिक चरण में ही मूल्य शिक्षा के प्रसार संबंधी एक समग्र कार्यक्रम को विद्यालयी दिनचर्या के नियमित अंग के रूप में शुरू करना अनिवार्य है। संपूर्ण शिक्षा प्रक्रिया ऐसी हो कि बालक-बालिकाएँ इस योग्य बन जाएँ कि वे 'उत्तम' को जानें, 'उत्तम' से प्रेम करें और 'उत्तम' कार्य करें तथा एक दूसरे के प्रति सहनशील नागरिकों के रूप में विकसित हों। माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर धर्मों की फ़िलासफ़ी का तुलनात्मक अध्ययन शुरू किया जा सकता है।

2.2 समान केंद्रिक घटक

राष्ट्रीय पहचान को सुदृढ़ करने की आवश्यकता अब पहले से कहीं अधिक महसूस की जा रही है। इसलिए पाठ्यचर्या के माध्यम से भारतीय संविधान में निहित मूल्यों का पोषण कर राष्ट्रीय एकता और सामाजिक-सुसंबद्धता को प्रोत्साहित एवं विकसित करने का दृढ़ता के साथ पक्ष लिया जा रहा है। इस दृष्टि से *राष्ट्रीय शिक्षा नीति,* 1986 के द्वारा चिह्नित दस केंद्रिक घटकों को पुनः प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता है। ये घटक इस प्रकार हैं– भारत के स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, संवैधानिक दायित्व, राष्ट्रीय पहचान के पोषण के लिए आवश्यक विषयवस्तु, भारत की सामान्य सांस्कृतिक विरासत, समतावाद, लोकतंत्र और पंथ निरपेक्षता, स्त्री-पुरुष समानता, पर्यावरण का संरक्षण, प्रगति में बाधक सामाजिक व्यवधान को समाप्त करना, छोटे परिवार का मानक अपनाना और वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करना।

भारतीय संविधान के भाग IVअ के अनुच्छेद 51अ में उल्लिखित मौलिक कर्त्तव्यों को भी केंद्रिक घटकों में शामिल करना होगा। इनके अनुसार भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह–

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे,

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में सँजोए रखे और उनका पालन करे,

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे,

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे,

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हो,

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे,

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे,

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे,

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे, और

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू सके।

इन केंद्रिक घटकों को विद्यालयी पाठ्यचर्या में समुचित रूप से समाविष्ट करना आवश्यक है। प्रयत्न यह है कि ये घटक राष्ट्रीय भागीदारी की दृष्टि और मूल्यों को उत्पन्न करने में सहायक हों और ऐसे लोकाचार और मूल्य प्रणाली का निर्माण करें जिनमें भारतीय पहचान को पुष्ट किया जा सके।

2.3 स्वदेशी पाठ्यचर्या की ओर

शिक्षा को सार्थक अनुभव बनाने के लिए उसे भारतीय संदर्भ से जोड़ना होगा। अब पहले से कहीं अधिक इस तथ्य का एहसास हुआ है कि जो कुछ विदेशों में घटित हो रहा है, केवल उसका आयात करके या उसे उधार लेकर अथवा विदेशों में उठने वाली समस्याओं का निराकरण करने में अपनी दक्षता दिखा कर भारत बौद्धिक स्तर से फलफूल नहीं सकता।

मूर्तरूप से चिंतन में यह बदलाव अपने स्वदेशीपन की परंपरा में निहित चिंतन, अनुभव और नवाचार पर आधारित पाठ्यचर्या निर्माण की प्रणाली विकसित करने की माँग करता है। ऐसा करने के लिए देश की सांस्कृतिक बहुलता और भारतीय समाज के विभिन्न क्षेत्रों और वर्गों से प्राप्त बुद्धिमत्ता और अनुभव के विशाल भंडार पर पर्याप्त ध्यान देना होगा। इसका मतलब यह भी हो सकता है कि स्वास्थ्य, जल-प्रबंधन, जनसंख्या विस्फोट आदि से जुड़े मुद्दों के समस्या-निवारण में पारंपरिक ज्ञान-प्रणालियों और तरीकों का उपयोग किया जाए।

ऐसे समय में जबकि नीम और हल्दी जैसे पदार्थों को विश्वव्यापी मान्यता और उन्हें पेटेंट करने की कोशिश हो रही है, तो इस प्रकार की जानकारी शिक्षार्थियों के ज्ञान का अभिन्न अंग बननी ही चाहिए। यह भी वांछनीय है कि शिक्षार्थियों को ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में अतीत में की गई देश की प्रगति से भी परिचित कराया जाए। इसके अतिरिक्त लोक-संस्कृतियों का ज्ञान और उनका आस्वाद, लोकगीत, पारंपरिक नृत्य शैलियों, वेशभूषाओं एवं वाद्ययंत्रों को विद्यालयी पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग बनाया जाना चाहिए।

2.4 न्यूनतम अधिगम स्तर

जाति, धर्म, स्थान और लिंग के भेदभाव से मुक्त सभी छात्रों को तुलनीय स्तर की शिक्षा देने के लिए *न्यूनतम अधिगम स्तरों (एम.एल.एल.)* की अवधारणा एक बुनियादी सरोकार के रूप में उभरी है। गुणवत्ता को समानता से जोड़ने के प्रयास के रूप में विद्यालयी शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर आवश्यक अधिगम स्तरों की पहचान करने की ज़रूरत पैदा हुई है। यह समाज के सभी वर्गों के शिक्षार्थियों की, जिनमें सुविधाहीन और वंचित बच्चे, बीच में विद्यालय छोड़ देने वाले और कामकाजी बच्चे एवं लड़कियाँ शामिल हैं, विकासात्मक आवश्यकताओं की दृष्टि से अति आवश्यक है। इन आवश्यक अधिगम स्तरों को ही न्यूनतम अधिगम स्तर का नाम दिया गया है। न्यूनतम अधिगम स्तर सभी बच्चों द्वारा समान रूप से अर्जित करने होंगे। चूँकि एम.एल.एल. दिशा-बोध कराते हैं और कुछ हद तक जवाबदारी सुनिश्चित करते हैं, इसलिए इन्हें विद्यालयी सुधार के कार्यक्रम-निर्माण के लिए प्रभावशाली साधन माना गया है। विद्यालय या शिक्षा प्रणाली की गुणवत्ता वास्तव में छात्रों के योग्यता निष्पादन की क्षमताओं के संदर्भ में परिभाषित करनी होगी। न्यूनतम अधिगम स्तरों के अधिगम परिणामों को स्पष्ट करने के लिए इनका निर्वचन कई तरह से किया जा सकता है। इनमें से एक महत्वपूर्ण तरीका न्यूनतम अधिगम स्तरों को दक्षताओं के रूप में परिभाषित करना है। कोई भी प्रणाली क्यों न अपनाई जाए, न्यूनतम अधिगम स्तर की विशिष्टता का उद्देश्य अधिगम उपलब्धियों को बढ़ाना है। उन्हें योग्यता-निष्पादन के लक्ष्य के रूप में अपनी उपयोगिता जहाँ शिक्षकों के लिए सिद्ध करनी होगी वहीं व्यवस्था के लिए भी प्रतिफल संकेतक बनना होगा। इसके अनुसार, प्रासंगिकता और कार्यात्मकता के अतिरिक्त न्यूनतम अधिगम स्तरों को उपलब्धि-संप्राप्ति तथा समझ में आने वाले और मूल्यांकन किए जा सकने योग्य गुणों से संपन्न होना चाहिए। अधिगम या सीखने को एक सातत्य या निरंतरता के रूप में देखना होगा जिसमें इकाइयाँ कार्यात्मक तरीके से आकर शृंखलाबद्ध होती हैं। सातत्य के इस उपागम से छात्रों की क्रमबद्ध प्रगति में सहायता मिलनी चाहिए जिससे दूसरी इकाई की ओर जाने के पूर्व प्रत्येक इकाई की विशेष दक्षताओं की शृंखला पर छात्र प्रवीणता या मास्टरी प्राप्त कर सकें। तब जाकर प्रत्येक इकाई को सीखना आनंददायी और सार्थक होगा।

न्यूनतम अधिगम स्तर की अवधारणा खंडित न होकर पूर्णता की अवधारणा है। न्यूनतम अधिगम स्तर को प्रत्येक स्तर विशेष के अंत में उपलब्ध अधिगम प्रतिफल के रूप में देखना होगा। उनकी विशेषताओं के विस्तृत विवरण और उनकी श्रेणीवार शृंखलाबद्धता को किसी कठोर निर्देश या निर्धारण के रूप में नहीं लेना चाहिए। इस अवधारणा में भी काफ़ी लचीलापन है। अधिगम प्रतिफलों को क्रमबद्ध ढंग से जमाने का कौशल इस प्रकार आज़माया जाना चाहिए कि उनमें संतुलित तरीके से विश्लेषणात्मक एवं संश्लेषणात्मक प्रक्रियाओं का समावेश हो। इसके अलावा 'अधिगम या सीखना' को 'कौशल', 'गुणवत्ता', 'दृष्टिकोण' और 'मूल्यों' के भी विराट परिप्रेक्ष्य में समझना होगा। इस प्रकार न्यूनतम अधिगम स्तरों में संज्ञानात्मक, क्रियात्मक और संवेगात्मक, तीनों से जुड़ी शिक्षा में अधिगम प्रतिफल समाहित होंगे। न्यूनतम अधिगम स्तर को परिभाषित करने पर बल समेकित रूप से सीखने और मूल्यांकन करने के तत्वों को रेखांकित करने के लिए है, जिससे प्रभावी निदानात्मक हस्तक्षेपों और आकलन प्रक्रियाओं को सुनिश्चित किया जा सके। इस प्रकार न्यूनतम अधिगम स्तर मात्र छात्र की प्रगति या मूल्यांकन निर्देश के ही संकेतक नहीं हैं, बल्कि वे तो शिक्षण को उपयुक्त ढंग से क्रमबद्ध बनाने, समुचित कक्षा-शिक्षण-प्रक्रियाओं को अपनाने और वांछित आकलन तकनीकों को लागू करने में सहायक होते हैं। वे शिक्षक को इस योग्य बनाते हैं कि वह एक ओर तो उपचारात्मक शिक्षण कर सके और दूसरी ओर प्रत्येक शिक्षार्थी की आवश्यकतानुसार ज्ञान-संवर्धन कार्यक्रम आयोजित कर सके। इससे शिक्षकों को कुछ स्पष्ट सूत्र मिलते हैं जिनसे वे साथियों के बीच शिक्षण, लक्ष्य निर्देशित शिक्षण तथा स्वशिक्षण को सचेत और संयुक्त तरीके से आयोजित कर सकें।

न्यूनतम अधिगम प्रणाली प्रवीणता स्तर के अधिगम के तत्वों, बाल-केंद्रित शिक्षा, गतिविधि आधारित शिक्षण, सतत और व्यापक मूल्यांकन, निदानात्मक और उपचारात्मक शिक्षण, विभेदक व्यवहार और कार्यात्मक शोध (एक्शन रिसर्च) पर आधारित है। सभी के लिए इन तमाम तत्वों के अभ्यास की आवश्यकता गुणवत्तायुक्त प्रारंभिक शिक्षा के लक्ष्य को उपलब्ध करने के लिए है।

विभिन्न स्तरों पर न्यूनतम अधिगम स्तर लागू करने और समान अध्ययन-योजना अपनाने पर ज़ोर दिया गया है। इसके साथ-साथ पाठ्यचर्या के कक्षाई उपयोग के लिए कार्य-योजना की रचना के चयन में लचीलापन भी आवश्यक है। इससे अधिगम शिक्षार्थी की आवश्यकता और पर्यावरण के संदर्भ में प्रासंगिक होगा और शिक्षकों तथा विद्यालय एवं स्थानीय शैक्षिक अधिकारियों द्वारा पहल और प्रयोग करने के मौके मिलेंगे। पाठ्यचर्या क्रियान्वयन की पद्धति और दृष्टिकोण में लचीलेपन की गुंजाइश का इस्तेमाल विभेदक पाठ्यक्रमों और ऐसे ही अन्य उपायों के लिए नहीं किया जाएगा ताकि देश के विभिन्न भागों के शैक्षिक स्तरों में विषमता पैदा होने का खतरा हो।

2.5 शिक्षा के सामान्य उद्देश्य

शिक्षा मनुष्य को अज्ञान, अभाव तथा दुख के बंधनों से मुक्त करती है और उसे अहिंसक एवं शोषण-विहीन सामाजिक व्यवस्था की ओर ले जाती है। अतः विद्यालयी पाठ्यचर्या के उद्देश्य हैं कि वे शिक्षार्थियों को ज्ञान अर्जित करने, समझ विकसित करने, कौशलों को विकसित करने, सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने एवं व्यक्तित्व के समग्र विकास के लिए उपयोगी मूल्य और आदतें अपनाने के योग्य बनाए। युवावर्ग इस देश की अत्यंत मूल्यवान निधि हैं, इसलिए शिक्षा के माध्यम से क्षमताएँ बढ़ाने के लिए उनका सबलीकरण आवश्यक है। इसलिए प्रतिमानों को बदलना आवश्यक है ताकि पाठ्यचर्या में प्रक्रिया और विषयवस्तु की अंतर्क्रिया को महत्त्व दिया जा सके। इसके अतिरिक्त छात्रों के अंतरस्थ मूल्यों और संवेगात्मक बुद्धि का विकास भी एक महत्त्वपूर्ण पहलू है।

इसलिए विद्यालयी पाठ्यचर्या से छात्रों में निम्नांकित के विकास और उत्कर्ष में सहायता मिलनी चाहिए :

- भाषा की योग्यताएँ, जैसे– सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना और सोचना तथा मौखिक और दृश्य संप्रेषण-कौशल जो सामाजिक जीवन और दिन-प्रतिदिन के क्रियाकलापों में प्रभावी भागीदारी के लिए आवश्यक है,
- गणितीय योग्यताएँ जो तार्किक बुद्धि का विकास करे और शिक्षार्थियों को गणितीय क्रियाओं को दैनिक जीवन में लागू करने में सहायता करे,
- वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास जिसमें खोज या अनुसंधान-भावना, समस्या-हल, प्रश्न करने का साहस और वस्तुनिष्ठता जैसे गुण विद्यमान हों जो भ्रम, अंधविश्वास और भाग्यवाद को समाप्त करने की दिशा में प्रवृत्त करे, इसके साथ ही साथ भारतीय परंपरा में रचे-बसे स्वदेशी ज्ञान को संपुष्ट करते हुए बनाए रखे,
- पर्यावरण के प्राकृतिक और सामाजिक दोनों पक्षों, उनकी अंतर्क्रियात्मक प्रक्रियाओं और उनसे संबद्ध समस्याओं की समझ विकसित करे और ऐसे तरीके और साधन बताए कि पर्यावरण का संरक्षण किया जा सके,
- देश के विभिन्न भागों के भूखंडों तथा वहाँ के जनजीवन की विविधता और भारत की सामासिक संस्कृति के प्रति समझ पैदा करे,
- देश के स्वतंत्रता-संग्राम और सामाजिक पुनरुत्थान में सभी वर्गों और क्षेत्रों के स्वतंत्रता सेनानियों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और ग्रामीण, आदिवासी और समाज के कमज़ोर

तबकों, खासकर उत्तर-पूर्व और अंदमान-निकोबार द्वीप-समूहों के लोगों के बलिदान एवं योगदान के प्रति सराहना की भावना पैदा करे और उनके आदर्शों के अनुसरण की प्रेरणा प्रदान करे,

- परिवर्तनमूलक प्रौद्योगिकी और देश की परंपरा और विरासत की निरंतरता के बीच संतुलित समन्वय की सही समझ उत्पन्न करे,
- राष्ट्रीय प्रतीकों का ज्ञान और उनके प्रति सम्मान पैदा करे तथा राष्ट्रीय अस्मिता एवं एकता जैसे आदर्शों के प्रति आकांक्षा और संकल्प प्रकट करने के लिए प्रेरित करे,
- *वसुधैव कुटुंबकम्* की भावना से युक्त देशभक्ति और राष्ट्रीयता की गहन अनुभूति पैदा करे,
- देश के संदर्भ में भूमंडलीकरण, उदारीकरण और स्थानीयता के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों के संबंध में उचित समझ विकसित करे,
- व्यक्तिगत, सामाजिक, नैतिक, राष्ट्रीय और आध्यात्मिक मूल्यों और सहवर्ती गुणों का विकास करे जो किसी व्यक्ति को मानवीय और सामाजिक रूप से प्रभावशाली बनाते हैं और जीवन को सार्थकता एवं दिशा देते हैं,
- भौतिक और मानसिक रूप से स्फूर्त और मज़बूत बनाने के लिए आवश्यक ज्ञान, दृष्टिकोण और आदतों का विकास करे,
- ऐसे गुणों और विशेषताओं का विकास करे जो स्व-शिक्षण, आत्म-निर्देशित शिक्षण और आजीवन शिक्षण के साथ समाज की रचना कर सके,
- ऐसी क्षमताओं का विकास करे जो न केवल सूचना-विश्लेषण करे बल्कि उन्हें ठीक से समझे, उन पर विचार करे, उन्हें आत्मसात करे और उनके प्रति अंतर्दृष्टि का विकास करे,
- उत्पादकता-वृद्धि, कार्य-संतोष की भावना, अर्थ-उत्पादन प्रणाली के लिए आवश्यक कठोर-परिश्रम की तत्परता, उद्यमशीलता और मानवीय श्रम के प्रति सम्मान जैसे मूल्यों का विकास करे,
- पूर्व व्यावसायिक/व्यावसायिक कौशलों को अर्जित करे,
- बड़े परिवारों और अति जनसंख्या के प्रति आलोचनात्मक विचार करे और जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण की ज़रूरत को समझे, और
- स्वस्थ यौन संबंधी मुद्दों के प्रति उचित दृष्टिकोण विकसित कर स्त्री-पुरुषों में एक दूसरे के बीच सम्मानपूर्ण संबंध विकसित करे।

शिक्षार्थी-केंद्रित उपागमों पर ज़ोर देने की ज़रूरत शिक्षा के उन उद्देश्यों के संदर्भ में है जो कक्षा स्तर विशेष के विभिन्न प्रासंगिक आयुवर्ग के छात्रों के लिए निर्धारित भौतिक, मानसिक, सामाजिक और संवेगात्मक विकास के मानदंडों के अनुरूप हों। किसी विशेष उद्देश्य के संबंध में उपलब्धि का स्तर एक कक्षा से दूसरी कक्षा तक एक चक्राकार शृंखला के रूप में होता है।

2.6 शिक्षार्थी का परिचय/वृत्त

शिक्षार्थी निष्क्रिय वस्तु नहीं हैं। वे तो सक्रिय और जिज्ञासु व्यक्ति हैं। ऐसा नहीं कि परिवेश उनको रचता हो, बल्कि वे भी परिवेश को बड़े पैमाने पर रचते हैं। ये शिक्षार्थी विद्यालय में खाली दिमाग लेकर नहीं आते बल्कि उनके मन में कुछ पूर्व विचार विद्यमान होते हैं। कक्षाई अनुभवों की व्याख्या इन्हीं पूर्व विचारों के आधार पर होती है। इस प्रकार ये पूर्व अनुभव, निष्ठाएँ और भावनाएँ व्यक्ति की समझ और घटनाओं के निर्वचन को प्रभावित करती हैं। ज्ञान प्राप्त करने की यह प्रक्रिया रचनात्मक और उत्पादक होती है और प्रत्येक छात्र का ज्ञान उसका वैयक्तिक एवं अपने आप में अनूठा होता है।

वर्षों से बच्चों या शिक्षार्थियों को एक प्राकृतिक या विशेष रूप से प्रदत्त श्रेणी में रखा जाता है। इससे इस बात का महत्त्व कम हो जाता है कि छात्र अपने समाज में घटित होने वाले सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों और ऐतिहासिक स्थितियों से अंतरंग रूप से जुड़ा हुआ है। इस प्रकार समूहों में परस्पर भिन्नताएँ और समूह के अंदर होने वाले परिवर्तन सीखने की प्रवृत्ति को प्रभावित करते हैं। इसलिए शिक्षार्थी और शिक्षण के प्रति एकतरफ़ा या खंडित दृष्टिकोण अपनाना तर्कसंगत नहीं है। दूसरी ओर शिक्षार्थी की विशेषताओं को समेकित रूप से समझना अधिक उपयुक्त और सहायक प्रतीत होता है।

पूर्व प्राथमिक स्तर के दौरान बच्चों के भौतिक और मानसिक विकास में बहुत बड़े परिवर्तन होते हैं। निर्भरता और असहायपन की स्थिति से बच्चे धीरे-धीरे मुक्त होने लगते हैं और जिज्ञासु छात्र बन जाते हैं। जैसे-जैसे उनका शारीरिक विकास सामाजिक और सांस्कृतिक संकेतों के साथ प्रतिक्रिया करने लगता है, वैसे-वैसे उनका स्नायु-तंत्र परिपक्व होता जाता है और संज्ञानात्मक अनुभवों की संवृद्धि होती जाती है। वे तेज़ी से पूरी दुनिया को अपने अनुकूल बनाने लगते हैं और धीरे-धीरे कल्पना करना और काम करने के तरीके खोजना प्रारंभ करते हैं ताकि वे भूत और वर्तमान की घटनाओं से जुड़ी स्मृतियों को मन में संगृहीत कर सकें। क्रियात्मक खेलों से अर्थात् किसी वस्तु अथवा बिना किसी वस्तु के आसानी से बार-बार अंग-संचालन करने से शिक्षार्थियों का समग्र विकास संभव हो पाता है। इस तरह वे रचनात्मक गतिविधियों का आयोजन भी करने लगते हैं जिनमें कोई चीज़ बनाने के लिए अपने हस्तकौशल द्वारा वस्तुओं को अपने ढंग से काम लायक बना लेते हैं। बच्चों की यह

अवस्था भाषा-विकास की अवस्था होती है। इसी समय वे कई प्रतीकों और अहं-केंद्रित सोच की ओर प्रवृत्त होते हैं। वे अपने और किसी दूसरे के विचारों में भेद नहीं कर पाते। इस अवस्था में बच्चे कुछ काल्पनिक खेल भी खेलने लगते हैं।

प्राथमिक स्तर में प्रवेश करने की उम्र में आकर बच्चों के शारीरिक विकास की प्रक्रिया अपेक्षाकृत धीमी होने लगती है और इस उम्र में उनकी चंचलता में भी कमी आने लगती है। कुछ छरहरे होने के साथ-साथ वे मांस-पेशियों से भी अधिक बलिष्ठ होने लगते हैं और ऐसे नए कौशलों में प्रवीणता प्राप्त करने लगते हैं जो उन्हें अपने साथियों के साथ स्पर्धा करने योग्य बनाते हैं। पर्यावरणीय और सांस्कृतिक परिवेश से पड़ने वाले प्रभाव से और अपने विकसित होते हुए क्रियात्मक कौशलों के आधार पर अब बच्चों का व्यक्तित्व अधिक समन्वित होता जाता है। उनकी सोच अधिक तर्कसम्मत होती जाती है। यहाँ आकर बच्चों के संभावित विकास का परिक्षेत्र (ज़ोन ऑफ़ प्रॉक्सीमल डेवलपमेंट) अधिक महत्त्वपूर्ण बन जाता है। यह परिक्षेत्र बच्चे के वास्तविक विकास स्तर और उच्चस्तरीय योग्यता के बीच की दूरी प्रकट करता है। यह वह भेद है जो बच्चे स्वयं स्वतंत्र रह कर क्या हासिल कर सकते हैं और उन्हें मार्गदर्शन देने पर उनकी योग्यता का स्तर क्या हो जाता है, इन दोनों के बीच के भेद को स्पष्ट करता है। जब उनके वास्तविक विकास स्तर के बजाए उनकी व्यक्तिगत क्षमता पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, छात्रों की संज्ञानात्मक क्षमताएँ बढ़ जाती हैं। इस विचार से इस दृष्टिकोण को बल मिला है कि सामाजिक प्रभाव बच्चों की संज्ञानात्मक योग्यता के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं और मार्गदर्शन या परामर्श उनके विकास को सुगम बनाते हैं। अहं-केंद्रित भाषा (जो कि व्यक्ति के स्वयं के व्यवहार को नियंत्रित करती है और अक्सर मौखिक होती है) से बच्चे आंतरिक भाषा (जिसमें स्वयं से बातचीत या स्वगत-संलाप होता है) की ओर प्रवृत्त होते हैं। इस स्थिति के दौरान बच्चे जो कहने वाले हैं, पहले उसकी रिहर्सल (आत्म-अभ्यास) कर लेते हैं। उनके विकास का नियामक उनका साथी-समूह होता है। अपने साथियों के समूहों में बच्चे दैनिक प्रतिरोधों, चिंताओं और डरों से काल्पनिक खेलों के माध्यम से निपट लेते हैं। साथियों के साथ अंतःक्रिया से उनमें सहकार या आपसी सहयोग और मिल-जुल कर रहने जैसे सामाजिक मूल्य विकसित होते हैं।

उच्च प्राथमिक स्तर पर बच्चों में अनेक शारीरिक परिवर्तन शुरू हो जाते हैं क्योंकि यह समय बचपन से किशोरावस्था में संक्रमण का है। संज्ञानात्मक स्तर पर बच्चे विशेष समस्याओं से जुड़ी समस्त काल्पनिक स्थितियों के बारे में धीरे-धीरे तार्किक ढंग से सोचने लगते हैं। वे अपनी पहचान स्थापित करने के लिए भी प्रयत्न करते हैं। पहचान स्थापित करने की प्रक्रिया के लिए आवश्यक है कि अपने दृष्टिकोण के साथ-साथ दूसरों के और समाज के दृष्टिकोण को भी समझें। इस प्रकार साथी-समूह का महत्त्व काफ़ी बढ़ जाता है। इस आयु में बच्चे मनःस्थिति में बदलाव और अंतर्विरोधी विचारों को भी लगातार महसूस करते हैं।

पहले उच्च प्राथमिक स्तर पर जिन विशेषताओं का विकास हो चुका है, माध्यमिक स्तर पर वे विशेषताएँ और सुदृढ़ होती हैं। अमूर्त अवधारणाओं के बारे में सोचना, सामाजिक पहचान स्थापित करना और साथी-समूहों को महत्त्व देना, ये सब बातें काफ़ी हद तक बढ़ जाती हैं। इसलिए इस नाज़ुक उम्र में, बच्चों के अंदर सामाजिक अंतर्क्रिया को प्रोत्साहित करना ज़रूरी है। प्रभावी शिक्षण और बौद्धिक विकास के लिए शिक्षार्थियों को अपने साथियों से सहयोग करना होगा, उनके अनुभवों को बाँटना होगा, उनकी खोजों पर चर्चा करनी होगी और मतभेदों के लिए बहस करनी होगी।

बौद्धिक विशेषताओं के अतिरिक्त अन्य विशेषताएँ भी पाठ्यचर्या-रचना के लिए महत्त्वपूर्ण मार्गदर्शन करती हैं। इनको शिक्षार्थियों के पृथक-पृथक व्यक्ति के रूप में विकास और राष्ट्रीय लक्ष्यों एवं सामाजिक-सांस्कृतिक प्राथमिकताओं के संदर्भ में विकास के लिए आधार बनाया जा सकता है। शिक्षार्थी छात्रों की शारीरिक, सामाजिक और संवेगात्मक विशेषताएँ, दृष्टिकोण और रुचियों का विकास बचपन, प्रारंभिक-किशोरावस्था और मध्य-किशोरावस्था में होता है। इसलिए जब पूर्व प्राथमिक, प्राथमिक, उच्च प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर पाठ्यचर्या के उद्देश्य, विषयवस्तु, कार्यनीतियाँ और प्रयोग आदि निर्धारित किए जाएँ तो इन तथ्यों पर सावधानीपूर्वक विचार करना होगा।

शारीरिक कुशलक्षेम, भावनात्मक परिपक्वता और समुचित सामाजिक उन्मुखीकरण से संबंधित आदतों, दृष्टिकोणों और विश्वासों के विकास के लिए पूर्व प्राथमिक और प्राथमिक शिक्षा के वर्ष बच्चों की ज़िंदगी में सर्वाधिक प्रभाव डालने वाले और निर्माणकारी वर्ष होते हैं। इस तथ्य को पूरी गंभीरता से पाठ्यचर्या-निर्माताओं और पाठ्यचर्या लागू करने वालों को समझना होगा ताकि छात्रों को उपयुक्त और पर्याप्त शिक्षण अनुभव दिए जा सकें।

विद्यालय में प्रवेश के समय तक बच्चे सामान्य रूप से सामूहिक जीवन में सहभागिता की मानसिक तैयारी कर चुके होते हैं। फिर भी रीति-रिवाज़ों और सामाजिक घटनाओं के प्रति विवेकपूर्ण दृष्टिकोण और महान सामाजिक आदर्शों के प्रति सुरुचि पैदा होना अभी बाकी रह जाता है। इसी प्रकार यद्यपि इस स्तर पर आकर वे सही और गलत में भेद तो करने लगते हैं फिर भी इस प्रक्रिया में जो उच्च नैतिक आदर्श निहित होते हैं, उनका विकास उनमें नहीं हो पाता। बच्चे अपने व्यवहार में दूसरों पर निर्भर न करने की इच्छा तो ज़ाहिर करते हैं मगर इस इच्छा की सुस्पष्टता तो माध्यमिक स्तर पर पहुँचकर ही समय बीतने के साथ धीरे-धीरे आती है। सामान्य रूप से माध्यमिक शिक्षा के दौरान यह उम्मीद की जाती है कि छात्र अपना जीवन-दर्शन तय कर लें ताकि उन्हें भावी वयस्कों के रूप में उपयुक्त अभिप्रेरणा और व्यवहार के निर्देश प्राप्त हों। उच्च प्राथमिक शिक्षा के अंत तक छात्र उन विरोधाभासों की आलोचना आरंभ कर देते हैं जो वे व्यक्तियों और समाज में वाणी और कर्म में देखते हैं।

अपने पैरों पर खड़े होने और उपयुक्त जीवनचर्या चुनने के प्रति चेतना सामान्य रूप से छात्र के व्यवहार से प्रकट होने लगती है।

ये विकासात्मक विशेषताएँ शिक्षण अनुभवों को धीरे-धीरे लागू करने का संकेत देती हैं। ये अनुभव विचारों, दृष्टिकोणों, नैतिक मूल्यों से जुड़े कौशलों, राष्ट्रीय आदर्शों और प्राथमिकताओं, सामाजिक-सांस्कृतिक समन्वय और विश्वबंधुत्व से संबद्ध होते हैं। उच्च प्राथमिक शिक्षा के अंत और विशेष रूप से माध्यमिक शिक्षा के दौरान जो जानकारी और मार्गदर्शन किशोरों को दिया जाता है उससे अपने लिए सही जीवनचर्या और व्यवसाय चुनना सुनिश्चित होना चाहिए। माध्यमिक शिक्षा के दौरान बड़ी संख्या में छात्रों को कार्य शिक्षा में उन्मुख करने के लिए उसे पाठ्यक्रम का अंग बनाने की ज़रूरत हो सकती है।

माध्यमिक शिक्षा के दौरान यौन इच्छा के प्रति झुकाव छात्रों के मन और शारीरिक विकास की स्वाभाविक विशेषता है। इस आयाम पर पाठ्यचर्या-निर्माताओं को सावधानीपूर्वक ध्यान देने की ज़रूरत है ताकि पाठ्यचर्या में उनके लिए समुचित प्रावधान इस संबंध में समाहित किए जा सकें और सेक्स के प्रति स्त्री-पुरुषों में स्वस्थ दृष्टिकोण का विकास किया जा सके। भारतीय समाज में यौन-स्वच्छंदता के लिए कोई स्थान नहीं है और आत्म-नियंत्रण या 'संयम' एक अत्यंत उच्च जीवन मूल्य है। इन विचारों को रेखांकित करना आवश्यक है। इससे युवकों में सेक्स के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण पैदा होगा और विपरीत सेक्स के सदस्यों के प्रति सम्मान की भावना जाग्रत होगी।

विद्यालय काल में बच्चे के जीवन में जो संवेगात्मक आयाम उभरते हैं और व्यक्ति के जीवन में जो संवेगात्मक परिपक्वता आती है उसकी पाठ्यचर्या-निर्माता उपेक्षा नहीं कर सकते। धीरे-धीरे बढ़ने के साथ ही बच्चे संवेगात्मक स्थिरता और संवेगात्मक स्वतंत्रता हासिल करते हैं विशेषकर उच्च प्राथमिक शिक्षा के बाद और माध्यमिक शिक्षा के दौरान ऐसे अनेक मौके आते हैं जब छात्र को तीव्र दबावों का सामना करना पड़ता है। ये दबाव ही संवेगात्मक संकट बन सकते हैं। इस संवेगात्मक स्थिति को ध्यान में रखते हुए पाठ्यचर्या में शैक्षिक और सह-शैक्षिक विषय संबंधी समुचित क्रियाकलाप और अनुभव प्रदान करने और इस संबंध में उचित परामर्श एवं मार्गदर्शन उपलब्ध कराने के लिए आवश्यक संकेत होने चाहिए।

2.7 अध्ययन-योजना

शिक्षा के सामान्य उद्देश्यों को विभिन्न विषय-क्षेत्रों से संबद्ध विषय-वस्तु और शिक्षण अनुभवों के माध्यम से साकार किया जा सकता है। मगर यहाँ तथ्यात्मक ज्ञान से बोध-प्रक्रिया पर एवं चिंतन और ज्ञान को अंतरस्थ कर लेने पर विशेष बल होगा। व्यक्तित्व के बहुमुखी

विकास के लिए विद्यालयी पाठ्यचर्या में मूल्य शिक्षा, स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा, कला शिक्षा और कार्य शिक्षा को समुचित महत्त्व देना होगा। विभिन्न विषय क्षेत्रों में अंतर्संबंध भी स्पष्ट रूप से तय करने होंगे। इसलिए पहली से दसवीं कक्षा तक एकसमान शिक्षा पर ही ज़ोर दिया गया है।

केंद्रिक घटक और मूल्य सभी स्तरों पर पाठ्यचर्या के अविभाज्य अंग रहेंगे और उपयुक्त तरीके से उनका विभिन्न विषय क्षेत्रों में समावेश होगा। विषयवस्तु के चयन और शिक्षण-अनुभवों के संयोजन के प्रति लचीलापन पाठ्यचर्या योजना में निहित होगा।

2.7.1 शिशु शिक्षा : प्राथमिक शिक्षा की तैयारी (2 वर्ष)

शिक्षा की यह व्यवस्था बच्चों को विद्यालय के लिए तैयार करने की है और इसलिए शिशु देखभाल और शिक्षा, शिक्षा का एक प्रमुख तत्व है। समेकित बाल विकास योजना के अंतर्गत 'आँगनबाड़ियों' के ज़रिए शिशु शिक्षा, पूर्व प्राथमिक शिक्षा के रूप में उपलब्ध है। यह अन्य विभिन्न रूपों में भी उपलब्ध है, जैसे– तैयारी के विद्यालय, नर्सरी, किंडरगार्टन कक्षाएँ आदि जो सरकारी और निजी दोनों ही क्षेत्रों में एक दूसरे से थोड़े भिन्न हैं। इस तथ्य को स्वीकारना होगा कि शिक्षा की यह अत्यंत आरंभिक अवस्था बच्चे के व्यक्तित्व-निर्माण की अत्यंत नाज़ुक अवस्था है और इसका असर बच्चों के बाद की शिक्षा पर होता है। समूह-गतिविधियों, खेल-खेल में शिक्षा की तकनीकों, भाषा-खेलों, अंक-खेलों और ऐसे क्रियाकलापों, जो बच्चों को समाजीकरण और पर्यावरण चेतना की दिशा में प्रेरित करें आदि विशेष विधियों के द्वारा इस स्तर के बच्चों को शिक्षण दिया जा सकता है। इस प्रकार आनंद, समझ और सहभागिता पर आवश्यक ज़ोर देना होगा। इससे बच्चे सीखने के लिए तैयार होंगे और बच्चों पर से अस्वास्थ्यकर एवं हानिकारक बोझ कम होगा क्योंकि इस उम्र तक बच्चों की मांसपेशियों संबंधी क्षमता का पर्याप्त विकास नहीं हो पाता है। विषयों के औपचारिक शिक्षण तथा पढ़ने और लिखने पर तो पूर्ण प्रतिबंध होना चाहिए। समान सुविधा उपलब्ध कराने की दृष्टि से सभी बच्चों के लिए शिशु शिक्षा की सुलभता सुनिश्चित करनी होगी।

इस अवधि में भाषा का मौखिक उपयोग करने और स्वाभाविक अंतर्क्रियात्मक तरीके से उसे सुनने के अधिक से अधिक अवसर देने चाहिए। बच्चों को आवश्यक कौशलों का विकास करने के भी काफ़ी मौके देने चाहिए, जैसे–पहचान का कौशल, तुलना, जोड़ी बनाना, नाम बताना, क्रम बनाना, ड्राइंग करना और बिना औपचारिक संख्याओं को सिखाए गिनना आदि। बच्चों में सामाजिक चेतना उत्पन्न करने की दृष्टि से बच्चे-बच्चे के बीच अंतर्क्रिया तथा बच्चे और प्रकृति के बीच अंतर्क्रिया को प्रोत्साहित करना चाहिए। उपर्युक्त प्रणाली उन क्रियाकलापों के अतिरिक्त होगी जो बच्चों में सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने और स्वस्थ सामाजिक सहभागिता में भाग लेने की आदतें डालने में मदद करते हैं। बच्चों को प्रेरित करना होगा कि

वे पालतू-प्राणियों के साथ खेलें, सामान्य पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों, आवागमन के साधनों और कुछ खगोलीय पिंडों, जैसे—सूर्य, चंद्रमा, तारे आदि को जानें।

2.7.2 प्रारंभिक शिक्षा (8 वर्ष)

प्राथमिक स्तर (5 वर्ष)

प्राथमिक स्तर को कुछ अंतर्निहित निरंतरता के साथ दो भागों में देखना होगा। प्रथम भाग में पहली तथा दूसरी कक्षा होगी जहाँ बच्चों की औपचारिक शिक्षा की शुरुआत होगी और वे विकास के ऐसे स्तर पर होंगे जब अनौपचारिक या औपचारिकेतर शिक्षण से बड़ी सरलता से उन्हें औपचारिक शिक्षण की ओर ले जाया जाएगा। दूसरे भाग में तीसरी से पाँचवी कक्षा में आकर बच्चे वातावरण को समझने लगते हैं और व्यवस्थित ढंग से सीखने लगते हैं। इन दोनों भागों के लिए अध्ययन योजना निम्नानुसार है—

(अ) पहली और दूसरी कक्षा

(क) एक भाषा – मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा

(ख) गणित

(ग) स्वस्थ और उत्पादक जीवन की कला

(क) और (ख) के लिए जो अनुभव दिए जाएँगे उनमें बच्चों को संपूर्ण रूप से स्वाभाविक और मानव-निर्मित पर्यावरण में लाना होगा। भाषा और गणित शिक्षण बच्चों के आसपास के पर्यावरण में गुँथे हुए होंगे और उनमें पर्यावरणीय सरोकार भी समेकित होंगे।

स्वस्थ और उत्पादक जीवन के अनुभव प्रदान करने का तात्पर्य है बच्चे के व्यक्तित्व के समग्र विकास में योगदान करना। ये कार्य बच्चे को केंद्र में रखकर करना होगा। इसमें बच्चों को ऐसे क्रियाकलापों में लगा लेना होगा जो उनके विकास के स्तर के अनुरूप हों। इस स्तर पर स्वास्थ्य से संबंधित गतिविधियों का महत्त्वपूर्ण स्थान होगा ताकि बच्चे आवश्यक कौशल, दृष्टिकोण और आदतें, स्वयं को स्वस्थ रखने और अपनी उम्र के मुताबिक खेलकूद में भाग लेने की दृष्टि से अर्जित कर सकें। बच्चों को प्रारंभिक यौगिक क्रियाएँ भी सिखाई जाएँगी और उन्हें संतोष देने वाले विभिन्न अनुभवों से गुज़रने के अवसर दिए जाएँगे, जैसे—संगीत, नाटक, चित्रकला, मिट्टी के मॉडल बनाना आदि। इसके अतिरिक्त कार्य शिक्षा से जुड़ी गतिविधियों में भी बच्चों को लगाया जाएगा ताकि वे कार्य के प्रति निषेध या झिझक से मुक्त हों और कार्य करना पसंद करें। मूल्यों के निर्माण और प्रसार के लिए किस्से और कहानियाँ बहुत ही प्रभावी

भूमिका अदा करते हैं। ये बच्चों में जिज्ञासा, कल्पना और कौतूहल का भाव पैदा करते हैं और उन्हें पुष्ट करते हैं। ये समस्त अनुभव समेकित या समन्वित तरीके से प्रस्तुत करने की आवश्यकता है जिसके लिए विभिन्न कथानकों की पहचान करनी होगी और इनके लिए शिक्षक स्थानीय संसाधनों का उपयोग करेंगे और जहाँ आवश्यक होगा, समुदाय का सहयोग लेंगे।

(ब) तीसरी से पाँचवी कक्षा

(क) एक भाषा – मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा

(ख) गणित

(ग) पर्यावरण अध्ययन

(घ) स्वस्थ और उत्पादक जीवन की कला

जहाँ तक पर्यावरण अध्ययन का प्रश्न है इस स्तर पर बच्चों को ऐसे अनुभव दिए जाएँगे जो पर्यावरण में घटित होने वाली घटनाओं की चेतना और समझ उत्पन्न करने के साथ उनके सामाजिक-संवेगात्मक और सांस्कृतिक विकास में सहायक हों। कक्षा के अंदर और बाहर ऐसा अवलोकन वर्गीकरण, तुलना और निष्कर्ष निकालने आदि के कौशलों के विकास के माध्यम से करना होगा। वांछित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए समेकित-प्रणाली सर्वाधिक उपयुक्त होगी।

स्वस्थ एवं उत्पादक जीवन की कला सिखाने के लिए बच्चों को संगीत, नाटक, चित्रकला, कठपुतली कला, स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा, खेलकूद और योग एवं उत्पादक कार्यों में उनकी सहभागिता सुनिश्चित करते हुए पहले से प्राप्त अनुभवों को और भी सुदृढ़ करना होगा। यहाँ भी समेकित प्रणाली का ही उपयोग करना होगा। स्थानीय रूप से विकसित पाठ्यचर्या और सामग्री को शामिल करते हुए स्वायत्तता और लचीलेपन को प्रोत्साहित करना होगा। बच्चों में समुचित मूल्य-व्यवहार विकसित करने के लिए समन्वित प्रयास सुनिश्चित करने होंगे।

उच्च प्राथमिक स्तर (3 वर्ष)

(क) तीन भाषाएँ (मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा, आधुनिक भारतीय भाषा और अंग्रेज़ी)

(ख) गणित

(ग) विज्ञान और प्रौद्योगिकी

(घ) सामाजिक विज्ञान

(ङ) कार्य शिक्षा

(च) कला शिक्षा (ललित कलाएँ/दृश्य और प्रदर्शन कला)

(छ) स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा (खेलकूद, योग, एन.सी.सी. और स्काउट्स और गाइड्स के प्रशिक्षण सहित)

माध्यमिक स्तर (2 वर्ष)

(क) तीन भाषाएँ (मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा, आधुनिक भारतीय भाषा और अंग्रेज़ी)

(ख) गणित

(ग) विज्ञान और प्रौद्योगिकी

(घ) सामाजिक विज्ञान

(ङ) कार्य शिक्षा

(च) कला शिक्षा (ललित कलाएँ–दृश्य और प्रदर्शन कला)

(छ) स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा (खेलकूद, योग, एन.सी.सी. और स्काउट्स एवं गाइड्स के प्रशिक्षण सहित)

2.8 विभिन्न स्तरों पर पाठ्यचर्या क्षेत्र

पाठ्यचर्या के उद्देश्यों को समुचित शिक्षण-अनुभवों के कल्पनाशील और विवेकसम्मत नियोजन से साकार करना संभव है। सुनियोजित क्रियाकलाप और अध्यापन-अध्ययन कार्यनीतियाँ इन अनुभवों के लिए सुविधा प्रदान करती हैं जो एक समग्र रूप में विकसित होनी चाहिए। किंतु सुविधा की दृष्टि से इन सबका विभिन्न विषय-क्षेत्रों में वर्गीकरण करना पड़ता है। शिक्षा के विभिन्न स्तरों की प्रकृति और शिक्षार्थी की क्षमता प्रत्येक पाठ्यचर्या-क्षेत्र के अंतर्गत पाठ्यचर्या नियोजन के उद्देश्यों, शिक्षण क्रियाकलापों और कार्यनीतियों को प्रभावित करते हैं। इस कारण पाठ्यचर्या-क्षेत्रों तथा उनकी विभिन्न स्तरों पर प्रस्तुति के लिए निम्नलिखित प्रस्ताव प्रस्तावित किए जाते हैं :

2.8.1 भाषा

प्राथमिक शिक्षा में भाषा-शिक्षण केवल सभी विषय-क्षेत्रों में सार्थक अधिगम के लिए ही एक

अहम मुद्दा नहीं है, बल्कि शिक्षार्थी के संवेगात्मक, संज्ञानात्मक और सामाजिक विकास के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। कमज़ोर भाषा-पृष्ठभूमि के साथ प्रवेश लेने वाले नए छात्र तब तक कमज़ोर शिक्षार्थी और सभी क्षेत्रों में कमज़ोर योग्यता प्रदर्शन वाले ही बने रहते हैं जब तक कि भाषा-कौशलों के लिए उनकी विशेष सहायता न की जाए। प्रारंभिक वर्षों में समुचित और पर्याप्त रूप से भाषा-कौशलों का शिक्षण न होने से छात्रों के उच्च प्राथमिक, माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर शिक्षा प्राप्त करने में कठिनाइयाँ आती हैं। भाषा की शिक्षा में कहीं अधिक शक्ति निहित है और वह एक ऐसा सबल साधन है जो छात्रों के विभिन्न स्तरों पर केंद्रित घटकों से संबंधित छात्रों के दृष्टिकोण और मूल्यों का विकास करती है। यह कार्य वह उपयुक्त कथानकों तथा शिक्षण अधिगम कार्यनीतियों के माध्यम से करती है। भाषा-शिक्षण का उद्देश्य स्वतंत्र-चिंतन, स्वतंत्र और प्रभावशाली ढंग से मत प्रकाशन, वर्तमान और भूतकाल की घटनाओं के तार्किक विश्लेषण आदि को प्रोत्साहित करना होना चाहिए। भाषा-शिक्षण द्वारा छात्रों को अपनी बात को अपने ढंग से कहने, अपनी स्वाभाविक सृजनात्मकता एवं कल्पना का पोषण करने और छात्रों द्वारा मौखिक भाषा एवं गणितीय भाषा के बीच निहित मूल अंतर को जानने के लिए प्रेरित करना ही चाहिए। ये ही वे तत्व हैं जिनकी वजह से संपूर्ण शिक्षा-प्रक्रिया में भाषा को एक महत्त्वपूर्ण केंद्रीय स्थान दिया जाना चाहिए।

इस संदर्भ में निम्नलिखित बिंदुओं पर गंभीरता से विचार करना आवश्यक है :

- सिद्धांततः शिक्षा में भाषा के केंद्रीय महत्त्व को स्वीकार लेने के साथ-साथ देश में शिक्षा के सभी स्तरों पर भाषा-विकास के प्रयास अभी जारी रखने होंगे,
- भाषा-शिक्षण में मौखिक आयाम पर आवश्यक ज़ोर देना होगा। भाषा में मौखिक परीक्षा को मूल्यांकन-प्रक्रिया का अभिन्न अंग बनाना होगा,
- पाठ्यपुस्तकों के अध्यापन तक ही सीमित न रहकर सामान्य विस्तृत वाचन पर ज़ोर देना होगा और इसके लिए अनवरत मार्गदर्शन और देखरेख (मॉनीटरिंग) की ज़रूरत होगी, और
- भाषा-शिक्षण के सभी कार्यक्रमों में शैक्षिक उद्देश्यों की दृष्टि से, कार्यस्थल और समाज में, मौखिक और लिखित भाषा-प्रयोग की योग्यता के विकास पर बल देना होगा।

2.8.2 त्रिभाषा सूत्र

'त्रिभाषा सूत्र' के निर्माण के चार दशक बाद भी उसका सही भावना से प्रभावी क्रियान्वयन अभी तक नहीं हुआ है। भारतीय युवावर्ग के सभी सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य, बाज़ार के

दबाव और व्यवहार प्रणालियों में परिवर्तनों के बावजूद त्रिभाषा सूत्र आज भी प्रासंगिक बना हुआ है। इस सूत्र के अंतर्गत :

- जिस भाषा का प्रथम भाषा के रूप में अध्ययन किया जाएगा वह मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा ही होनी चाहिए।
- द्वितीय भाषा
  1. हिंदी भाषी राज्यों के लिए कोई अन्य आधुनिक भारतीय भाषा या अंग्रेज़ी होगी, और
  2. अहिंदी भाषी राज्यों के लिए हिंदी या अंग्रेज़ी होगी।
- तृतीय भाषा
  1. हिंदी भाषी राज्यों में अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं और अंग्रेज़ी में से कोई एक वह भाषा होगी जिसका द्वितीय भाषा के रूप में अध्ययन न किया गया हो।
  2. अहिंदी भाषी राज्यों में अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं और अंग्रेज़ी में से कोई एक वह भाषा होगी जिसका द्वितीय भाषा के रूप में अध्ययन न किया गया हो।

चूँकि 'त्रिभाषा सूत्र' का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय एकता, अंतर्राज्यीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सहज संवाद और संचार था और वह आज भी है, इसलिए केंद्र सरकार और राज्य/केंद्र शासित राज्य सरकारों द्वारा इस सूत्र का पालन सुनिश्चित करना होगा। इस सूत्र को जटिल भाषाई संदर्भ में लागू करने के लिए इसमें कुछ मामूली संशोधन किए जा सकते हैं, उदाहरण के लिए उत्तर-पूर्व राज्यों को उनकी आवश्यकताओं और विवेक के अनुसार इस सूत्र की संपूर्ण भावना को समझते हुए लागू करने की स्वतंत्रता दी जा सकती है।

प्रत्येक बच्चे की मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा को पहली कक्षा से ही पढ़ाना शुरू करना होगा। जिन प्रकरणों में बच्चों की गृहभाषा, विद्यालयी भाषा या क्षेत्रीय भाषा से भिन्न है, वहाँ उपयुक्त समय पर प्राथमिक शिक्षा से ही क्षेत्रीय भाषा में बिलकुल आसानी से प्रवेश कराना होगा। जिन राज्यों में अनेक क्षेत्रीय भाषाएँ होने के कारण सरकारी या सरकारी कामकाज की भाषा से संबद्ध भाषा को राज्य भाषा या प्रथम भाषा के रूप में स्वीकार कर लिया गया है, वहाँ पहली कक्षा से वही भाषा पढ़ानी होगी। जहाँ भाषाई अल्पसंख्यक बच्चे पर्याप्त संख्या में हैं, वहाँ उनकी मातृभाषा पढ़ाने का प्रावधान किया जाएगा।

सन् 1988 में निर्मित पाठ्यचर्या-रूपरेखा के अनुसार "यदि प्राथमिक विद्यालयों में द्वितीय भाषा पढ़ाने के लिए संसाधन उपलब्ध हैं तो प्राथमिक स्तर पर उपयुक्त कक्षा/वर्ग से

द्वितीय भाषा का अध्यापन शुरू किया जा सकता है।" इस सुझाव को आज भी वैध माना जा सकता है। दूसरी ओर उन राज्यों/केंद्रशासित राज्यों या संगठनों में, जहाँ प्राथमिक स्तर पर केवल प्रथम भाषा ही पढ़ाई जाती है, वहाँ उच्च प्राथमिक स्तर के पहले साल से ही द्वितीय भाषा अनिवार्य रूप से पढ़ाना शुरू करना चाहिए। इस प्रकार शिक्षा आयोग (कोठारी कमीशन) द्वारा इस संदर्भ में दी गई सिफ़ारिशें आज भी श्रेष्ठ मार्गदर्शन के रूप में मौजूद हैं– "जिस स्तर पर हिंदी या अंग्रेज़ी द्वितीय भाषा के रूप में अनिवार्य भाषा के तौर पर लागू करके जितनी अवधि के लिए उसका अध्यापन तय किया जाता है वह स्थानीय प्रेरणा और आवश्यकता पर निर्भर करेगा और इसलिए इसे प्रत्येक राज्य के विवेक पर छोड़ देना चाहिए।" {8.33 (5)}

प्राथमिक स्तर के प्रथम दो वर्षों में बच्चों को सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना और सोचना जैसे मूल कौशलों को विकसित करने में मदद करनी होगी, उच्चारण के निर्धारित मानदंडों के अनुसार मानकीकरण की प्रक्रिया पर भी विशेष ध्यान देना होगा। इसी प्रकार सुवाच्य लेखन और सही वर्तनी (स्पेलिंग) अवबोध के साथ मौन वाचन की सही प्रक्रिया एवं आदत का विकास करना होगा और यह कार्य छात्रों में सृजनात्मक आत्म-अभिव्यक्ति के पोषण के साथ-साथ होगा।

उच्च प्राथमिक स्तर पर छात्रों की दोनों भाषाओं में क्षमताओं पर इसलिए ज़ोर देना होगा कि वे वास्तविक जीवन-कौशल को अर्जित करने योग्य बनकर भावी दैनिक जीवन में उनका इस्तेमाल कर सकें। प्रथम भाषा में साहित्य के रूपों से उनका परिचय कराना आवश्यक है। वे जो कुछ भी पढ़ते या सुनते हैं उस पर मौखिक या लिखित रूप से उन्हें प्रतिक्रिया देने लायक बनाना होगा। भाषा के व्यावहारिक पक्ष और अलंकारिक आयामों पर भी संतुलित बल देना होगा। सृजनात्मक अभिव्यक्ति और स्वयं चिंतन करने की योग्यता भाषा शिक्षण के माध्यम से प्रोत्साहित और पोषित करनी होगी जिसके लिए वाचिक/मौखिक भाषा का पाठ्यचर्या में महत्त्वपूर्ण स्थान होना चाहिए। प्रायोगिक या व्यावहारिक व्याकरण का अध्यापन भी इस स्तर पर आवश्यक है ताकि उससे भाषा की प्रकृति, संरचना और क्रियाओं के प्रति छात्रों में अंतर्दृष्टि का विकास हो।

उच्च प्राथमिक स्तर से तृतीय भाषा का अध्ययन शुरू होगा। जहाँ तक किस कक्षा/श्रेणी विशेष से तृतीय भाषा लागू की जाए इसका प्रश्न है, वह स्वयं राज्यों/केंद्रशासित राज्यों और संगठनों की इच्छा पर छोड़ देना चाहिए। तीनों भाषाओं का अध्ययन - अध्यापन माध्यमिक स्तर अर्थात् दसवीं कक्षा के अंत तक जारी रहेगा।

माध्यमिक स्तर पर (नवीं और दसवीं कक्षा) प्रथम भाषा के व्यावहारिक रूप में पूर्ण प्रवीणता

या मास्टरी हासिल करने और साहित्य की भाषा से अच्छा परिचय स्थापित कर लेने का उद्देश्य निहित होगा। छात्रों को वे जो कुछ पढ़ते या सुनते हैं, उसकी प्रतिक्रिया में मौखिक और लिखित रूप से अपने विचार अभिव्यक्त करने में परिपक्वता हासिल करनी होगी। साहित्यिक-सामग्री, जैसे– गद्य और पद्य के माध्यम से मानव मन की गहराइयों और विविधताओं की समझ और उनका रसास्वादन छात्रों में सुनिश्चित करना होगा। व्याकरण के व्यवस्थित अध्यापन पर बल देना होगा ताकि भाषा के त्वरित उपयोगों एवं भाषा-प्रयोगों को समझने में सुविधा हो। वांछित दृष्टिकोण और मूल्य सावधानीपूर्वक चयनित भाषा-सामग्री के माध्यम से विकसित करने होंगे। इस प्रकार प्रथम भाषा में व्याकरणिक शुद्धता और शैली की उपयुक्तता को रेखांकित करके उच्च संप्रेषण-कौशल को प्राप्त करना इस स्तर पर प्रथम भाषा शिक्षण का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए।

इस स्तर पर अंग्रेज़ी, हिंदी और अन्य आधुनिक भारतीय भाषाएँ, जिनका अध्ययन द्वितीय भाषा के रूप में किया जाता है, उनके प्रयोग की क्षमता का विकास करना आवश्यक है। जीवन में जब कभी भी आवश्यक हो, भाषा के मौखिक और लिखित उपयोग की क्षमता छात्रों में होनी चाहिए। जानकारी और आनंद के लिए युक्ति-युक्त गति से भाषा को पढ़ना भी भाषा शिक्षण का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है। व्याकरण को अपने आप में एक सैद्धांतिक विषय के रूप में न पढ़ा कर उसे व्यावहारिक और प्रयोगात्मक दृष्टि से संदर्भ सहित इस प्रकार पढ़ाना होगा कि उसमें सिद्धांत पर कम-से-कम ज़ोर हो।

इस प्रकार प्राथमिक स्तर पर अधिक-से-अधिक मौखिक अभ्यास पर बल देना होगा, सभी कौशल, जैसे–सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना और सोचना उच्च प्राथमिक स्तर के अंत तक संतुलित रूप से अध्यापन के मुख्य उद्देश्य होने चाहिए और माध्यमिक स्तर पर आकर पढ़ने और लिखने पर कुछ ज़्यादा ध्यान देना होगा। इन सभी स्तरों पर भाषा शिक्षण के मामले में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और अंतिम दायित्व तो यह होगा कि शिक्षार्थियों को (मौखिक/लिखित) भाषा का प्रभावशाली उपयोग करना आ जाए और वे दैनिक जीवन से जुड़ी सभी स्थितियों में, जब-जब भी ज़रूरी हो, इसका प्रयोग कर सकें।

2.8.3 संस्कृत

राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था में संस्कृत भाषा का विशेष स्थान है, क्योंकि–

- संस्कृत भारतीय लोक समुदाय से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है और जीवन में लोगों के कर्मकांड, पर्व, त्योहार इसी भाषा के माध्यम से संपन्न होते हैं,
- इसमें ज्ञान और विवेक का अगाध भंडार उपलब्ध है। उसे आधुनिक ज्ञान क्षेत्र में उपलब्ध सर्वश्रेष्ठ रचनाओं के द्वारा पुनर्जीवित, पुनर्निर्मित और समृद्ध करना होगा,

- इसमें अखिल भारतीय रूप से पूरे देश के लिए एक सार्वभौम या लोकव्यापी अपील है,
- हिंदी और अधिकांश अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के साथ इसका संरचनात्मक, शाब्दिक और अर्थ संबंधी गहरा संबंध है जिससे इन भाषाओं को बेहतर ढंग से सीखना आसान हो जाता है,
- अंतर्राष्ट्रीय रूप से कंप्यूटर में उपयोग के लिए संस्कृत सर्वाधिक वैज्ञानिक संरचना वाली भाषा के रूप में मान ली गई है।

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर संस्कृत का अध्ययन करने के इच्छुक सभी शिक्षार्थियों को इस भाषा के समुचित ऐच्छिक पाठ्यक्रम उपलब्ध कराए जाने चाहिए। इसलिए संस्कृत भाषा के अध्ययन को प्रोत्साहित करना अत्यंत आवश्यक है। प्राथमिक या उच्च प्राथमिक स्तर के उपयुक्त स्थल पर संस्कृत को हिंदी एवं मातृभाषा के रूप में प्रयुक्त अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के साथ संयुक्त भाषा के रूप में पढ़ाया जा सकता है। पाठ्यक्रम का नियोजन इस प्रकार करना होगा कि उसमें संस्कृत का यथोचित स्थान बना रहे। माध्यमिक स्तर पर एक अतिरिक्त ऐच्छिक विषय के रूप में संस्कृत पढ़ाई जा सकती है। संस्कृत के लिए मुक्त विद्यालयी पाठ्यक्रमों की भी रचना की जा सकती है।

संस्कृत भाषा की पाठ्यचर्या बनाने और उसे कक्षा में एक पाठ्यक्रम के विषय के रूप में लागू करने के लिए एक बड़ा बदलाव यह करना होगा कि इसे भारत के लोगों के जीवन की सामान्य आवश्यकताओं से जुड़ी हुई एक जीवंत भाषा माना जाए जिसने योग, वैदिक गणित, खगोल विज्ञान और आयुर्वेद के माध्यम से सारे विश्व का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है।

2.8.4 हिंदी

भारत की सभी भाषाएँ समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं और देश के सभी नागरिकों को उनसे प्रेम और उनका सम्मान करना चाहिए। हिंदी की स्थिति इस रूप में अन्य भारतीय भाषाओं से भिन्न है, क्योंकि उसको भारतीय संविधान के अनुसार भारतीय संघ की 'राजभाषा' का दर्जा दिया गया है। जैसा कि प्रारंभ में सोचा गया था, हिंदी भाषा तीव्र गति से देश की सार्वजनीन भाषा (लिंग्वा फ्रेंका) बन रही है। इसलिए यह आवश्यक है कि हिंदी के पाठ्यक्रम ऐसे हों कि उससे पूरे भारत में परस्पर संवाद और संचार के रास्ते खुलें और उसमें उच्चस्तरीय व्यावसायिक कुशलता सुनिश्चित हो। इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए नियमित विद्यालयी व्यवस्था और मुक्त विद्यालयों के पाठ्यक्रमों में हिंदी में साहित्य के अलावा अधिक-से-अधिक कार्यात्मक कोर्स (पाठ्यविधियाँ) उपलब्ध कराए जाएँ।

2.8.5 विदेशी भाषाएँ

सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक और आर्थिक क्षेत्रों में तेज़ी से बढ़ती हुई अंतर्राष्ट्रीय अंतःक्रिया तथा संपर्क और सहयोग की ज़रूरत को देखते हुए विदेशी भाषाओं, जैसे—चीनी, जापानी, रूसी, फ्रेंच, जर्मन, अरबी, फ़ारसी और स्पेनिश के अध्ययन-अध्यापन की आवश्यकता अब महसूस की जाने लगी है।

इन भाषाओं को त्रिभाषा सूत्र में नहीं पिरोया जा सकता। फिर भी इन भाषाओं में से जिन भाषाओं के अध्ययन-अध्यापन की माँग की जाए और उनके लिए यदि विद्यालयों में बुनियादी संसाधन उपलब्ध हैं तो अतिरिक्त ऐच्छिक विषय के रूप में माध्यमिक स्तर पर उन्हें पढ़ाने की व्यवस्था की जा सकती है।

2.8.6 गणित

विद्यालयों में गणित पढ़ाने का एक उद्देश्य यह है कि छात्र अपने आसपास के अनुभवों के परिमाणन (क्वांटिफिकेशन) के कौशल विकसित कर सकें। इसके लिए ज्यामितीय आकृतियों और संख्याओं के साथ प्रयोग करना, परिकल्पनाएँ करना और अवलोकन के माध्यम से उनकी पुष्टि करना गणित सीखने-सिखाने के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। गणित शिक्षण में इन निष्कर्षों का प्रमाणों के साथ सामान्यीकरण करने और समस्या हल करने की क्षमता का विकास निहित है। परिचित, अपरिचित और वास्तविक जीवन-स्थितियों में गणित के व्यावहारिक प्रयोग से निर्णय लेने की प्रक्रिया में सहायता मिलती है। संक्षिप्तता, युक्तियुक्त और विश्लेषणात्मक चिंतन, विवेक, सकारात्मक दृष्टिकोण और सौंदर्यबोध को विकसित करने में गणित का बहुत योगदान रहता है। शिक्षण के एक विशेष क्षेत्र के अतिरिक्त, गणित उन विषय-क्षेत्रों के विकास में भी बहुत मदद करता है जिनमें विश्लेषण, तर्क-वितर्क और विचारों की संख्या या मात्रा निश्चित करना शामिल है। गणित का अध्ययन अनुमान लगाने, जाँच और तर्क के माध्यम से प्रमाणिकता प्रकट करने और नए प्रश्न उठाने के लिए भी अवसर देता है। गणित की मूल संरचना का बोध गणित की शक्ति और क्षेत्र को बेहतर ढंग से जानने के लिए प्रवृत्त करता है। गणित की पाठ्यचर्या के माध्यम से भारतीय गणितज्ञों के योगदान को भी अन्य गणितज्ञों के योगदान के साथ समझने और सराहने की भावना विकसित की जानी चाहिए। इससे छात्रों में आत्मगौरव और आत्मविश्वास पैदा होगा।

माध्यमिक स्तर की गणित पाठ्यचर्या निश्चित करते समय यह ध्यान में रखना होगा कि अधिकांश छात्र इस स्तर के अंत तक विद्यालय छोड़ देंगे। उन्हें गणितीय कौशल और दक्षताओं का प्रयोग अपनी दैनंदिन कार्यस्थितियों में करना होगा। बहुत थोड़े छात्र ही उच्च शिक्षा में प्रवेश लेंगे, इसलिए दोनों समूहों की शिक्षण आवश्यकता के अनुरूप गणित पाठ्यचर्या में संतुलन रखना होगा।

प्राथमिक स्तर के प्रथम दो वर्षों में अर्थात् पहली और दूसरी कक्षा में बच्चों को सीधे अंक या संख्या में न सिखाकर आकार, लंबाई, भार आदि की अवधारणाओं से परिचित कराना होगा। इससे उनके कौशलों में प्रखरता आएगी और वे उनका इस्तेमाल वर्गीकरण, समूहीकरण एवं क्रमबद्ध सोच के लिए कर सकेंगे। इनसे अंकों को सीखने और जोड़ने-घटाने की दक्षता प्राप्त करने के लिए बच्चों में एक मज़बूत बुनियाद तैयार होगी। गणित की विषयवस्तु का निर्धारण बच्चों के आसपास के पर्यावरण को ध्यान में रखकर ही होगा। तीसरी से पाँचवी कक्षा में संख्याओं और खंडों या भिन्नों को अवधारणा के रूप में सिखाना होगा। चार बुनियादी क्रियाएँ—जोड़ना, घटाना, गुणा करना, भाग करना और उनसे जुड़ी संगणनात्मक क्रियाओं के लिए संख्याओं और भिन्नों पर प्रवीणता या अधिकार प्राप्त करना ज़रूरी है। लंबाई, भार, क्षमता, मुद्रा, समय, क्षेत्रफल, आकार आदि के बारे में अवधारणाएँ उनके मापने की इकाइयों के साथ विकसित करनी होंगी। बच्चों को ज्यामितीय आकृतियों और रचनाओं से भी परिचित कराना होगा जिनसे वातावरण में मौजूद पैटर्न और सममितियों (सीमेट्री) को बच्चे समझ सकें। अंकगणितीय प्रक्रियाओं का सरल प्रयोग भी इस स्तर पर पाठ्यक्रम में रखना ज़रूरी है।

उच्च प्राथमिक स्तर पर अधिकांश अध्यापन दैनिक जीवन के लिए आवश्यक गणित तक सीमित रहना चाहिए। छात्र तथ्यों, अवधारणाओं, दैनिक उपयोग के गणित के सिद्धांतों, व्यावहारिक ज्यामिति, क्षेत्रमिति (मेंसुरेशन), सांख्यिकी के वर्णनात्मक प्रारंभिक क्षेत्र और बीजगणित की बुनियादी अवधारणाओं का ज्ञान अर्जित करें और समझ विकसित करें। ज्यामितीय अवधारणाओं को प्रायोगिक ढंग से लागू करना और पुष्ट करना होगा और उसके लिए तरह-तरह के मॉडल्स एवं उपकरण काम में लाने होंगे। छात्रों को मौखिक/मानसिक गणित के लिए भी प्रोत्साहित करना चाहिए जो उनके दैनिक जीवन की समस्याओं को सही ढंग से और पूरी गति से सुलझाने में मदद करे। छात्रों को आगे चलकर सांख्यिकी आँकड़े ग्राफ़्स/चार्ट्स/डायग्राम्स के माध्यम से पढ़ना आना चाहिए और उन्हें बनाने, उनके मॉडल तैयार करने और उन्हें मापने के कौशलों को भी विकसित करना चाहिए।

प्रारंभिक स्तर पर गणित सीखने-सिखाने की प्रक्रिया इस प्रकार हो कि विद्यार्थी उसमें प्रवीणता प्राप्त कर लें। इस स्तर पर उपचारात्मक शिक्षण और समुचित मूल्यांकन गणित के अध्ययन-अध्यापन की प्रक्रिया का अभिन्न अंग होना चाहिए।

माध्यमिक स्तर पर गणित के अध्ययन-अध्यापन को दो पूरक उद्देश्यों की पूर्ति करनी होगी। प्रथम तो छात्रों की क्षमता को इस प्रकार आगे बढ़ाना होगा कि वे दैनिक जीवन की समस्याओं को गणित के माध्यम से हल कर सकें। दूसरे, गणित का एक विषय के रूप में व्यवस्थित अध्ययन शुरू करके वे उसे आगे जारी रख सकें। पाठ्यचर्या में प्रासंगिक अंकगणितीय अवधारणाओं, संख्या प्रणाली, बीजगणित, ज्यामिति, त्रिज्यामिति, कोऑरडिनेट ज्यामिति, क्षेत्रमिति,

ग्राफ़्स और सांख्यिकी का समावेश होना चाहिए। प्रमाणित करने की अवधारणा का विकास आगमनात्मक तर्क बुद्धि पर ज़ोर देकर करना चाहिए। जनसंख्या, कृषि, पर्यावरण, उद्योग, भौतिकीय और जीव विज्ञान, इंजीनियरिंग, प्रतिरक्षा आदि विषयों की आँकड़ों से संबंधित समस्याओं का हल निकालने में गणित का व्यापक प्रयोग किया जाना चाहिए। छात्रों को इसमें भी कुशलता प्राप्त करनी होगी कि वे पर्यावरण-उपलब्ध-जानकारी ग्राफ़ों और चार्टों के माध्यम से प्रस्तुत कर सकें और सारी गणनाएँ सही प्रकार एवं गति के साथ कर सकें। इसके बाद छात्रों को समस्याओं का हल निकालने के लिए बीजगणितीय विधियों की योग्यता अर्जित करनी चाहिए। ऊँचाई एवं दूरी आदि की समस्याओं के हल के लिए सरल त्रिज्यामिति के ज्ञान का प्रयोग करना आना चाहिए। भारत के विशेष संदर्भ में गणित के इतिहास और गणितीय चिंतन को पाठ्यचर्या में महत्त्वपूर्ण स्थान देना होगा। यथाप्रसंग वैदिक गणित के उपयोग के द्वारा भी छात्रों के संगणकीय कौशलों में वृद्धि करनी होगी।

विद्यालयी शिक्षा की ठीक शुरूआत से अर्थात् प्राथमिक स्तर से ही गणित शिक्षण उपयुक्त क्रियाकलापों के माध्यम से किया जाए। इन क्रियाकलापों में स्थूल सामग्री, मॉडल, पैटर्न, चार्ट्स, चित्र, पोस्टर्स, खेल, पहेली और प्रयोगों का उपयोग किया जा सकता है। सहायक शिक्षण सामग्री के उपयोग पर ज़ोर देने की ज़रूरत है।

प्रयोगों द्वारा गणितीय लक्ष्यों की खोज में सहायता करने के लिए वर्तमान विज्ञान प्रयोगशालाओं में ही एक गणित कॉर्नर की स्थापना की जा सकती है। इसके लिए वर्तमान विज्ञान प्रयोगशालाओं को विज्ञान-गणित प्रयोगशाला का रूप दिया जा सकता है। यह कार्य छात्रों और शिक्षकों द्वारा समुदाय को संसाधन प्रदान करने के लिए प्रेरित करके किया जा सकता है। इस प्रयोगशाला को गणित और विज्ञान की खोज के लिए एक संयुक्त केंद्र के रूप में विकसित करना होगा। वास्तविक जीवन-स्थितियों पर आधारित स्वदेशी अनुभवों और गणितीय नवाचारों को महत्त्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिए। इस प्रकार के गणित शिक्षण की मूल्यांकन-योजना में गणित को विज्ञान के बराबर वेटेज देना होगा।

शिक्षण सामग्री विकसित करते समय पाठ्यपुस्तकों में जो विषयवस्तु और भाषा प्रयुक्त हुई है उसमें केंद्रिक घटक, जैसे—स्त्री-पुरुष समानता, पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक अवरोधों की समाप्ति, छोटे परिवार का मानक आदि का यथास्थान समावेश होना चाहिए।

माध्यमिक स्तर पर मूल्यांकन का बल अवधारणाओं की समझ और व्यावहारिक उपयोग की जाँच पर होना चाहिए न कि अवधारणाओं को रट लेने पर।

2.8.7 विज्ञान और प्रौद्योगिकी

विज्ञान प्रत्येक मानव में निहित जिज्ञासा और आश्चर्य करने की क्षमता के प्रति सृजनात्मक

प्रतिक्रिया है। विद्यालयों में विज्ञान-शिक्षण छात्रों में खोज करने की भावना, सृजनात्मकता और सौंदर्यबोध के साथ वस्तुनिष्ठता को उत्कर्ष की ओर ले जाता है। उसका लक्ष्य सुपरिभाषित योग्यताओं को जानने, कार्य करने और अपने अस्तित्व के प्रति चेतना का विकास करना है। विज्ञान पर्यावरण और दैनिक जीवन से जुड़ी स्थितियों और प्रचलित आस्थाओं से जुड़े प्रश्नों, पूर्वग्रहों एवं समाज में प्रचलित क्रियाओं से जुड़ी समस्याओं के समाधान खोजने की योग्यता का पोषण करता है। विज्ञान अंतरिक्ष संबंधी मूलभूत ज्ञान तथा विश्व और उसके पर्यावरण-परिवेश से भी संबंधित है। विज्ञान को मनुष्यता की सेवा के लिए प्रौद्योगिकी कई ऐसे तरीकों और साधनों से उत्प्रेरित करती है जो मानव जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाएँ और सुधारें। इसलिए सामान्य माध्यमिक शिक्षा स्तर पर विज्ञान शिक्षण के बदले विज्ञान और प्रौद्योगिकी का शिक्षण करना होगा। वह भी इस दृष्टि से कि इन दोनों के बीच सुदृढ़ जीवंत कड़ियाँ जुड़ी हुई हैं। वैज्ञानिक अध्ययनों का मुख्य प्रयास जहाँ भौतिक संसार की खोज रहा है वहीं प्रौद्योगिकी का प्रयास इन खोजों का सही इस्तेमाल और नियंत्रण करना रहा है। विज्ञान सार्वभौम है और उसके सिद्धांत एवं नियमों को दुनिया में कहीं भी जाँचा, परखा या पुष्ट किया जा सकता है। आर्थिक, भौगोलिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों के आधार पर प्रौद्योगिकी कई आकार धारण करती है। इक्कीसवीं सदी के नागरिकों को वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकी-साक्षरता की बुनियादी बातों को समझना और अर्जित करना होगा। छात्रों को उन मूलभूत सिद्धांतों को समझना होगा जो अनेक प्रकार की समस्याओं के समाधान के लिए विभिन्न क्षेत्रों में आजमाए जाते हैं, जैसे—कृषि, मौसम, ऊर्जा, स्वास्थ्य एवं पोषण, उद्योग, प्रतिरक्षा, सूचना-विश्लेषण और मानव-सरोकारों से जुड़े अन्य क्षेत्र। समस्या समाधान और निर्णय लेने के कौशलों को हासिल करने के अतिरिक्त यह प्रक्रिया छात्रों को विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बीच के संबंधों की खोज करने में सहायता करेगी।

विज्ञान प्रक्रियाओं से परिचालित होता है। फलस्वरूप विज्ञान शिक्षण एवं अधिगम में प्रक्रियाओं पर ध्यान केंद्रित करना आवश्यक है, उदाहरणतः अवलोकन के साथ प्रयोग, आँकड़ों का संग्रह, वर्गीकरण, विश्लेषण, परिकल्पना-निर्माण, तात्पर्य निकालना और अंततः वस्तुनिष्ठ सत्य के प्रति निष्कर्ष देना। इस प्रकार जो प्रक्रियात्मक कौशल अर्जित किए जाएँगे वे उन दृष्टिकोणों और मूल्यों का विकास करेंगे जो वैज्ञानिक मानसिकता पैदा करते हैं। विज्ञान परिचित पर्यावरण में सीखा जा सकता है न कि प्रतिकूल और कृत्रिम स्थितियों में।

माध्यमिक स्तर तक सामान्य शिक्षा में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के अध्यापन का मुख्य उद्देश्य छात्रों को वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकी-साक्षरता के विभिन्न आयामों से परिचित कराना है। इसमें शामिल हैं : विज्ञान की प्रकृति को समझना, वैज्ञानिक अवधारणाओं और उनके प्रौद्योगिकी प्रयोगों या व्यवहारों को सही ढंग से लागू करने की योग्यता अर्जित करना, विज्ञान और प्रौद्योगिकी में अंतर्निहित मूल्यों को समझने की क्षमता विकसित करना, विज्ञान,

प्रौद्योगिकी और समाज के संयुक्त प्रयासों को समझना और उन पर विचार करने की इच्छा पैदा होना, अंतरिक्ष के संबंध में समृद्ध संतोषप्रद दृष्टिकोण का निर्माण और आजीवन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की शिक्षा की निरंतरता बनाए रखना और कुछ उपयोगी कौशलों का विकास करना, जो कि दैनिक जीवन की स्थितियों के लिए आवश्यक हैं। प्रयोगशालाओं के अंदर और बाहर उपलब्ध सहयोग के अतिरिक्त यह ज़रूरी होगा कि सूचना प्रौद्योगिकी के उपकरणों का उपयोग किया जाए, जैसे—कंप्यूटर और मल्टीमीडिया पैकेज।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी शिक्षण में कुछ ऐसे मूल्य होने चाहिए जो सभी छात्रों को दिए जा सकें। ग्रामोन्मुखी एवं आदिवासी-जीवनोन्मुखी टैक्नोलॉजी को विशेष रूप से शैक्षिक पैकज का प्रमुख भाग बनाना होगा और उसकी संबद्धता सुनिश्चित करनी होगी। विज्ञान को चाहिए कि वह आवश्यकतानुसार पारंपरिक विषय-सीमाओं से परे हटकर अपने आप को नवीन मुद्दों के लिए खोले, जैसे—स्त्री-पुरुष-समानता, संस्कृति, भाषा, निर्धनता, विकलांगता, भावी रोज़गार, पर्यावरण और सीमित परिवार के मानदंड। अतीत और वर्तमान दोनों में ही विज्ञान और प्रौद्योगिकी की जो परंपरा रही है उससे और भारतीय वैज्ञानिकों के योगदान से बच्चों को परिचित कराना आवश्यक है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के माध्यम से भारत ने विभिन्न क्षेत्रों में जो उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं उनको जानकर छात्रों में आत्मविश्वास का पोषण होगा। ये सभी मुद्दे विज्ञान-पाठ्यचर्या के अभिन्न अंग होंगे।

प्राथमिक स्तर

विज्ञान प्राथमिक स्तर पर अधिगम का एक अभिन्न अंग है। प्राथमिक शिक्षा के प्रथम दो वर्षों के दौरान अपने आसपास के पर्यावरण से जुड़ी यथार्थ मूर्त-स्थितियों के ज़रिए विज्ञान-शिक्षण करना ज़रूरी है। इसमें मुख्य रूप से छात्रों की ज्ञानेंद्रियों को सक्रिय बनाकर उन्हें अपने परिवेश और पर्यावरण से खोज करने और अवलोकन एवं नई तलाश करने के लिए प्रेरित करना होगा। इससे अधिकांश अनुभवों को तो छात्र स्वयं ही समृद्ध कर लेंगे और कुछ में समय-समय पर शिक्षक अपनी ओर से जोड़ कर सहयोग करेंगे। प्राथमिक शिक्षा के शेष तीन वर्षों में जब पर्यावरण-शिक्षण शुरू किया जाए तो धीरे-धीरे अनुभवों और क्रियाकलापों की भी रचना करनी होगी, लेकिन ध्यान तो केंद्रित करना होगा वस्तुओं, घटनाओं, प्राकृतिक-स्थितियों और शिक्षार्थी के पर्यावरण पर ही। बच्चे निरंतर पर्यावरण में घटने वाली घटनाओं का अवलोकन, उनकी तलाश और उन्हें पहचानना सीखेंगे। यह उनमें जिज्ञासा पैदा करेगी और छात्रों के दिमाग में अनेक प्रश्न पैदा करेगी। शिक्षक इस तत्व को शिक्षण-प्रक्रिया में प्रमुख साधन मानेंगे और बच्चों को जहाँ भी संभव हो, आगे इस बात के लिए प्रोत्साहित करेंगे कि वे सूचनाएँ एकत्र कर यथासंभव उनके वर्गीकरण का प्रयत्न करें। इस स्तर पर स्वतंत्र रूप से और समूहों में प्रश्नों के उत्तर खोजने की प्रक्रिया शुरू की जा सकती है। यहीं अनुमान और मापन के कौशल भी विकसित किए जा सकते हैं।

उच्च प्राथमिक स्तर

इस स्तर पर बच्चे विज्ञान, प्रौद्योगिकी और मानवीय उद्यम के बीच के संबंधों को पहचानने लगते हैं। इस प्रक्रिया को मज़बूत बनाते हुए इसे ठोस रूप देना होगा। छात्र सरल वैज्ञानिक क्रियाकलापों में निहित प्रक्रियाओं को जानने के लिए बेहतर ढंग से तैयार रहते हैं और समस्या-समाधान एवं निर्णय करने में उनकी उपयोगिता का अंदाज भी लगा लेते हैं। वे कार्य-कारण संबंध और संरचना कार्य-संबंधों को भी समझने लगते हैं। पर्यावरण को शिक्षण के मुख्य स्रोत के रूप में निरंतर बने रहना चाहिए और छात्रों को अपने आसपास घटित होने वाले परिवर्तनों को समझना चाहिए। यहाँ बच्चे इस जीवंत विश्व, प्राकृतिक संतुलन और वायु, जल एवं ऊर्जा के संबंध में भी समझ हासिल करेंगे। प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण पर भी आवश्यक बल देना होगा। इस स्तर पर पदार्थ, सामग्री और ऊर्जा से संबंधित मूल सिद्धांतों की प्रारंभिक समझ का शिक्षण भी शुरू किया जा सकता है। इस स्तर पर जीवन-प्रक्रियाओं से परिचय, स्वास्थ्य, पोषण और बीमारियाँ, मिट्टी और कृषि क्रियाएँ और उनका अनुकूलन करने की प्रक्रिया भी विज्ञान पाठ्यचर्या का अंग होगा।

छात्रों को वैज्ञानिक जानकारियों से लाद देने के बजाए ऐसे प्रयास करने होंगे कि छात्र उन *मुख्य अवधारणाओं* को सीखें जो पूरे विज्ञान-विषयों में कहीं-न-कहीं पाई जाती हैं। इससे उनमें जिज्ञासा पैदा होगी और उनकी चेतना और समझ का विस्तार होगा। सामान्य सरल उपकरण स्वयं ही तैयार करने, स्थानीय संसाधनों के उपयोग से प्रयोगों की रचना करने और उनके द्वारा वैज्ञानिक-अवधारणाओं को समझने और कुछ प्राकृतिक घटनाओं एवं स्थितियों की व्याख्या करने के लिए छात्रों को प्रेरित करना होगा। छात्रों में कुछ स्थानीय और कुछ सार्वभौम सरोकारों के प्रति चेतना उत्पन्न करनी होगी और विशेष रूप से उन्हें इन क्षेत्रों में सतत जागरूक बनाए रखना होगा, जैसे– पेयजल, पर्यावरण, स्वास्थ्य, पोषण, परिवार-कल्याण आदि।

माध्यमिक स्तर

इस स्तर के पश्चात अधिकांश छात्र कार्य-जगत में प्रवेश कर जाते हैं। इस स्तर पर जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण और कौशल बनते हैं वे आगे के विकास की बुनियाद बनते हैं। छात्रों को विज्ञान की प्रकृति और संरचना एवं विज्ञान-प्रौद्योगिकी के विकास में इसके योगदान से परिचित कराना ज़रूरी है। इस स्तर पर विज्ञान-शिक्षण को प्राकृतिक और सामाजिक पर्यावरण एवं परिवेश के इर्द-गिर्द रखना चाहिए। पदार्थ और उनकी विशेषताओं, ऊर्जा, विभिन्न भौतिक प्रक्रियाओं और विज्ञान के सिद्धांतों के प्रौद्योगिकी प्रयोग के बीच के संबंध की समझ और अवधारणाओं को शिक्षण के केंद्र में रखना होगा। प्राणी विज्ञान में शरीर रचना, उसके संयोजन और जीवन-प्रक्रियाओं का अध्यापन किया जाएगा। विज्ञान और प्रौद्योगिकी

की संयुक्त प्रणाली का व्यावहारिक उपयोग स्वास्थ्य और पोषण, उद्योग, कृषि, पशुपालन एवं अन्य संबंधित क्षेत्रों में विज्ञान की कड़ियाँ सामाजिक आकांक्षाओं से जोड़ेगा। इस स्तर पर विज्ञान के शिक्षण और अधिगम में विज्ञान, प्रौद्योगिकी, समाज और पर्यावरण को समन्वित किया जाएगा।

जो भी व्यावहारिक क्रियाकलाप चुने जाएँ वे कौशलों और मूल्यों के अर्जन के द्वारा भावी जीवन में प्रासंगिक होने चाहिए। छात्रों को व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों ही प्रकार से काम करने के लिए प्रोत्साहित करना आवश्यक है। आलोचनात्मक, सृजनात्मक और उत्पादक चिंतन का विकास करना होगा। स्वयं के साधनों से कुछ करने की भावना को प्रोत्साहित तो अवश्य करना चाहिए लेकिन उसका नमूना खोज के एक तत्व के रूप में देना होगा। प्रयोगों के लिए बड़े पैमाने पर लचीलेपन को अपनाना होगा। छात्रों को उपयुक्त प्रयोगों और क्रियाकलापों में मदद करने के लिए विद्यालय के अंदर और बाहर ऐसे उपाय बताने होंगे जिनसे उन्हें अपने नज़दीकी पर्यावरण से जुड़े कामों में शामिल किया जा सके, जैसे—कृषिफार्म, कारखाने, उद्योग और समुदाय संबंधी कार्य।

2.8.8 सामाजिक विज्ञान

सामाजिक विज्ञान का घटक माध्यमिक स्तर तक के समस्त विषयों की सामान्य शिक्षा का एक अभिन्न अंग है। यह शिक्षार्थियों में मानवीय पर्यावरण को पूर्णरूप से समझने में सहायता करता है और एक विराट आयाम विकसित कर प्रत्यक्ष अनुभव आधारित, युक्तियुक्त और मानवीय दृष्टिकोण पैदा करता है। छात्रों को यह विषय आवश्यक गुणों/कौशलों के साथ पूर्ण सूचना संपन्न और ज़िम्मेदार नागरिक बनने में मदद करता है जिससे वे विकास प्रक्रिया और राष्ट्र निर्माण में भागीदारी करके अपना प्रभावी योगदान कर सकें।

विद्यालयी पाठ्यचर्या के लिए सामाजिक विज्ञान की विषयवस्तु का चयन मुख्य रूप से भूगोल, इतिहास, नागरिकशास्त्र और अर्थशास्त्र जैसे विषयों से किया जाता है। उसमें समाजशास्त्र के भी कुछ तत्व शामिल किए जाते हैं। ये सब मिलकर मानव-समाज के विभिन्न आयामों के अध्ययन के लिए छात्र को प्रवृत्त करते हैं, जैसे– स्थान और समय और उनका एक दूसरे से संबंध के आधार पर अध्ययन। इस विषय का अध्ययन छात्रों में समकालीन समाज की बेहतर समझ विकसित करने में सहायक होता है। सामाजिक विज्ञान की शिक्षा छात्र को समाज के प्रभावी और सहयोगी सदस्य बनने के लिए आवश्यक ज्ञान, कौशल और आत्म-विकास के लिए सही दृष्टिकोण प्रदान करती है।

सामाजिक विज्ञान की शिक्षा को सार्थक, प्रासंगिक और प्रभावी बनाने के लिए समकालीन संसार के सरोकारों और मुद्दों को ध्यान में रखना होगा। इस उद्देश्य से इतिहास की

विषय-सामग्री से अनावश्यक तत्व हटाने पड़ेंगे। अतीत के विकास का ऐतिहासिक अध्ययन करने से वर्तमान को समझा जा सकता है। इसलिए वर्तमान की चुनौतियों को उपयुक्त ढंग से समझना आवश्यक है। एक ओर भूमंडलीकरण और उदारीकरण और दूसरी ओर स्थानीयता का भावी समाज पर बहुत असर पड़ेगा। ये तत्व अपने साथ अनेक सामाजिक और आर्थिक चुनौतियाँ लेकर आए हैं। एक सुदृढ़ और सुसंबद्ध भारतीय समाज की रचना के लिए इन चुनौतियों का प्रभावशाली ढंग से सामना करना होगा। इसके लिए संवेगात्मक रूप से प्रतिभा संपन्न ऐसे छात्रों की ज़रूरत होगी जो चुनौतियों का सामना करते हुए नवीन और अपरिचित स्थितियों के साथ संयोजन कर सकें।

लोकतांत्रिक पद्धति में अधिकारों के विकेंद्रीकरण और स्थानीय शासन, जैसे– पंचायती राज-व्यवस्था ने बहुत महत्त्व हासिल कर लिया है। इसका उद्देश्य लोगों की सहभागिता के स्तर को ऊँचा उठाना है। विकास के संसाधनों का अधिकतम उपयोग करने के लिए स्थानीय शासन को अधिकाधिक जवाबदेह और कुशल बनाना होगा। इसलिए छात्रों को विकास की प्रक्रिया और उसकी ज़रूरतों एवं निहितार्थों को समझने के लिए अच्छी तरह से तैयार करना होगा। इसके साथ ही उन्हें स्थानीय, राज्य स्तर और राष्ट्रीय स्तर पर शासन करने की प्रणाली तथा उसमें अपना स्थान समझना होगा। इसके लिए नागरिकशास्त्र के पाठ्यक्रम को परिवर्द्धित करने की आवश्यकता होगी। बौद्धिक जानकारी के साथ-साथ सामाजिक कौशल, जैसे– आलोचनात्मक चिंतन, तालिकाओं, आरेखों और मानचित्रों को पढ़ना और उनकी व्याख्या करना, दूसरों के साथ सहयोग करना और उनकी समस्याओं के प्रति संवेदनशील होना और नेतृत्व के लिए अकादमिक के साथ-साथ सामाजिक कौशलों का व्यवस्थित रूप से विकास भी करना होगा। सामाजिक विज्ञान की पाठ्यचर्या की सुविचारित रचना छात्रों के लिए 'वैश्विक ढंग से सोचने और स्थानीय रूप से कार्य करने' दोनों में सहायक होगी।

आज के विश्व में जहाँ ज्ञान अनवरत रूप से बढ़ रहा है विषयवस्तु के चयन और संयोजन का बहुत महत्त्व है। सामाजिक विज्ञान का पाठ्यक्रम समग्रतायुक्त तो हो किंतु अनावश्यक जानकारियों से लदा हुआ नहीं होना चाहिए। विचारों की अंतर्संबद्धता और उनकी समग्रता एवं अवबोध को भी ध्यान में रखना चाहिए। मात्र तथ्यों के एकत्रीकरण की अपेक्षा अधिगम प्रक्रिया और चिंतन के महत्त्व को भी रेखांकित करना उचित होगा। छात्रों को सुनियोजित क्रियाकलापों के माध्यम से सार्थक अधिगम अनुभव देना ज़रूरी है। इससे उन्हें मूल दक्षताएँ और कौशल अर्जित करने में सहायता मिलेगी। इन सबको दृष्टिगत रखते हुए मूल कथानक तथा मुद्दे पाठ्यवस्तु क्षेत्रों के चयन और संयोजन के लिए मज़बूत आधार प्रदान करेंगे। जहाँ शैक्षिक विषय/क्षेत्रों की संख्या कम हो, वहीं छात्रों के अनुभवों को अधिकतम स्तर तक ले

जाने के लिए विषयों की गहराई पर अधिक ध्यान देना होगा। इन कथानकों को भूगोल, इतिहास, नागरिकशास्त्र, अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र से ग्रहण कर उनका संतुलित और उपयुक्त श्रेणीवार संयोजन सरल से जटिल और निकटस्थ से दूरस्थ के सिद्धांत के आधार पर किया जाए। इनमें कुछ मुद्दे और कथानक इस प्रकार हो सकते हैं :

भारतीय सभ्यता और उसकी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का विश्व सभ्यता के साथ अध्ययन करके उनके अंतर्संबंधों को इतिहास के आधार पर अध्ययन का मुख्य क्षेत्र बनाया जा सकता है। इस दृष्टि से देश में घटित विभिन्न सांस्कृतिक आंदोलनों और क्रांतियों तथा देश की संस्कृति के अन्य देशों तक प्रसार संबंधी विषयवस्तु का समावेश करना होगा। खाद्यान्न उपलब्धता की सुनिश्चितता, जनसंख्या वृद्धि, निर्धनता, जल का अभाव, जलवायुगत परिवर्तन और सांस्कृतिक बहुलता का संरक्षण इक्कीसवीं सदी के कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण मुद्दे हैं जो सामाजिक विज्ञान पाठ्यचर्या के लिए प्रासंगिक हैं। इसलिए 'पर्यावरण, संसाधन, स्वपोषित विकास' और 'मानव पर्यावरण अंतर्क्रिया' की विषयवस्तु भूगोल, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र एवं अन्य संबंधित क्षेत्रों से ग्रहण की जाएगी। भारत के संबंध में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्थाओं एवं प्रशासन प्रणाली और उनके कार्यों– विशेषतः विषय-सामग्री नागरिकशास्त्र और अर्थशास्त्र से ली जाएगी। मानव-पर्यावरणों से जुड़े आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक पहलुओं पर ज़ोर देना होगा। जहाँ समकालीन विश्व के संदर्भ में विशेष रूप से ऐसा करना होगा, वहीं भारत को इसके केंद्र में रखना होगा। 'यूरोप–संकेंद्रित विश्व' जैसे विचार में परिवर्तन होना अनिवार्य है। इससे यूरोपियनों द्वारा भारत और अमेरिका की खोज जैसे विषय भारतीय छात्रों के लिए महत्त्वपूर्ण नहीं रह जाएँगे।

सामाजिक विज्ञान के विषय पहले इंगित लगभग सभी केंद्रिक घटकों का एकीकरण करने की दृष्टि से सर्वाधिक उपयुक्त हैं। उदाहरण के लिए भारत के स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, संवैधानिक दायित्व, राष्ट्रीय पहचान विकसित करने वाली विषय-सामग्री, स्त्री-पुरुष समानता, सामाजिक अवरोधों की समाप्ति, मौलिक कर्त्तव्य एवं मानव-अधिकार, जिनमें बच्चों के अधिकार भी उपयुक्त रूप से समाहित हों, ये सभी तत्व सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम में रखे जाने योग्य हैं। विषय-सामग्री और शिक्षण-पद्धति में विभिन्न स्तरों पर इन महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों का समावेश सुनिश्चित करना होगा। इस प्रकार सामाजिक विज्ञान के अध्यापन द्वारा अनेक मूल्यों का विकास किया जा सकता है।

सामाजिक विज्ञान के अध्यापन से मानवीय और राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्यों के विकास को प्रोत्साहन मिलना चाहिए और अपने देश पर तथा भारतीय होने पर गर्व की भावना जाग्रत होनी चाहिए। इसकी ज़रूरत राष्ट्रीय पहचान को सुदृढ़ करने और अपनी सांस्कृतिक विरासत को समझने के लिए आवश्यक है। इससे सांप्रदायिक सद्भाव और सामाजिक समन्वय को प्रोत्साहन

मिलेगा। इसका अध्यापन वस्तुनिष्ठ ढंग से होना चाहिए जो जड़ एवं रूढ़िबद्ध छवियों, पूर्वग्रहों एवं पक्षपातों से मुक्त हो।

सामाजिक विज्ञान के अध्ययन-अध्यापन का मुख्य आधार क्षेत्रकार्य, प्रोजेक्ट कार्य और समूह गतिविधियाँ होनी चाहिए। स्थानीय समुदाय से सीधे जुड़ी परियोजनाओं को प्रेरित करना होगा। आर्थिक और राजनीतिक-विधिक साक्षरता, शिकायत दूर करने की प्रणाली और उपभोक्ता शिक्षा को भी प्रोत्साहित करना चाहिए।

प्राथमिक स्तर

पहली और दूसरी कक्षा में बच्चों को संपूर्ण पर्यावरण से परिचित कराना होगा। प्राकृतिक और सामाजिक पर्यावरण में कोई स्पष्ट भेद करने की ज़रूरत नहीं है। बच्चों के निकटस्थ पर्यावरण को ही विषयवस्तु माना जाए। उसके लिए अध्ययन का कोई पृथक परिक्षेत्र नहीं होगा। उसकी विषयवस्तु को भाषा, गणित एवं अन्य क्रियाकलापों के साथ समन्वित करना होगा, जैसे—खेलकूद, स्वास्थ्य संबंधी क्रियाएँ और चित्रकला। अवलोकन, वर्णन और आत्म-अभिव्यक्ति के कौशलों को प्रोत्साहित करना होगा।

तीसरी से पाँचवीं कक्षा में प्राकृतिक और सामाजिक तत्व पृथक अध्ययन-क्षेत्र के रूप में शुरू किए जाएँ जो पर्यावरण अध्ययन के नाम से जाने जाएँगे। बच्चों के घर, विद्यालय और पड़ोस, जैसे— आसपास के पर्यावरण एवं परिवेश से प्रारंभ करके धीरे-धीरे राज्य और देश से उनका परिचय कराया जाए। इन अल्पवय के शिक्षार्थियों के लिए भोजन, वस्त्र, घर, मेले और त्योहार और आसपास घटित होने वाले परिवर्तन एवं दैनिक जीवन से जुड़ी कहानियाँ और विवरण सामाजिक विज्ञान के पाठ्यक्रम को इस स्तर पर प्रासंगिक और आनंददायी बना देंगे। इस स्तर पर हमारी पारंपरिक वेशभूषाएँ, लोक-संगीत, लोकनृत्य, स्थानीय समुदाय और क्षेत्र में आयोजित होने वाले मेलों और त्योहारों आदि के प्रति गर्व और आदर की भावना उत्पन्न करने के प्रयास किए जाने चाहिए। ऐसा सामाजिक समरसता के लिए योगदान देने वाले विभिन्न तत्वों के संबंध में समझ विकसित करने की दृष्टि से किया जाना उचित होगा। बच्चों को इस बात से भी परिचित कराया जाना चाहिए कि प्राचीन काल में लोग किस प्रकार रहते थे और अब देश के विभिन्न भागों में किस प्रकार रहते हैं। समुदाय और देश के कुछ सुप्रसिद्ध व्यक्तित्वों, जिनका लोक-जीवन के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, को भी पाठ्यचर्या में शामिल करना होगा।

विद्यालयों को इस स्तर पर स्थानीय रूप से निर्मित पाठ्यचर्या के लिए और पर्यावरण अध्ययन की दृष्टि से स्थानीय संसाधनों के उपयोग के लिए पूर्ण स्वायत्तता दी जानी चाहिए।

उच्च प्राथमिक स्तर

प्रारंभिक वर्षों में देश के संबंध में कुछ जानकारी हो जाने के बाद छात्रों को अधिक विस्तार से भारत और विश्व के अध्ययन की ओर क्रमशः उन्मुख किया जा सकता है। पर्यावरण के घटक और उनकी अंतर्क्रिया का अध्ययन प्रक्रिया और प्रारूपों के अनुसार किया जाएगा। शिक्षार्थियों को खोज एवं अध्ययन स्वेच्छा से करने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा। उदाहरण के लिए, छात्रों को भौतिक और मनुष्य-निर्मित लक्षणों, प्रतिभासों और घटनाओं आदि के संबंध में प्रश्न उठाने के लिए प्रेरित किया जाएगा। छात्रों को देश में वर्षा वितरण और ग्रामीण एवं शहरी भूमि के उपयोग जैसे सरल प्रारूपों की पहचान करने के काबिल बनाया जाएगा। सामाजिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक विकास को यथासंभव भारत के अतीत की चुनी हुई घटनाओं और उपाख्यानों के माध्यम से छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करना होगा। भारत की सांस्कृतिक विरासत को समझने और उसकी सराहना करने के लिए छात्रों की सहायता करनी होगी। दुनिया की कुछ पुरातन सभ्यताओं और उनके पारस्परिक अंतर्संबंधों को, विश्व सभ्यता के विकास में भारत के योगदान तथा अन्य सभ्यताओं के योगदान के साथ-साथ विश्व के प्रमुख ऐतिहासिक घटनाक्रमों को भी समझना और इनकी सराहना करने की भावना विकसित करना सिखाना होगा। समकालीन समाज जिसमें भारत की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक संस्थाएँ और उनके कार्य शामिल हैं, प्रशासनिक प्रणाली, शहरीकरण और आर्थिक-सामाजिक विकास एवं अन्य कुछ क्षेत्रों को पाठ्यचर्या में सम्मिलित करना होगा। छात्रों के विकास और उनकी दैनिक जीवन में प्रभावी भूमिका के लिए शैक्षणिक कौशलों के अतिरिक्त सामाजिक कौशल और नागरिक दक्षताएँ विकसित करनी होंगी।

माध्यमिक स्तर

'समकालीन भारत' अध्ययन का एक केंद्रीय विषय है। इसमें मानव-पर्यावरण-अंतर्क्रिया और पर्यावरण से जुड़े मुद्दे, उनके संसाधन और उनके विकास की प्रक्रियाएँ और प्रारूप निहित हैं। निकट अतीत में जो प्रमुख घटनाएँ घटी हैं, उनमें भारत का स्वतंत्रता संघर्ष और विभिन्न वर्गों, क्षेत्रों एवं समूहों, विशेष रूप से महिलाओं और कमज़ोर वर्गों की भूमिका और योगदान शामिल हैं। उनका स्वतंत्र भारत के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास एवं चुनौतियों पर असर पड़ा है। ये सब विषय पाठ्यचर्या के अंतर्गत छात्रों को पढ़ाने के लिए शामिल किए जाएँगे। भारत के सामने मुद्दे और चुनौतियाँ, जैसे—निर्धनता, निरक्षरता, भ्रष्टाचार, असामाजिक गतिविधियाँ, मौलिक अधिकार, मौलिक कर्त्तव्य और आर्थिक विकास भी यथास्थान पाठ्यचर्या में होंगे। इसके अतिरिक्त विश्व में भारत की भूमिका, विशेष रूप से विश्व शांति, अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और उपनिवेशवाद की समाप्ति जैसे क्षेत्रों को पाठ्यचर्या में शामिल किया जाएगा। प्रवासी भारतीयों के योगदान और उपलब्धियों को भी उचित स्थान दिया जाएगा। माध्यमिक

स्तर के अंत में विद्यार्थियों में इतनी योग्यता आ जानी चाहिए कि वे अपने ज्ञान, समझ और कौशलों का उपयोग स्थानीय, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर विस्तृत अध्ययन के माध्यम से कर सकें। इस स्तर तक आते-आते प्राकृतिक और मानवीय प्रक्रियाओं के बीच की अंतर्क्रियाओं का वर्णन करने और प्रारूपों को पहचानने की योग्यता का उनमें विकास करना होगा। उन्हें तथ्यों के स्रोतों की भी तलाश करने योग्य बनाना होगा और उनमें समस्याओं और मुद्दों के विवेकसम्मत एवं वैज्ञानिक विश्लेषण करने की क्षमता पैदा करनी होगी। यदि छात्र कुछ प्रकरण-अध्ययन या प्रकल्प कार्य हाथ में लेते हैं तो यह उपयोगी तो होगा ही, यह लोगों की पर्यावरण के साथ अंतर्क्रियाओं से उत्पन्न मुद्दों का अनुसंधान करने में उनके लिए सहायक भी होगा।

2.8.9 स्वस्थ और उत्पादक जीवन की कला : प्राथमिक स्तर

पाठ्यचर्या में अधिगम के एक ऐसे अंतर्विषयात्मक क्षेत्र को लाने की महती आवश्यकता है जिसमें स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा, कला शिक्षा और कार्यानुभव आदि समाहित हों। पिछले पाठ्यचर्या-दस्तावेज़ में इन तत्वों को स्पष्ट स्थान प्रदान किए जाने के बावजूद इन पर वास्तव में बहुत ही कम ध्यान दिया गया है। शिक्षक और कार्यान्वयन एजेंसियाँ—जो बच्चों के व्यक्तित्व के समग्र विकास में बड़े पैमाने पर योगदान देती रही हैं, इस संबंध में तार्किक, अवधारणात्मक और अन्य कई कठिनाइयों को महसूस किया है। हमारी व्यवस्था ने भी बच्चों की विकास संबंधी आवश्यकताओं को लेकर कठिनाइयाँ महसूस की हैं। इन क्षेत्रों के आधे-अधूरे मन से क्रियान्वयन के पीछे शिक्षकों के पास उपयुक्त प्रेरणा और मूल्यांकन प्रक्रियाओं का अभाव एक और प्रमुख तत्व रहा है। अन्य अड़चनें इन्हें खंडित रूप से लागू करने के कारण प्रतीत होती हैं। इसलिए 'स्वस्थ और उत्पादक जीवन की कला' के शीर्षक से प्रस्तावित विषय की सिफ़ारिश प्राथमिक कक्षाओं के लिए की जा रही है जो आगे चल कर उच्च प्राथमिक स्तर के लिए भी लागू होगी।

स्वस्थ और उत्पादक जीवन की कला का मुख्य उद्देश्य छात्रों में सौंदर्यबोध और स्वास्थ्यपूर्ण जीवन के कौशलों का विकास करना है। यह श्रम के प्रति आदरभाव, सकारात्मक सामाजिक दृष्टिकोण और नैतिक मूल्यों के पोषण के अवसर देता है जिससे अन्य लोगों के विचारों को बच्चे नम्रता और ईमानदारीपूर्वक और मनसा, वाचा, कर्मणा ग्रहण करते हैं। यह बच्चों को सामाजिक प्राणियों के रूप में विकसित होने के अवसर प्रदान करता है और समाज एवं राष्ट्र के लिए उन्हें समर्पित और सहयोगी नागरिक बनाता है। इसी स्तर पर मनुष्य मात्र के प्रति प्रेम और ज़रूरतमंदों की सहायता जैसे गुण अंकुरित होते हैं और इन गुणों का चरम उत्कर्ष निःस्वार्थ सेवा के रूप में होता है।

पहली और दूसरी कक्षा

आड़े-टेढ़े ढंग से लकीरें खींचना, शरीर के अंगों के संचालन को देख कर खुश होना, रंगों, आकृतियों और खिलौनों को देख कर आनंदित होना आदि पूर्वार्जित अनुभव इस स्तर पर आकर पुष्ट होंगे। बच्चों के खेलने की स्वाभाविक प्रवृत्ति को भी संतुष्ट होना चाहिए। ऐसी क्रियाएँ आयोजित की जा सकती हैं जिनमें बच्चे अपनी पसंद के अनुसार खेल, संगीत, कुछ आकारों में चित्रकला, खेल-खेल में मिट्टी के नमूने बनाना और समूह-क्रियाओं में हलके शारीरिक व्यायाम, समूहगान, अभिनय कला, नृत्य और नकल करने वाली क्रियाएँ सम्मिलित होंगी।

शिक्षकों को बच्चों के लिए क्रियाएँ आयोजित करते समय स्थानीय परिवेश, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और उपलब्ध साधनों को ध्यान में रखना होगा। शिक्षकों को शिक्षार्थियों के लिए आयोजित की जाने वाली प्रत्येक उपयोगी क्रिया के उद्देश्यों को दृष्टिगत करके उन्हें स्वतंत्र खेल और स्वतंत्र अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करने होंगे। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि प्रत्येक बच्चा इन क्रियाओं में सहभागी बने और कुछ अच्छी आदतों का व्यावहारिक रूप में विकास करे। यह उम्र बच्चों में कहानी-कथन और अभिनय के द्वारा उनकी परिपक्वता और समझ के अनुरूप मूल्य विकसित करने के योग्य होती है। ऐसी सभी गतिविधियों को समन्वित रूप से पाठ्यचर्या में प्रस्तुत करने की आवश्यकता है।

इस स्तर पर बच्चे अपने आसपास की चीज़ों के गहन अवलोकन और सही वर्णन की आदत भी विकसित कर सकते हैं। वे शारीरिक स्वच्छता, विशेषकर दाँत साफ़ करने और स्वच्छ कपड़े ढंग से पहनने के कौशल भी हासिल कर लेते हैं। अब बच्चों को औपचारिक स्थिति में सही व्यवहार और सही बोलचाल भी सीखना है। उन्हें सही ढंग से बैठना और खड़ा होना एवं औपचारिक ढंग से बातचीत करना भी सिखाना होगा।

तीसरी से पाँचवीं कक्षा

इस स्तर पर बच्चे बेहतर शारीरिक गठन और ज्ञानेंद्रियों के ज़रिए भेद करने की क्षमता अर्जित कर लेते हैं। वे 'स्वयं' के प्रति एहसास पैदा कर लेते हैं और स्वयं को एवं अपने आस-पास के पर्यावरण को जानने की क्षमता पाने लगते हैं। उनसे इस स्तर पर खेलों के अंतर्गत हलका व्यायाम और थोड़े संगीत के साथ ड्रिल कराई जा सकती है। यही वह स्तर है जब बच्चों को स्वास्थ्य, शक्ति और शारीरिक-सौंदर्य के संबंध में प्रारंभिक ज्ञान दिया जा सकता है। वे विश्राम करने की कला भी विकसित कर लेते हैं। बच्चों को भूख और प्यास से जुड़े संवेदनों पर नियंत्रण करने की कला सिखानी होगी और नियमित रूप से नित्यकर्म से निवृत्त होने की आदत डालनी होगी। वे अपने आस-पास की वस्तुओं के सौंदर्य की

सराहना कर सकते हैं, व्यायाम कर सकते हैं और चीज़ों और संगीत के प्रति अपनी पसंद ज़ाहिर कर सकते हैं। इस स्तर पर उपयुक्त और स्वस्थ जीवन के लिए उचित दृष्टिकोण का विकास करना होगा और शारीरिक स्वच्छता, अपने आसपास की स्वच्छता, वस्त्रों की स्वच्छता तथा बैठने और खाने की जगह की स्वच्छता रखने के लिए प्रोत्साहित करना होगा। बच्चे ऐसी गतिविधियों को पसंद करना भी शुरू कर देंगे जो खेलकूद से जुड़ी हों। उन्हें वे मौलिक आसन सिखाए जाएँगे जो योगाभ्यास की ओर ले जाते हैं। नकल उतारना (मिमिक्री) और तरह-तरह के वाद्ययंत्रों को बजाना भी उनके अनुभवों का हिस्सा होगा। इससे अपनत्व, स्नेह, मित्रता और सामाजिक समरसता की भावनाओं का पोषण होगा। चित्रकला, कोलाज, मिट्टी के नमूने, मुद्रण, मुखौटों का उपयोग, कठपुतली और खिलौने, लोकनृत्य, रंगोली, अल्पना आदि भी इस स्तर पर पाठ्यक्रम के अंग होंगे।

यह वांछनीय होगा कि शिक्षकों का प्रबोधन स्वस्थ और उत्पादक जीवन से जुड़ी गतिविधियों के लिए समेकित रूप से किया जाए। मुद्रित और अमुद्रित दोनों प्रकार की उपयुक्त शिक्षण-सामग्री, जैसे–शिक्षकों को संबोधित पोस्टर बच्चों को स्वस्थ और उत्पादक जीवन की शिक्षा देने के लिए बड़े मददगार साबित हो सकते हैं।

2.9 कार्य शिक्षा, कला शिक्षा, स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा : उच्च प्राथमिक और माध्यमिक स्तर

कार्य शिक्षा

कार्य शिक्षा को उद्देश्यपूर्ण और सार्थक शारीरिक मानवीय श्रम माना गया है, जो शिक्षण-प्रक्रिया के अंतरंग भाग के रूप में आयोजित किया जाता है। इसका परिणाम सामग्री के उत्पादन और समुदाय की सेवा के रूप में प्रकट होता है जिसमें आत्मसंतोष तथा आनंद का अनुभव भी होता है। यह शिक्षा के सभी स्तरों पर एक आवश्यक तत्व के रूप में सुनियोजित और श्रेणीबद्ध कार्यक्रमों के माध्यम से सिखाना चाहिए। इस क्षेत्र में जिन दक्षताओं का विकास किया जाएगा उनमें ज्ञान, समझ, व्यावहारिक कौशल और मूल्य आवश्यकता आधारित जीवन क्रियाएँ शामिल होंगी। जिन मुख्य कार्यश्रेणियों पर विशेष रूप से ज़ोर देना होगा वे निम्नलिखित हैं :

(क) ऐसे कार्य जो व्यक्ति के स्वास्थ्य, स्वास्थ्य विज्ञान (हाइजीन), वेशभूषा, स्वच्छता आदि से जुड़े हों,

(ख) परिवार में विकसित होने वाले सदस्य के रूप में घरेलू कार्य,

(ग) कक्षा और विद्यालय में किए जाने वाले कार्य और विद्यालय से बाहर के क्रियाकलाप

जो विद्यालयी जीवन और अन्य शिक्षण-विषयों के साथ समेकित हों, जैसे—शारीरिक शिक्षा, कला शिक्षा, सामाजिक अध्ययन, विज्ञान एवं अन्य, और ये कार्य विशेष रूप से कार्य शिक्षा के उद्देश्यों को हासिल करने की दृष्टि से तय किए गए हों,

(घ) समुदाय में कार्य जो निःस्वार्थ सेवा पर केंद्रित हों, और

(ङ) ऐसे कार्य जो व्यावसायिक विकास, उत्पादन, सामाजिक उपयोगिता और कार्यजगत की खोज से जुड़े हों।

कार्य शिक्षा की गतिविधियों का संयोजन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि उनसे कार्य शिक्षा के उद्देश्यों को साकार किया जा सके, जैसे—शारीरिक श्रम के प्रति छात्रों में सम्मान की भावना पैदा करना, आत्मनिर्भरता के लिए मूल्य, सहकारिता की भावना, अध्यवसाय, सहायता करने की भावना, सहिष्णुता और कार्य-आचरण—ये तमाम उद्देश्य उन उद्देश्यों के अलावा हैं जो उत्पादक कार्य और सामुदायिक सरोकारों से जुड़े दृष्टिकोण और मूल्यों का विकास करते हैं। सिद्धांत और व्यवहार भी इस प्रकार के हों कि वे छात्रों को तथ्यों, अवधारणाओं और विभिन्न रूपों में कार्य-स्थितियों के अंदर निहित वैज्ञानिक सिद्धांतों को समझने योग्य बना सकें। वे कच्चे माल के स्रोतों को जानें, औज़ारों और उपकरणों के उत्पादन और कार्य-प्रक्रिया के इस्तेमाल को समझें, प्रौद्योगिक रूप से आगे बढ़ने वाले समाज की ज़रूरत के मुताबिक कौशल अर्जित करें और उत्पादक स्थितियों में अपनी भूमिका स्वयं सोचें और निश्चित करें। छात्रों में ऐसे कार्यक्रमों के ज़रिए कुछ कौशल विकसित करने होंगे, जैसे—पहचानना, चयन करना, व्यवस्थित करना और नवाचारात्मक तरीके विकसित करना। इनके अलावा अन्य कौशल, जैसे—अवलोकन, कुशलता के साथ अंग संचालन और कार्य-अभ्यासों में सहभागिता भी उनकी उत्पादक कुशलता को बढ़ाने के लिए विकसित करने होंगे।

उच्च प्राथमिक स्तर पर छात्र इतने परिपक्व हो जाते हैं कि वे कुछ ऐसे भारी काम कर सकें जिनमें ऊँचे हुनर और सुगठित शारीरिक शक्ति की ज़रूरत पड़ती है। प्राथमिक स्तर पर स्वस्थ और उत्पादक जीवन की शिक्षा के अंतर्गत गतिविधियों के माध्यम से शारीरिक श्रम के बारे में छात्रों का समुचित उन्मुखीकरण हो ही गया होगा। छात्रों को उत्पादक प्रक्रियाओं में अधिक भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करने और सोच-समझ के साथ अच्छी प्रकार से तैयार किए गए प्रोजेक्ट को समझने और लागू करने की दृष्टि से उक्त कार्यक्रमों को और अधिक सुदृढ़ बनाया जा सकता है। इन कार्यक्रमों के लिए जो पद्धति अपनाई जाएगी वह अवलोकन, कुशलतापूर्वक संचालन और कार्य अभ्यास पर आधारित होगी। इस स्तर पर कौशल सीखना और उनमें प्रवीणता प्राप्त करना प्राथमिक स्तर की तुलना में कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण होगा। समुदाय के जीवन के साथ विज्ञान और प्रौद्योगिकी का समन्वय करने के लिए कृषि और प्रौद्योगिकी की प्रक्रियाओं पर ज़ोर देना होगा जो शिक्षार्थियों को कार्य क्षेत्र में प्रवेश करने

के योग्य बना कर उनमें विश्वास पैदा करे। ये क्रियाकलाप पोषण, व्यक्तिगत और सामुदायिक स्वास्थ्य, स्वच्छता, उत्पादकता और समुदाय की आर्थिक स्थिति की ओर आगे ले जाएँगे। इस प्रकार गतिविधियों के तीन आयाम होंगे—कार्य-स्थितियों का अवलोकन और कार्य-दायित्व की पहचान, कार्य-स्थिति में भागीदारी और बड़ी मात्रा में वस्तुओं का निर्माण। यह ज़रूरी है कि सभी क्रियाकलाप सरल और आनंददायी हों।

माध्यमिक स्तर पर आवश्यक क्रियाकलापों की प्रकृति को लगभग समान रखते हुए थोड़ी जटिलता बढ़ानी होगी। इस स्तर पर पूर्व-व्यावसायिक उपागमों को महत्त्वपूर्ण स्थान होगा जो उच्चतर स्तर पर व्यावसायिक उपागमों के चुनाव में सुविधा प्रदान करेंगे और छात्रों को कार्य-जगत में आवश्यक ज्ञान और कौशल अर्जित करके प्रवेश करने में मदद करेंगे।

यद्यपि अनेक शिक्षक, कार्य-शिक्षक के रूप में काम करेंगे, फिर भी बड़ी तादाद में इन क्रियाकलापों के लिए विशेषज्ञ व्यक्तियों की आवश्यकता होगी। जो शिक्षक कार्य शिक्षा देंगे, उनका समुचित प्रबोधन और प्रशिक्षण विशेष कार्यक्षेत्र में करना ज़रूरी होगा। कार्यक्रम को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए मनुष्य और सामग्री दोनों ही दृष्टियों से सामुदायिक संसाधनों का उपयोग वांछनीय होगा। समुदाय में उपलब्ध विशेषज्ञों की सेवाओं का उपयोग कार्यक्रम में उन्हें शामिल करके करना होगा।

कला शिक्षा

छात्रों के व्यक्तित्व के विकास के लिए पाठ्यचर्यागत क्रियाकलाप के रूप में कला शिक्षा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। छात्रों में सौंदर्यानुभूति उत्पन्न करना कला शिक्षा का उद्देश्य है जिससे वे सौंदर्य के प्रति रेखा, रंग, रूप, गति और ध्वनि के संबंध में प्रतिक्रिया ज़ाहिर करने योग्य बनें। कला का अध्ययन और सांस्कृतिक विरासत साथ-साथ चल सकते हैं और वे एक दूसरे के प्रति समझ और उनके प्रति सराहना या आलोचना करने की प्रवृत्ति को पुष्ट करेंगे। ललित कलाओं के क्षेत्र में प्राथमिक स्तर पर जो अनुभव छात्रों ने *स्वस्थ और उत्पादक जीवन के लिए कला* विषय के अंतर्गत हासिल किए हैं, उनसे इस विषय के प्रति उनमें काफ़ी उत्साह पैदा होगा। लोक और शास्त्रीय दोनों ही स्तरों पर कलाओं की विविधता के प्रति चेतना एवं रुचि उत्पन्न करने के लिए उच्च प्राथमिक स्तर पर पाठ्यचर्या में कला-शिक्षण एक मुख्य उद्देश्य होगा जिससे कि शिक्षार्थी कलासर्जक और उसके आनंद को ग्रहण करने वाला—दोनों ही बनें। कला शिक्षा सृजनात्मक अभिव्यक्ति के लिए सर्वाधिक संतोषप्रद माध्यम है जिसके शिक्षण का महत्त्व समाज के सर्वोत्तम हित में अत्यंत आवश्यक है।

शिक्षा के सभी स्तरों पर, ललित कलाओं में भी, संगीत का विशेष स्थान है। संगीत बच्चे को लोरियों के माध्यम से पालने में ही लुभाने लगता है और आगे चल कर उनके संपूर्ण जीवन

पर छा जाता है। संगीत केवल जीवन की लय ही बच्चों को नहीं सिखाता बल्कि उनकी ललित भावनाओं, मूल्यों एवं मानक और आनंददायी उच्चारण ध्वनियों की पहचान भी सिखाता है।

उच्च प्राथमिक स्तर पर कला शिक्षा कार्यक्रम के अंतर्गत चित्रकला सामग्री का संचालन एवं उपयोग, कोलाज बनाना, मिट्टी के नमूने और कठपुतली निर्माण, स्वतंत्र अभिव्यक्ति प्रणाली और विषय-विशेष प्रणाली द्वारा कलात्मक वस्त्रों का निर्माण, सरल संगीत उपकरणों का संचालन और उन्हें बजाकर स्वर-ध्वनियाँ निकालना, अंग-संचालन, स्वांग और सरल नृत्य शैलियाँ, सामुदायिक गायन, दृश्य और प्रदर्शनकारी कलाओं के प्रति सरल अवधारणाएँ, कला के क्षेत्र से जुड़े महान व्यक्तियों के किस्से-कहानियाँ और अन्य देशों से जुड़ी कथा-कहानियाँ, ये सब कला-शिक्षण के अंग होंगे। नाट्य संयोजन कला और अभिनय भी उचित प्रकार से शुरू करना होगा। स्वयं छात्रों की कल्पना और खोज के माध्यम से उनके विचार एवं उनकी अभिव्यक्ति पर भी ज़ोर देना चाहिए। छात्रों में रचना करने और संयोजन करने की क्षमता का विकास होना चाहिए अर्थात् सौंदर्यात्मक प्रबंध या व्यवस्था जो पूरे जीवन में व्याप्त हो जिससे कला का शाश्वत और गहरा आनंद महसूस किया जा सके।

माध्यमिक स्तर सौंदर्यबोध और सामाजिक मूल्यों के परिष्कार के लिए उपयुक्त है। यह कार्य प्राकृतिक और सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण पर प्रोजेक्ट देकर और भारतीय संस्कृति के अध्ययन के अवसर प्रदान करके किया जाए। इसके अंतर्गत छात्र-छात्राएँ समुदाय के कलाकारों और कारीगरों के साथ उत्सवों का आयोजन करके और समुदाय के साथ त्योहार मनाकर, चित्रों के माध्यम से भौतिक पर्यावरण का प्रदर्शन करके और आसपास के प्राकृतिक दृश्य आदि दिखा कर कलात्मक रुचियों की अभिव्यक्ति कर सकेंगे। इस स्तर पर कला शिक्षा के अंतर्गत ये तत्व होंगे : दृश्य और श्रव्य संसाधनों का अध्ययन और उनकी तलाश, दृश्य और श्रव्य कला रूपों के कार्यों की सृजनात्मक अभिव्यक्ति और प्रदर्शन के लिए प्रोजेक्ट, अंतर्समूह और अंतर्विद्यालयी गतिविधियाँ, शैक्षिक यात्राएँ और समुदाय के कलाकारों से अंतर्क्रिया और समुदाय एवं पड़ोस में उपलब्ध पारंपरिक कलारूपों की खोज।

कला शिक्षा कार्यक्रमों को लोक कलाओं, स्थानीय विशेष कलाओं और अन्य कला तत्वों से छात्रों को परिचित कराने पर ध्यान देना होगा ताकि वे सांस्कृतिक विरासत के प्रति चेतना और उसकी सराहना कर सकें। गतिविधियों और कथानकों का चयन इस प्रकार किया जाए कि वे अन्य केंद्रिक घटकों से संबंधित मूल्यों को प्रोत्साहित करें, जैसे—भारत की समान सांस्कृतिक विरासत, स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास और पर्यावरण का संरक्षण। छात्रों की आत्माभिव्यक्ति और अनुभवों के विस्तार की दृष्टि से *करके सीखने* और विभिन्न कलाशैलियों से लगातार परिचय कराना अनिवार्य है। कला शिक्षा खंडित रूप से नहीं दी जानी चाहिए।

कक्षा दस तक के सभी चरणों में कला शिक्षा के लिए समन्वित या समेकित पद्धति ही अपनानी होगी।

स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा

स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा छात्र-छात्राओं और समुदाय के संपूर्ण स्वास्थ्य से संबंधित होगी। शिक्षार्थियों की शारीरिक सेहत के अलावा इसमें उनका मानसिक और संवेगात्मक स्वास्थ्य भी शामिल होगा। स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य छात्रों में पोषण, स्वास्थ्य और स्वच्छता के संबंध में वांछनीय समझ, दृष्टिकोण और क्रियाओं का विकास करना होना चाहिए जिससे स्वयं के स्वास्थ्य तथा परिवार एवं समुदाय के स्वास्थ्य में सुधार हो। सामुदायिक स्तर पर स्वास्थ्य और स्वच्छता के संबंध में चेतना तथा उस संदर्भ में उनकी भूमिका की समझ विकसित करने में छात्रों की मदद करनी होगी। शारीरिक शिक्षा में स्वास्थ्य, शक्ति और शारीरिक चुस्ती (फिटनेस) के विकास पर ध्यान देना होगा।

इस संपूर्ण योजना में खेलकूद को महत्वपूर्ण स्थान देना होगा। छात्रों के इस विकासात्मक चरण में उनके मानसिक और शारीरिक गठन के बीच पर्याप्त समन्वय पर बल देना चाहिए। नियमित विद्यालयी कार्यक्रम में योग और ध्यान-साधना का आयोजन बच्चों का ध्यान केंद्रित करने और शरीर को शिथिल कर विश्राम देने की दृष्टि से काफ़ी सहायक होगा। स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा से संबंधित अन्य महत्त्वपूर्ण गतिविधियाँ हैं—स्काउटिंग, गाइडिंग, एन.सी.सी. और रेडक्रास, जो छात्रों में कुछ ऐसे मूलभूत गुणों का विकास करेंगी, जैसे—सहनशक्ति, साहस, निर्णयात्मकता, उपाय-कुशलता अर्थात् काम करा लेने का हुनर, अन्य लोगों के प्रति सम्मान, सच्चाई, निष्ठा, कर्त्तव्य के प्रति आस्था और सामान्य लोगों के भले की भावना। छात्रों की इन सब गतिविधियों में सहभागिता से उनकी ऊर्जा का रचनात्मक ढंग से उपयोग किया जा सकेगा। ये सब गुण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षण को प्रोत्साहित और समेकित करते हैं। इससे संस्थाओं में पाठ्यचर्या संबंधी प्रच्छन्न तत्वों पर भी ध्यान दिया जा सकेगा।

स्वस्थ रूप से रहने, जीने और स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के समाधान की दृष्टि से सामान्य शिक्षा के इन दस वर्षों में ऐसी व्यवस्था प्रणाली का विकास करना होगा जो शरीर, मन और आत्मा के समन्वित विकास को प्रोत्साहित करे। बच्चों के लिए चिकित्सकीय निरीक्षण और स्वास्थ्य परीक्षण सभी स्तरों पर अनिवार्य हो ताकि यदि किसी प्रकार की कमी दिखाई दे तो उसके इलाज की व्यवस्था हो सके। स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा जिसमें खेलकूद भी शामिल हैं, संपूर्ण शिक्षण प्रक्रिया के अभिन्न अंग होंगे और उनके प्रदर्शन या निष्पादन का मूल्यांकन भी पाठ्यचर्या का अंग होगा।

उच्च प्राथमिक स्तर पर शारीरिक वृद्धि, शारीरिक-मानसिक गठन में समन्वय और सामाजिक विकास की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए शक्तिप्रद विकासात्मक एवं लयात्मक व्यायाम, व्यायामशालाओं में की जाने वाली कसरत, दौड़-कूद संबंधी व्यायाम (एथलेटिक्स), जलक्रीड़ाएँ (तैराकी), जूडो, योग, ड्रिल, कवायद, स्काउटिंग और गाइडिंग शिविर, विभिन्न प्रकार के टीम-खेल और प्रतियोगिताओं आदि में छात्रों को भाग लेने के अवसर देने होंगे। छात्रों की पसंद और सुविधाओं की उपलब्धता के आधार पर छात्रों को इनमें से कोई गतिविधि चुनकर उसमें भाग लेने की सुविधा होनी चाहिए। स्वास्थ्य शिक्षा के अंतर्गत छात्रों में सामान्य स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं, सुरक्षा उपायों, पोषण संबंधी समस्याओं, मिलावट, प्राथमिक उपचार, स्वच्छता, प्रदूषण आदि के बारे में चेतना पैदा करनी होगी। योग और प्राणायाम संबंधी व्यायामों पर विशेष ध्यान देना होगा।

जहाँ तक छात्रों के शारीरिक, मानसिक और संवेगात्मक स्वास्थ्य का संबंध है, माध्यमिक स्तर की शिक्षा विशेष महत्त्वपूर्ण है। इस स्तर पर शारीरिक रचना और कार्यों में तेज़ी से वृद्धि और परिवर्तन परिलक्षित होते हैं जो यौन-पक्वता की शुरूआत से संबंधित हैं। इस अवस्था में समुचित मार्गदर्शन एवं परामर्श की ज़रूरत है ताकि बच्चे अपने विकास के साथ अपना समन्वय स्थापित कर सकें। इस अवस्था में उनकी रुचियाँ कुछ ही खेलों तक सीमित होने लगती हैं। छात्र अपेक्षाकृत अधिक साहसी होने लगते हैं। शारीरिक शिक्षा में अधिक ताकतवर गतिविधियों का समावेश होना चाहिए, जैसे—एथलेटिक्स, बड़े खेल (फुटबाल, हॉकी, क्रिकेट) स्वदेशी खेल (कबड्डी, खो-खो, आट्या-पाट्या), कसरत, यौगिक अभ्यास, ध्यान, कुश्ती, जूडो, तैराकी आदि। शारीरिक शिक्षा के अनिवार्य कार्यक्रमों के अतिरिक्त एन.सी.सी., स्काउटिंग गाइडिंग और सामाजिक सेवा भी पाठ्यचर्या के अंग होने चाहिए। नवीं और दसवीं कक्षाओं में शारीरिक शिक्षा में अधिक विस्तार के साथ व्यक्तिगत स्वास्थ्य, पर्यावरणीय प्रदूषण का स्वास्थ्य पर कुप्रभाव, भोजन और पोषण, बीमारियों पर नियंत्रण एवं उनकी रोकथाम, प्राथमिक उपचार, घरेलू परिचर्या और सुरक्षा उपायों आदि का शिक्षण छात्रों को दिया जाना चाहिए।

व्यक्तिगत और सामुदायिक स्वास्थ्य से संबंधित ज्ञान और क्रियाकलापों का अब बहुत महत्त्व है। एच.आई.वी. और एड्स के प्रति जागरूकता पैदा करनी होगी। विद्यार्थियों को यौन उन्मुक्तता, बाल दुराचार तथा मादक पदार्थों के सेवन से जुड़ी हुई बुराइयों से भी आगाह कराया जा सकता है। किशोरावस्था शिक्षा और समुचित यौन शिक्षा सावधानीपूर्वक देनी होगी। उपयुक्त तो यह होगा कि इस संबंध में विभिन्न आयु वर्गों के लिए छात्रों की आवश्यकता और बढ़ती परिपक्वता के अनुरूप स्व-शिक्षण सामग्री तैयार की जाए। यह सामग्री सभी छात्रों को उपलब्ध करानी होगी। इसके लिए पृथक शिक्षकों और कक्षाओं की आवश्यकता नहीं है। ऐसी पद्धति अपनानी होगी कि प्रत्येक छात्र-छात्रा इस प्रकार की शिक्षा में भागीदारी को और स्वस्थ जीवन के तरीकों को अपनाएँ।

2.10 शिक्षण युक्तियाँ

पाठ्यचर्या के प्रभावी उपयोग और पाठ्यचर्यागत उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए छात्रों की गतिविधियों का संयोजन उपयुक्त युक्तियों के द्वारा इस प्रकार किया जाए कि छात्रों को अधिगम क्रियाकलापों के लिए अधिक अवसर मिलें। शिक्षण युक्तियाँ कई प्रकार की हो सकती हैं, जैसे—अवलोकन, सामग्री और सूचनाओं का संकलन, प्रदर्शन और प्रयोग, प्रोजेक्ट कार्य, फील्डवर्क और संग्रहालयों, मेलों, औद्योगिक प्रतिष्ठानों तथा ऐतिहासिक महत्त्व के स्थानों की शैक्षिक यात्राएँ। खेलकूद, सामुदायिक गायन में भागीदारी, भूमिका-अभिनय, नाटक, परिचर्चा, वाद-विवाद, समस्या-समाधान, खोजपूर्ण शिक्षण, सृजनात्मक लेखन और पूरक वाचन भी संपूर्ण शैक्षिक युक्तियों के महत्त्वपूर्ण अंग होंगे।

किसी विशेष नीति का उपयोग करते समय अनेक तत्वों पर विचार करना होगा, जैसे—छात्रों की क्षमताएँ, संसाधनों की उपलब्धता, आरंभिक व्यवहार, विद्यालयी पर्यावरण, प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य, विषयवस्तु की प्रकृति और स्वयं शिक्षकों द्वारा की जाने वाली तैयारी एवं उनका विषयों पर अधिकार।

शिक्षण को सार्थक और ठोस बनाने के लिए प्राकृतिक और मानवीय दोनों ही प्रकार के निकटस्थ पर्यावरण का उपयोग होना चाहिए। प्रभावशाली शिक्षण तभी होता है जब शिक्षक छात्रों को सीखने की प्रक्रिया में शामिल करें और यह कार्य सुनने की प्रक्रिया से छात्रों को ऊपर ले जाकर चिंतन, तर्क और स्वयं करके सीखने की प्रक्रिया में शामिल करके संपन्न करना होगा। स्वाध्याय कौशल के विकास के लिए पुस्तकालय एवं स्रोत केंद्रों के प्रयोग को प्रोत्साहित करना होगा।

अध्ययन-अध्यापन की युक्ति में नियमित रूप से प्रतिपुष्टि प्राप्त करना एक अंतर्निहित घटक है। नियमित प्रतिपुष्टि के लिए सतत और व्यापक मूल्यांकन की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। इसका उपयोग उपचारात्मक शिक्षण के लिए होना चाहिए।

मंद, औसत और तीव्र गति से सीखने वाले भिन्न-भिन्न छात्रों के लिए भिन्न-भिन्न कार्यनीतियाँ ज़रूरी हैं। निदानात्मक और उपचारात्मक शिक्षण का उपयोग मंदगति के छात्रों के लिए आवश्यक है। ज्ञान-संवर्धन की सामग्री और लक्ष्य निर्देशित अध्ययन-अध्यापन की युक्तियाँ तीव्र गति से सीखने वाले छात्रों की मदद करेंगी। सहशैक्षिक क्षेत्रों के शिक्षण के लिए उपयुक्त कार्यनीतियों का चुनाव करना होगा और उन्हें छात्रों के व्यक्तित्व-निर्माण में उचित महत्त्व देना होगा। अनेक विद्यालयी गतिविधियाँ समुचित योजना एवं सुनियोजित लक्ष्यों के साथ आयोजित की जा सकती हैं, जैसे—प्रातःकालीन सभा, सांस्कृतिक और मनोरंजक

क्रियाकलाप, विद्यालय की सजावट एवं सौंदर्यीकरण, सामुदायिक जीवन के क्रियाकलाप, राष्ट्रीय महत्त्व के दिवसों को मनाना, विशेष दिवस और सप्ताह तथा सृजनात्मक कार्यक्रम।

2.11 शिक्षण का माध्यम

बच्चों के बौद्धिक, संवेगात्मक और आध्यात्मिक विकास के लिए मातृभाषा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माध्यम है। मातृभाषा केवल इसलिए 'मातृभाषा' नहीं है कि वह माता की भाषा है बल्कि इसलिए कि वह माँ की ही तरह है। अतः मातृभाषा बच्चों के पोषण एवं मानसिक और संवेगात्मक निर्माण के लिए एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण केंद्रीय तत्व है। उनकी समझ, उनके अवबोध, उनकी प्रतिक्रियाएँ, सृजनात्मक अभिव्यक्तियाँ, चिंतन और विश्लेषण सभी कुछ अधिकतम मातृभाषा के माध्यम से ही तो विकसित होते हैं। इसलिए विद्यालयी शिक्षा के सभी स्तरों पर मातृभाषा के माध्यम से शिक्षण करना एक स्वाभाविक और आदर्श स्थिति होगी।

जिन छात्रों की मातृभाषा क्षेत्रीय भाषा या राज्य की भाषा है, वहाँ वहीं की भाषा विद्यालयी शिक्षा के सभी स्तरों या कम-से-कम प्राथमिक स्तर के अंत तक शिक्षा का माध्यम होगी। जहाँ छात्रों की मातृभाषा राज्य या क्षेत्र की भाषा से अलग है, वहाँ क्षेत्रीय भाषा को तीसरी कक्षा और उससे आगे के स्तर से माध्यम के रूप में अपनाया जा सकता है। प्रारंभिक वर्षों में छात्रों की मातृभाषा का उपयोग इस प्रकार हो कि छात्र बड़ी सरलता के साथ मानक मातृभाषा (क्षेत्रीय भाषा) में संक्रमण या प्रवेश कर सकें और क्षेत्रीय भाषा के माध्यम से शिक्षण जल्दी-से-जल्दी शुरू हो सके।

2.12 शिक्षण अवधि

विद्यालयों में शिक्षण कार्य के लिए निर्धारित कार्य दिवस सुनिश्चित करने के लिए सभी प्रकार के प्रयास करने होंगे। अनिश्चित कारणों से शिक्षण अवधि की कमी या नुकसान को बेहतर शिक्षा प्रबंधन के ज़रिए रोकना या घटाना होगा। मूल्यांकन गतिविधियाँ जाँच (टेस्ट) परीक्षा, विद्यालयी कार्यक्रम और उत्सव आदि सभी के लिए आवश्यक दिनों का हिसाब लगाते हुए कम-से-कम 180 दिवस वास्तविक विद्यालयी शिक्षण के लिए उपलब्ध होने ही चाहिए।

शिशु शिक्षा केंद्रों या शाला-पूर्व शिक्षा केंद्रों को दिन में तीन घंटे काम करना चाहिए। एक प्राथमिक विद्यालय को पाँच घंटे प्रतिदिन कार्य करना चाहिए जिसमें से चार घंटे केवल अध्यापन के लिए हों और शेष अन्य दैनिक गतिविधियों के लिए। उच्च प्राथमिक और

माध्यमिक शिक्षा के लिए शिक्षण अवधि प्रतिदिन छह घंटे की होगी जिसमें से पाँच घंटे केवल अध्यापन के लिए निर्धारित होंगे और शेष अन्य गतिविधियों के लिए। प्रत्येक कक्षा के एक कालखंड की अवधि लगभग चालीस मिनट की होगी।

विद्यालयों को ज़ोर देकर यह भी बताना होगा कि प्रत्येक विषय को पर्याप्त कालखंड उपलब्ध हों। जो समय एक विषय या गतिविधि के लिए निर्धारित है उसका अतिक्रमण व्यक्ति या संस्था की मरज़ी से विभिन्न विषयों के 'महत्त्व' के संदर्भ में नहीं होना चाहिए।

2.13 मुक्त शिक्षण प्रणाली

मुक्त शिक्षण प्रणाली विद्यालय और विश्वविद्यालय दोनों स्तरों पर स्थापित हो चुकी है। केंद्रीय स्तर पर राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय और राज्य स्तर पर राज्यों के अपने-अपने मुक्त विद्यालय कार्य कर रहे हैं। मुक्त शिक्षा प्रणाली के उद्देश्य कथन में यह कहा गया है कि मुक्त शिक्षण प्रणाली शिक्षा को शिक्षार्थी के घर की देहलीज़ तक ले जाती है, सामाजिक समानता को भी बढ़ावा देती है और आजीवन शिक्षा के लिए लचीलापन पैदा करती है। यह प्रणाली विद्यालय स्तर पर कंप्यूटर, रेडियो और टेलीविज़न कार्यक्रमों के माध्यम से सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के साथ-साथ अनेक संरचनात्मक छूट देती है जो पारंपरिक औपचारिक प्रणाली से बेहतर हैं। यह लचीलापन शिक्षण-स्थल, शिक्षण-समय, पात्रता, मानदंड, विषयों के चुनाव के प्रति छात्रों की पसंद और परीक्षा योजना आदि से जुड़ा हुआ है। सेतु पाठ्यक्रमों, आधार पाठ्यक्रमों और भेदभावरहित पाठ्यक्रमों के ज़रिए मुक्त शिक्षण प्रारंभिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के लिए बड़े पैमाने पर योगदान दे सकता है। यह शिक्षा छात्रों को विशेष रूप से आत्मविश्वासयुक्त व्यक्ति तथा राष्ट्र निर्माण में योगदान देने वाले नागरिकों के रूप में विकसित होने के लिए आवश्यक कौशल उपलब्ध कराएगी।

3

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर पाठ्यचर्या संयोजन

3.1 संदर्भ

दस वर्ष की सामान्य शिक्षा के बाद उच्चतर माध्यमिक स्तर का महत्त्व इसलिए बढ़ जाता है कि इस स्तर से छात्र पहली बार विविधता युक्त विषयों (diversification) की ओर उन्मुख होते हैं। अब छात्र स्वयं अपनी सोच और मन की स्वतंत्रता विकसित करना शुरू कर देते हैं। इस कारण अब वे भावी चुनौतियों से निपटने की दृष्टि से अपनी आवश्यकताओं, रुचियों, क्षमताओं और प्रवृत्तियों आदि के आधार पर विषयों के चयन के लिए अधिक समझदार हो जाते हैं। इसलिए इस स्तर पर या तो वे विशेषज्ञतायुक्त अकादमिक कोर्स या रोज़गार उन्मुखी व्यावसायिक कोर्स को चुन लेते हैं। उच्चतर माध्यमिक स्तर के अधिकांश छात्रों के लिए तो कार्यजगत में प्रवेश करने के लिए इस स्तर तक ही शिक्षा पूर्ण हो जाती है, अन्य छात्रों के लिए स्नातक स्तर की शिक्षा के अकादमिक या व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के बीच यह एक प्रकार का सेतु है।

3.1.1 उच्चतर माध्यमिक : सर्वाधिक चुनौतीपूर्ण स्तर

उच्चतर माध्यमिक स्तर अनेक प्रकार से महत्त्वपूर्ण है। यह सर्वाधिक चुनौतीपूर्ण स्तर है। इस स्तर पर जहाँ छात्र अपने जीवन के बड़े नाज़ुक काल से गुज़रते हैं और किशोरावस्था से युवावस्था में प्रवेश करते हैं वहीं उन्हें अपने भावी कैरीयर से संबंधित निर्णय उपयुक्त पाठ्यक्रम चुन कर करना पड़ता है। इस स्तर पर वास्तव में आवश्यकता और प्रवृत्ति से भी कहीं ज़्यादा चेतना और योग्यता निष्पादन (performance) के आधार पर ही अंततः छात्रों के भविष्य का निर्धारण होता है। छात्र किसी रोज़गार/नौकरी या व्यवसाय में जाएँगे या अपनी पसंद के विषय का आगे अध्ययन जारी रखेंगे, यह इस स्तर पर छात्रों और उनके माता-पिता के दिमाग में सर्वाधिक चिंता का विषय रहता है। इससे चिंता और तनाव पैदा होते हैं। इन्हें

छात्रों के भविष्य की आवश्यकताओं के अनुरूप उपयुक्त पाठ्यक्रमों के लिए सावधानीपूर्वक योजना एवं कार्यनीति बनाकर दूर किया जा सकता है।

सामान्य रूप से बहुत कम छात्र स्नातक स्तर की शिक्षा में प्रवेश करते हैं। इन्हीं छात्रों के अंदर से नेतृत्व का उदय होता है। इन लोगों की गुणवत्ता और स्तर उच्चतर माध्यमिक शिक्षा में रखी गई नींव पर आधारित होता है और इससे निकल कर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अंतरिम या दूसरी कतार के स्तर का नेतृत्व आकार लेता है। इन छात्रों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे कृषि, उद्योग, व्यापार और अन्य सामाजिक सेवाओं के विकास में योगदान करें। वैतनिक रोज़गार के अवसर बड़े सीमित हैं। इसलिए उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्रों को बुनियादी ज्ञान, कौशल, अभिवृत्ति, उद्यमता आदि से संपन्न बनाना होगा ताकि वे स्वरोज़गार के काबिल बन सकें।

3.1.2 शिक्षार्थी का परिचय वृत्त : किशोरावस्था से युवावस्था में संक्रमण

उच्चतर माध्यमिक स्तर की शिक्षा किशोरावस्था से युवावस्था में प्रवेश करते संवेदनशील मानवप्राणी की शिक्षा है। इस स्तर पर शरीर और मस्तिष्क दोनों ही परिपक्वता ग्रहण करने लगते हैं। यही वह स्तर है जहाँ अमूर्त चिंतन और तर्क करने की प्रवृत्ति का विकास शुरू होता है। लक्ष्य निर्धारण और प्रतीकात्मकता जैसी विशेषताओं को भी बड़े पैमाने पर छात्र प्रकट करने लगते हैं। इसी प्रकार आत्मचेतना और आत्मनिर्णय से स्वयं की पहचान को उभारने एवं व्यक्तिगत पसंद ज़ाहिर करने जैसे गुण इस स्तर पर आदर्श तय करने के लिए सामान्य बात है। छात्र अपनी पसंद-नापसंद को तेज़ी से जाहिर करने लगते हैं और उनकी प्रतिक्रियाओं एवं साहस भरे कार्यों पर उनके साथी-समूहों का बड़ा प्रभाव पड़ता है। इस उम्र में प्रौढ़-व्यवहारों और भूमिकाओं की नकल करने, आज्ञा का उल्लंघन करने, नैतिक तर्क-वितर्क करने, स्थापित विचारों एवं आचरणों के विरुद्ध चुनौतीपूर्ण दृष्टिकोण अपनाने और अधिकारों का उपयोग करने आदि की प्रवृत्ति पैदा हो जाती है। यह यौन-चेतना और यौन-रुचियों की भी उम्र है।

इस स्तर पर शिक्षार्थी की रुचियाँ और प्रवृत्तियाँ स्पष्ट आकार लेने और स्थिर होने लगती हैं जिनमें छात्रों के भावी व्यवसायों को निर्धारित करने की क्षमता होती है। भविष्य की चिंताएँ भी अब सताने लगती हैं। इस स्तर पर इसलिए लंबे समय तक ऐसी समस्याओं के समाधान के लिए मार्गदर्शन और परामर्श की आवश्यकता है जिनका होना अस्वाभाविक नहीं है।

एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इस स्तर पर सामान्य और भेदरहित पाठ्यचर्या से विशेषज्ञता वाले कोर्सों की ओर संक्रमण होता है। इसलिए पाठ्यचर्या पर सामान्य शिक्षा और विशेषज्ञता

की चुनौतियों का असर जारी रहता है जो कि स्नातक स्तर की शिक्षा की विशेषता है। इस स्तर के जीवन का मूलमंत्र ही परिवर्तन है। युवावर्ग को अपने जीवन में होने वाले परिवर्तनों से जूझने योग्य बनाने के लिए सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों पर उपयुक्त ज़ोर देकर सावधानीपूर्वक उनका विकास करना ज़रूरी है। समाज और देश के प्रति अपनत्व के भाव का पोषण करना होगा और अपनी जड़ों से कटे होने या समाज से अलगाव जैसे विचार दूर करने होंगे।

3.1.3 सुलभता, समता और उत्कृष्टता

देश के सामाजिक एवं शैक्षिक वातावरण में स्पष्ट परिवर्तन दिखाई देता है। शिक्षा के बदलते परिदृश्य को देखकर आर्थिक रूप से लेज़ी से धनाढ्य होता जा रहा मध्यम वर्ग अपने बच्चों की श्रेष्ठ शिक्षा पर धन खर्च करने के लिए आतुर रहता है और इससे पूरा शैक्षिक परिदृश्य बदलता जा रहा है। जहाँ-जहाँ भी सेवाभावना, ईमानदारी और संकल्प के साथ निजी प्रयास किए गए उनसे स्पष्ट है कि ऐसे प्रयास विद्यालयी शिक्षा में निस्संदेह रूप से अच्छा योगदान कर सकते हैं। आजकल कुकुरमुत्तों की तरह फैले निजी कोचिंग केंद्रों ने विद्यालयी शिक्षा और दर्शन की नींव ही हिला कर रख दी है। जो खर्चीली निजी कोचिंग पर खर्च नहीं कर सकते उनके लिए शिक्षा एक चुनौती बन गई है। शिक्षा के क्षेत्र में एक प्रबल सामाजिक उद्देश्य को प्रस्तुत करके ऐसे असंतुलनों को ठीक करना आवश्यक है। अब वक्त आ गया है कि विद्यालय-व्यवस्था में विविधता और लचीलेपन के लिए आवश्यक मात्रा में शिक्षण-अनुभव प्रदान करके विद्यालयी शिक्षा की नींव मज़बूत की जाए और इसके लिए उच्चतर माध्यमिक और स्नातक स्तर के बीच उपयुक्त संबंध कायम किया जाए।

विविधता और लचीलापन जहाँ उच्चतर माध्यमिक स्तर के लिए अपरिहार्य है, वहीं समानता और उत्कृष्टता के बुनियादी मानदंडों की भी अवहेलना नहीं की जा सकती। ग्रामीण, आदिवासी और दूरस्थ अंचलों में पढ़ रहे छात्रों को विशेष साधन उपलब्ध करवा कर उनकी विशेष देखभाल और चिंता करनी होगी। एक समता मूलक समाज के मूल्य संवर्धन के लिए और प्रचलित भेदभाव मिटाने के लिए कोई भी कीमत चुकाना उस समाज के लिए भारी नहीं है जो इन मूल्यों में विश्वास करता है। भारतीय संविधान भी यह सकारात्मक दृष्टिकोण प्रकट करता है कि उपेक्षित और कमज़ोर वर्गों को राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़कर एक सुसंगत भारतीय समाज की रचना में उनका प्रभावी योगदान प्राप्त किया जाए।

उन विभिन्न संघटकों और परिवर्तियों (वैरिएबल्स) को भी पहचानने की ज़रूरत है जो शिक्षा की गुणवत्ता और उसके अंतिम परिणाम को तय करते हैं। आज की दुनिया जब भूमंडलीकरण, प्रतियोगिता और चुनौतियों से भरी हुई है तो इस बात की अब पहले से कहीं अधिक ज़रूरत

है कि देश स्वयं अपने ऐसे राष्ट्रीय मानक स्थापित करे जो अंतर्राष्ट्रीय मानकों के बराबर हों। सुविचारित अध्ययन-उपागम, पाठ्यचर्या की विस्तृत रूपरेखा, अधिगम-प्रतिफलों की पहचान, शिक्षण-सामग्री की विविधता अर्थात् श्रव्य, दृश्य और मल्टी-मीडिया पैकेज और समुन्नत मूल्यांकन उपकरण अब विकसित करने होंगे। शारीरिक शिक्षा, खेलकूद, कला और सौंदर्यानुभूति एवं व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को और अच्छा बनाने के लिए विशेष अध्यापक देने होंगे। फिर भी इतना ही पर्याप्त नहीं होगा। कक्षा के अंदर और बाहर अपनाई जाने वाली पाठ्यचर्या संचालन की प्रक्रिया पर सावधानीपूर्वक ध्यान देना होगा। इस समय तो शिक्षक को उत्प्रेरक की भूमिका अदा करनी होगी जो उनकी पूर्व-भूमिकाओं से बिलकुल अलग होगी। शिक्षक को शिक्षण अवसरों का नियोजन सार्थकता और कल्पनाशीलता के साथ करना होगा जिससे छात्र व्यक्तिगत रूप से छोटे-छोटे समूहों में एक दूसरे से और समाज एवं पर्यावरण से सीखने के लिए प्रेरित हो सकें। शिक्षण-कौशलों का अर्जन, खोज, प्रेक्षण और अज्ञात को ढूँढ़ निकालने के साथ विश्लेषण, संश्लेषण, आलोचनात्मक सोच, निर्णय लेने की क्षमता आदि ही तो वे शक्तियाँ हैं जो पाठ्यचर्या संचालन का मूलमंत्र बनेंगी और यह सब कार्य उस शिक्षक की देखरेख में होगा जो मुख्य रूप से शिक्षण के लिए एक सुविधादाता होगा।

3.1.4 विविधता और लचीलापन

एक किशोर या किशोरी की विभिन्न आवश्यकताओं और क्षमताओं के अनुसार विविधता और लचीलापन उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम की प्रमुख विशेषताएँ हैं। इस स्तर तक आते-आते चूँकि छात्रों की रुचियाँ और प्रवृत्तियाँ स्थिर होने लगती हैं इसलिए उन्हें ऐसे अवसर प्रदान करना चाहिए कि वे अपनी पंसद और झुकाव के अनुरूप पाठ्यक्रम की पढ़ाई कर सकें। शिक्षा प्रणाली के स्वरूप को प्रकट करने वाली कुछ कठोरताओं, जैसे—व्यक्तिगत भेदों और रुचियों को प्रश्रय देने वाले विकल्पों का अभाव तथा अपनी ही गति से आगे बढ़ने के अवसर की कमी के संदर्भ में उचित यह होगा कि पाठ्यक्रमों की विषयवस्तु जहाँ तक संभव हो, लचीली रखी जाए। अकादमिक और व्यावसायिक दोनों ही धाराओं में छात्रों के लिए क्रेडिट प्रणाली के और विभिन्न समयावधियों वाले पाठ्यक्रम उपलब्ध कराए जाएँ। इस प्रकार फाउंडेशन कोर्स यानी आधार पाठ्यक्रम के महत्त्व को कम नहीं किया जा सकता। अध्ययन के विभिन्न क्षेत्रों में केंद्रिक घटकों और मूल्य-शिक्षा को समुचित रूप से सम्मिलित किया जाना चाहिए।

उच्चतर स्तर के पाठ्यक्रम मुख्यतः दो श्रेणियों में रखे जाएँगे : अकादमिक और व्यावसायिक। इनमें आधार पाठ्यक्रम और विशिष्ट ऐच्छिक विषयों का विवेकपूर्ण सम्मिश्रण होगा। प्रचलित विषय-समूह, जैसे—कला, विज्ञान, वाणिज्य और कृषि को पृथक-पृथक नहीं रखा जाना चाहिए। छात्रों को व्यावहारिक सीमा में यह स्वतंत्रता देनी होगी कि वे अपनी आवश्यकताओं, रुचियों

और प्रवृत्तियों के अनुरूप एक साथ एक से अधिक समूह का चयन कर सकें। इसके अतिरिक्त समय बीतते-बीतते जो मानसिक अवरोध अकादमिक और व्यावसायिक प्रणालियों के बीच पारंपरिक समूहीकरण के कारण पैदा हो गए हैं वे भी समाप्त हो सकते हैं।

3.2 सेमेस्टरीकरण

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर पढ़ाए जाने वाले विषयों के बीच अधिक लचीलापन और कार्यात्मकता की दृष्टि से सेमेस्टर प्रणाली की वकालत की गई थी। इस प्रणाली के समर्थन में सबसे बड़ा तर्क यह दिया गया था कि सेमेस्टर प्रणाली सामान्य मूल्यांकन और विशेष रूप से अधिगम प्रतिफलों के लिए संतोषप्रद उपकरणों एवं तकनीकों का प्रयोग करने की स्वतंत्रता देती है। यह इस सार्वभौम विश्वास का भी समर्थन करती है कि मूल्यांकन सतत और व्यापक होना चाहिए और वह विकासात्मक एवं सुधारात्मक हो, न कि पूर्ण और निर्णयात्मक। 'उच्चतर माध्यमिक शिक्षा और उसका व्यावसायीकरण' (एन.सी.ई.आर.टी., 1991-92) नाम से बने दस्तावेज़ में सेमेस्टर प्रणाली के प्रश्न पर उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण के संदर्भ में विचार किया गया है, जिसमें यह सिफ़ारिश भी की गई है कि सेमेस्टर प्रणाली शिक्षण और मूल्यांकन में लचीलेपन के लिए सुविधाजनक है। गत पंद्रह वर्षों के दौरान देश की बहुत कम संस्थाओं में ही सेमेस्टर प्रणाली लागू की जा सकी है। अधिकांश मामलों में तो वर्ष भर के पाठ्यक्रम को एकतरफ़ा ढंग से दो भागों में बाँट दिया गया है जिसे एक शिक्षा सत्र के दो आधे-आधे भागों में पूरा करना पड़ता है।

सेमेस्टर आधारित शिक्षा शिक्षण को सुविधाप्रद इकाइयों में बाँट देती है जिससे शैक्षिक स्तर को काफ़ी ऊँचा उठाया जा सकता है। आधुनिकीकरण, अध्ययन-अध्यापन में सुधार की प्रक्रिया को यह शुरू करके जारी रखती है और व्यक्ति की आवश्यकताओं एवं रुचियों के अनुरूप ही पाठ्यक्रम का चयन करने के लिए लचीलापन प्रदान करती है। यह अंतर्विषयक उपागम तथा अध्ययन में संवर्धन, पाठ्यक्रम पढ़ाने वाले शिक्षकों द्वारा आंतरिक मूल्यांकन तथा उसकी तकनीक में सुधार की ओर ले जाती है।

क्रेडिट अर्जित और जमा करने की प्रणाली सेमेस्टरीकरण का आधार है जो केवल उच्च-स्तरीय अध्ययन की कुछ ही संस्थाओं में अपनाई जाती है। सामान्य रूप से पाठ्यचर्या और मूल्यांकन में इस सुधार को अभी तक लागू न कर पाने के शैक्षिक, वित्तीय और प्रशासनिक कारण तो हैं ही, साथ ही परीक्षा एजेंसियों द्वारा लगातार परीक्षा संचालित करने के भौतिक आयाम भी इसके कारण हैं। इसलिए अब वक्त आ गया है कि आवश्यक तैयारी करके व्यावसायिक और अकादमिक दोनों ही शिक्षा क्षेत्रों में और ज़्यादा लचीलापन एवं विविधता

सुनिश्चित करने के लिए विद्यालयी व्यवस्था में प्रयास प्रारंभ किए जाएँ। वर्तमान परिदृश्य में जबकि उद्योग सहित विभिन्न सेक्टरों में बहु-कौशल युक्त कार्य करने वालों को वरीयता दी जा रही है, क्रेडिट पर आधारित सेमेस्टर-प्रणाली एक व्यावहारिक समाधान देती है।

सेमेस्टर प्रणाली में छात्रों के पास यह विकल्प है कि वे कितनी भी संख्या में क्रेडिट-घंटे अपनी आवश्यकता, क्षमता और सीखने की गति के अनुसार ले सकते हैं।

3.2.1 क्रेडिट्स

सेमेस्टर प्रणाली की शिक्षा की रचना क्रेडिट प्रणाली पर की गई है। सेमेस्टर के प्रत्येक कोर्स में कई क्रेडिट्स होते हैं जो आवश्यक कार्य की मात्रा और उस पर खर्च होने वाले समय पर निर्भर करते हैं। क्रेडिट का प्रायः मतलब होता है पूरे सेमेस्टर के दौरान कक्षा में प्रति सप्ताह व्याख्यानों, ट्यूटोरियलों और सेमिनारों में संपर्क-घंटों की संख्या। एक क्रेडिट कोर्स में सामान्य रूप से कक्षा में पढ़ाई पचास से साठ मिनट प्रति विषय होती है जिसमें एक सेमेस्टर में प्रति सप्ताह दो-तीन घंटे घर पर अध्ययन के जुड़े रहते हैं। प्रयोगशाला कार्य और क्षेत्र-अध्ययन में एक क्रेडिट कोर्स में एक सेमेस्टर के दौरान दो से तीन घंटे प्रति सप्ताह काम करना पड़ता है।

सेमेस्टर प्रणाली में छात्र क्रेडिट अर्जित तब करते हैं जब वे (i) न्यूनतम निर्धारित संख्या में व्याख्यानों में उपस्थित रहते हैं और उनके साथ ही ट्यूटोरियल, सेमिनार, प्रयोगशाला में प्रयोग और/या क्षेत्र-कार्य करते हैं। (ii) आंतरिक आकलन के लिए निर्धारित न्यूनतम प्रतिशत से कम न रहने वाले अंक अथवा अर्हक ग्रेड हासिल करते हैं और (iii) उस कोर्स में सेमेस्टर की अंतिम परीक्षा के लिए निर्धारित न्यूनतम प्रतिशत से कम न रहने वाले अंक या ग्रेड प्राप्त करते हैं।

3.3 पाठ्यचर्या संयोजन

दस वर्षीय समान अध्ययन कार्यक्रम के बाद मुख्य रूप से भाषाई कौशल, वैज्ञानिक साक्षरता, बुनियादी गणितीय और सामाजिक कौशल, देश की सांस्कृतिक विरासत, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक जीवन और पर्यावरण से जुड़े मुद्दों आदि के लिए अब वह समय आ गया है जब छात्रों को एक ओर विविधतापूर्ण और विशेषज्ञतायुक्त गंभीर अध्ययन के विषय, जैसे—मानविकी, सामाजिक विज्ञान, विज्ञान, गणित, वाणिज्य आदि से एवं दूसरी ओर विविध व्यावसायिक पाठ्यक्रमों से परिचित कराया जाए। इस प्रकार शिक्षा आयोग (कोठारी कमीशन) की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण सिफ़ारिश के अनुसार पाठ्यचर्या को इस स्तर पर दो धाराओं में संयोजित करना होगा, जैसे—अकादमिक धारा और व्यावसायिक धारा। इसलिए यह भी ज़रूरी है कि

इन दोनों धाराओं के बीच न केवल उपयुक्त संबंध बना रहे बल्कि उनके व्यवस्थित सुदृढ़ीकरण को भी सुनिश्चित किया जाए।

3.4 अकादमिक धारा

इस स्तर पर अकादमिक पाठ्यक्रमों के उद्देश्य होंगे :

- विभिन्न विषयों में छात्रों को उच्च ज्ञान से परिचित कराना,
- विषय-विशेष के अंतर्गत सूचना एवं डेटा के संकलन और विश्लेषण के लिए विभिन्न तरीकों का उपयोग करना और छात्रों को निष्कर्ष निकालने और नई अंतर्दृष्टि और प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त करने के लिए मदद करना,
- भावी नागरिकों में समस्या-समाधान और सर्जनात्मक चिंतन की योग्यता बढ़ाना,
- समाज की परिवर्तित होती माँगों के साथ विज्ञान, प्रौद्योगिकी और सूचना-विज्ञान के उपयोग द्वारा तालमेल स्थापित करना, और
- अपनी रुचियों और प्रवृत्तियों का स्वयं पता लगाने और अपने भविष्य निर्माण के लिए उपयुक्त कैरीयर चुनने में छात्रों की सहायता करना।

3.5 अध्ययन योजना

इस स्तर पर पाठ्यचर्या में निम्नलिखित पाठ्यक्रम होंगे :

(i) आधार पाठ्यक्रम और (ii) ऐच्छिक पाठ्यक्रम

(i) आधार पाठ्यक्रम

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर छात्र अकादमिक या व्यावसायिक में से किसी एक कोर्स का चयन करते हैं। मगर सभी के लिए आधार पाठ्यक्रम ज़रूरी है। बावजूद इसके सामान्य शिक्षा के तत्व न्यूनतम कर देने होंगे और पाठ्यचर्या में कुछ बहुत ही महत्त्वपूर्ण तत्वों का समावेश करना होगा। पाठ्यचर्या के समान घटक होंगे (i) भाषा और साहित्य (ii) कार्य शिक्षा, तथा (iii) स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा एवं खेलकूद।

भाषा : आधार पाठ्यक्रम के एक तत्व के रूप में भाषा के अध्यापन का उद्देश्य छात्रों में उच्च संप्रेषण और वार्तालाप कौशलों का पोषण तथा उच्चतर स्तर का वाचन, लेखन और अध्ययन के कौशलों का विकास करना है। भाषा के माध्यम से छात्रों में जीवन के प्रति मानवीयतायुक्त, बोधगम्य और भविष्यदृष्टिपूर्ण दृष्टिकोण विकसित होता है।

जब छात्र अपने जीवन में कार्यजगत में प्रवेश की तैयारी कर रहे हैं या उच्च शैक्षणिक या उच्च व्यवसाय संबंधी या व्यावसायिक क्षेत्रों की शिक्षा की ओर जा रहे हैं, तो ऐसे में भाषा का सामान्य और विशेष अध्ययन छात्रों को संप्रेषण, संचार और वार्तालाप कौशल, उच्चस्तरीय वाचन, लेखन, अध्ययन कौशल और अपने अध्ययन या कार्यक्षेत्र के बारे में संपूर्ण दृष्टि से संपन्न करता है। भाषा का अध्ययन छात्र को भाषा सीखने और उसका इस्तेमाल करने दोनों के लिए तैयार करता है जिससे वे कक्षा, समुदाय और कार्यस्थल पर प्रभावी ढंग से भाषा का इस्तेमाल कर सकें।

भाषा के विभिन्न पाठ छात्रों का मानसिक विस्तार करते हैं, उन्हें पूर्वग्रहों, जड़ सिद्धांतों और अंधविश्वासों से मुक्त करते हैं और उनमें व्यक्तिगत और सामाजिक मूल्यों, चेतना और कलात्मक, साहित्यिक एवं देश की सांस्कृतिक परंपराओं के प्रति गर्व की भावना पैदा कर राष्ट्र में सामाजिक-मानसिकता की गहरी समझ का पोषण करते हैं। भाषा और साहित्य का अध्ययन मानवीय संवेगों, भावनाओं, मानसिक द्वंद्वों और उनके निराकरण के माध्यम से छात्रों का मानसिक स्वास्थ्य बेहतर बनाता है।

आधार-पाठ्यक्रम के अंतर्गत इस स्तर पर अपने अध्ययन की भाषा का चुनाव छात्र अपनी व्यक्तिगत पसंद और ज़रूरतों के मुताबिक करने के लिए स्वतंत्र है।

कार्य शिक्षा : नवोदित भारत का अंतिम स्वरूप बहुत कुछ विद्यालयों में कार्य-आचरण के प्रति संकल्प से ही निश्चित होगा। कार्य के प्रति देश का दर्शन और दृष्टिकोण, उसके कौशलों और स्वस्थ आदतों के विकास के प्रयास और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसका उत्पादन बढ़ाने के प्रति संकल्प मुख्य रूप से विद्यालयी शिक्षा में कक्षा के अंदर और बाहर कार्य शिक्षा को दिए गए स्थान और महत्त्व पर निर्भर करेगा। इससे यह अपने आप ही स्पष्ट हो जाता है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर की शैक्षणिक धारा में कार्य शिक्षा को स्थान क्यों दिया गया है।

यह कार्य एक या अधिक विषयों से जोड़ा जा सकता है और यदि आवश्यकता हो तो इसे विषयों से अलग भी रखा जा सकता है। इसलिए विभिन्न विषय-क्षेत्रों के साथ और विशेष रूप से स्थानीय पर्यावरण एवं पड़ोस में संचालित विकासात्मक गतिविधियों के साथ इस कार्यक्रम को जोड़ने के लिए विशेष प्रयास किए जा सकते हैं। ग्राम एवं नगर की गंदी बस्तियों में स्कूल द्वारा लंबी अवधि के प्रोजेक्ट्स चलाने से सामाजिक मेट्रिक्स और आर्थिक समस्या एवं प्रक्रियाओं के प्रति व्यावहारिक अनुभव और अंतर्दृष्टि का विकास होगा। इससे वांछित सामाजिक मूल्यों के निर्माण में भी मदद मिलेगी। ये विकासात्मक प्रोजेक्ट प्रौढ़-शिक्षा, वनीकरण, जल-प्रबंधन, सड़क निर्माण आदि के क्षेत्र में लिए जा सकते हैं।

अकादमिक क्षेत्र के छात्रों के लिए व्यापक जेनरिक व्यावसायिक पाठ्यक्रम (जी.वी.सी.) अनेक व्यवसायों के द्वार खोलता है और रोज़गार से संबद्ध उन मूलभूत कौशलों का विकास करता है जो व्यक्तिगत व्यवसायों के बावजूद शिक्षित कार्यदल की आवश्यकता है। प्रौद्योगिकी-उन्मुखी समाज के लिए मुख्य दक्षताओं और आदान-प्रदान योग्य कौशलों के द्वारा सामान्य शिक्षा की गुणवत्ता में भी यह पाठ्यक्रम सुधार करेगा।

स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा एवं खेलकूद : शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य जीवन की मुख्य संपदा है। इसलिए शिक्षा के किसी भी स्तर पर स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा को पाठ्यचर्या का अभिन्न अंग बनाना होगा। इस पाठ्यचर्या में किशोरावस्था और यौन शिक्षा के तत्वों को भी शामिल करना होगा।

शारीरिक प्रशिक्षण, एथलेटिक्स, खेलकूद, योग और शारीरिक स्फूर्ति के लिए व्यायाम के अतिरिक्त इस स्तर पर शारीरिक शिक्षा और भौतिक संस्कृति को भी पाठ्यक्रम का अंग बनाने पर विशेष ध्यान देना होगा। इस स्तर पर शारीरिक शिक्षा और शारीरिक संस्कृति के अंग के रूप में नियमित शारीरिक प्रशिक्षण के अतिरिक्त एथलेटिक्स, खेलकूद, योग तथा शारीरिक स्वस्थता के लिए व्यायाम पर विशेष ध्यान देना होगा।

(ii) ऐच्छिक पाठ्यक्रम

ऐच्छिक पाठ्यक्रम विभिन्न प्रकार के छात्र-समुदायों की शिक्षा के लिए और उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होगा। इस स्तर के बाद जहाँ बहुत थोड़े छात्र ही स्नातक स्तर की कक्षा में दाखिल होंगे वहीं अधिकतर छात्र कार्यजगत में प्रवेश के लिए भी प्रयास करेंगे।

सुस्थापित विषयों में पारंपरिक पाठ्यक्रम का अध्ययन अपनी जगह बना रहेगा। किंतु आज अध्ययन के कुछ नए महत्त्वपूर्ण ज्ञानप्रद विषयों का भी उदय हुआ है। उदाहरण के लिए इनमें कंप्यूटर-विज्ञान, जैव-प्रौद्योगिकी, प्रजनन-विज्ञान, योग और पर्यावरण शिक्षा इन पाठ्यक्रमों में शामिल हैं। शिक्षाविदों के लिए वास्तविक चुनौती तो प्रायोगिक या व्यावहारिक प्रकृति के पाठ्यक्रमों की पहचान करना और उनका नियोजन करना है जिनका जीवन में पर्याप्त रोज़गार-संबंधी योग्यताओं से या त्वरित उपयोगिता से संबंध होगा। इसी के समान बड़ी चुनौती आवश्यक अंतर्विषयक पाठ्यक्रमों के लिए भी है। संरक्षण शिक्षा, उपभोक्ता शिक्षा, विधि-साक्षरता, उत्पादकता शिक्षा, जनसंख्या शिक्षा, आपदा का प्रबंधन और पारिवारिक जीवन शिक्षा का भी शायद लाभदायक ढंग से ज्ञान कराया जा सकता है।

बोर्ड द्वारा निर्धारित विषयों में से छात्र किन्हीं भी तीन विषयों के पाठ्यक्रमों को चुन सकता है। इन पाठ्यक्रमों में आधुनिक भारतीय भाषाएँ और उनका साहित्य, संस्कृत और उसका साहित्य, शास्त्रीय भाषाएँ और उनका साहित्य, अंग्रेज़ी (शैक्षणिक और विशिष्ट), अन्य विदेशी

भाषाएँ और उनका साहित्य शामिल होगा। भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, प्राणी विज्ञान, गणित, कंप्यूटर विज्ञान, भूविज्ञान, राजनीति विज्ञान, भूगोल, अर्थशास्त्र, इतिहास, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, दर्शन, ललित कलाएँ, मूर्तिकला, वाद्य-संगीत, स्वर-संगीत, गृह-विज्ञान, एकाउंटेंसी, व्यापार-अध्ययन, यांत्रिक-चित्रकला आदि शामिल होंगे। यह सूची भी समग्र या पर्याप्त नहीं है। विभिन्न रुचि वाले समूहों के सहयोग से समय-समय पर इस सूची में निहित कोर्सों की समीक्षा करना आवश्यक है। ऐसे समूह होंगे—उद्योग, व्यापार, विश्वविद्यालय, रोज़गार एवं जनशक्ति के विशेषज्ञ। इसके अतिरिक्त वे सामान्य लोग भी होंगे, जैसे—माता-पिता, कलाकार, समाजसेवी और राजनीतिक कार्यकर्ता जो समाज और व्यक्ति की बदलती आवश्यकताओं की दृष्टि से परिवर्तनों को प्रभावी ढंग से अपनाएँगे और लागू करेंगे।

माध्यमिक शिक्षा बोर्डों की यह सामान्य प्रक्रिया है कि वे ऐच्छिक विषयों को समूहों के अंतर्गत बाँट देते हैं, जैसे—विज्ञान समूह, वाणिज्य समूह, मानविकी समूह आदि। लेकिन बेहतर यह होगा कि ऐसे समस्त पाठ्यक्रमों की सूची उन्हें परस्पर विशेष-विषय-समूहों में बाँटे बगैर बनाई जानी चाहिए क्योंकि बाँटने के कारण स्वैच्छिक विविधता (डाइवर्सिफ़िकेशन), लचीलापन और कार्यात्मकता की भावना कारगर ही नहीं हो पाएगी। प्रबंधन के कुछ मुद्दों पर काबू पाने के लिए कुछ क्रियाएँ मुक्त शिक्षण प्रणाली से उधार ली जा सकती हैं। एक दूसरे के साथ आदान-प्रदान भी शिक्षा की एक परंपरा है। इससे अंतर्विषयात्मक अध्ययन को प्रोत्साहन मिलेगा।

3.6 शिक्षण युक्तियाँ

छात्रों में जिज्ञासा उत्पन्न करने, स्वाध्याय के लिए प्रोत्साहन देने और समस्या-समाधान की योग्यताओं का पोषण करने की दृष्टि से इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के प्रयोग सहित नवीन और गतिशील तकनीकों को अपनाना होगा। सिखाने या पढ़ाने के बजाय स्वयं सीखने पर ज़्यादा ज़ोर देना होगा। इसके लिए सेमिनार, ट्यूटोरियल कार्य, समस्या-समाधान सत्र, समूह चर्चा, प्रयोगशाला कार्य, प्रोजेक्ट कार्य, घर में अध्ययन आदि शिक्षण कार्यक्रमों के अभिन्न हिस्से होंगे और सतत सत्रीय मूल्यांकन में प्रत्येक गतिविधि के लिए क्रेडिट देने का प्रावधान होगा।

3.7 शिक्षण समय

मूल्यांकन गतिविधियों, परीक्षणों, परीक्षाओं और विद्यालयी समारोहों के आयोजन दिवसों को ध्यान में रखते हुए प्रभावी शिक्षण के लिए वर्ष में 180 कार्यकारी शिक्षण दिवस अनिवार्य हैं।

विद्यालयों को यह प्रभावी ढंग से बताना होगा कि आधार पाठ्यक्रम के लिए निर्धारित समय का अन्य मुख्य विषयों द्वारा और इसी प्रकार अन्य विषयों का समय-आधारित-पाठ्यक्रम द्वारा किसी भी हालत में अतिक्रमण न हो। मोटे तौर पर पूरे समय का साठ प्रतिशत मुख्य विषयों और चालीस प्रतिशत आधार पाठ्यक्रमों को देना होगा।

3.8 व्यावसायिक धारा

शिक्षा आयोग (कोठारी कमीशन, 1964-66) में व्यावसायिक शिक्षा धारा शुरू करने की सिफ़ारिश की गई थी और उससे उद्यमी कौशलों और दक्षताओं से युक्त कुशल जनशक्ति निर्माण के संदर्भ में दूरगामी परिणाम प्राप्त करने की संभावनाएँ व्यक्त की गई थीं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 (1992 में संशोधित) में वर्ष 1995 तक पच्चीस प्रतिशत उच्चतर माध्यमिक छात्रों तक व्यावसायिक शिक्षा पहुँचाने का लक्ष्य रखा गया था। लेकिन अभी तक केवल पाँच प्रतिशत छात्र ही इस धारा में भर्ती हो सके हैं। अपेक्षित लक्ष्यों को हासिल करने और उभरती चुनौतियों का सामना करने के लिए व्यावसायिक शिक्षा को उच्च प्राथमिकता देनी होगी।

प्रौद्योगिक प्रगति की प्रकृति और अत्यधिक प्रतियोगिता युक्त विश्व की माँग को देखते हुए प्रत्येक व्यक्ति के लिए जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ज्ञान और कौशल को निरंतर अद्यतन बनाना आवश्यक है। जहाँ संगठित क्षेत्र में औपचारिक रोज़गार के अवसर घट रहे हैं, वहीं ये अवसर सेवाओं के क्षेत्र में बढ़ रहे हैं। व्यावसायिक शिक्षा में जाने वाले सभी छात्रों को स्वरोज़गार और उद्यमवृत्ति के लिए आवश्यक कौशलों से संपन्न बनाना होगा।

3.8.1 सभी के लिए व्यावसायिक शिक्षा

माध्यमिक स्तर तक कार्य शिक्षा के अंतर्गत छात्रों को कार्य करने के लिए अवसर प्रदान करने संबंधी प्रावधान विद्यमान हैं। वैकल्पिक योजना के अंतर्गत माध्यमिक स्तर पर पूर्व व्यावसायिक (प्रीवोकेशनल) शिक्षा का एक और भी प्रावधान है। इसके पश्चात् उच्चतर **माध्यमिक स्तर पर** अकादमिक धारा में व्यापक या सामान्य व्यावसायिक पाठ्यक्रम तथा **व्यावसायिक धारा में व्यावसायिक** पाठ्यक्रम आते हैं।

व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की रचना अपने आप में परिपूर्ण मॉड्यूलों के रूप में की जानी है जिनमें **सैद्धांतिक आयामों या** मूलभूत वैज्ञानिक सिद्धांतों एवं व्यावहारिक कार्य संबंधी विस्तृत **जानकारी स्पष्ट रूप से** समाहित की गई हो। छात्रों को **इन पाठ्यक्रमों को उपलब्ध** कराने से पहले विद्यालय छात्रों की आवश्यकता, कोर्सों की उपादेयता **और प्रासंगिकता का** आकलन करेंगे। इन पाठ्यक्रमों की समयावधि उनकी प्रकृति एवं **आवश्यकतानुसार अलग-अलग** हो सकती है। औपचारिक विद्यालयी शिक्षा प्रणाली के **इन पाठ्यक्रमों से कार्यजगत में प्रवेश**

करने वाले विद्यार्थियों की नियोजनीयता या रोज़गार पाने की क्षमता को बढ़ाने में सहायता मिलेगी।

व्यावसायिक शिक्षा के लिए वैकल्पिक शिक्षण प्रणाली और विशेष रूप से मुक्त विद्यालयी शिक्षा प्रणाली में भी उचित स्थान बनाना होगा। दसवीं कक्षा पास कर लेने के बाद अनेक कारणों से अधिकांश विद्यार्थी विद्यालय छोड़ देते हैं। उनमें से काफ़ी बड़ी संख्या में छात्र ऐसे वैकल्पिक रास्तों की तलाश करते हैं जो उनकी रुचियों के अनुरूप हों और वे उनसे धनार्जन की क्षमता विकसित कर सकें। लचीले और मॉड्यूल-रूप में होने के कारण व्यावसायिक शिक्षा योजना ऐसे मौके देती है। व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम नवसाक्षरों, अर्धकुशलों या अकुशल कामकाजी प्रौढ़ों की ज़रूरतें भी पूरी कर सकते हैं। उद्यमवृत्ति पर बल देने वाले अनौपचारिक व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम और अपारंपरिक नवीन प्रौद्योगिकी विद्यालय सुविधावंचित लड़कियों की ज़रूरतों के प्रति विशेष रूप से संचालित करने होंगे। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बहुप्रवेशी और बहुनिगमन मॉड्यूल वाले पाठ्यक्रमों का विभिन्न समयावधियों के लिए नियोजन करना होगा।

सामाजिक रूप से सुविधावंचित समूहों की विभिन्न आवश्यकताओं की दृष्टि से निर्मित व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम महिलाओं, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और शारीरिक-चुनौतियों से युक्त व्यक्तियों को समुचित उत्पादक कौशल अर्जित करने में मदद करेगा। यह उनके जीवन को आर्थिक रूप से स्वाधीन और आत्मनिर्भर बना कर सार्थक बना देगा। यह सामाजिक और आर्थिक सुदृढ़ीकरण की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम होगा।

आगे के ऊँचे व्यावसायिक स्तरों और उसी स्तर पर उपलब्ध अन्य सुअवसरों के बीच तालमेल स्थापित किया जाना चाहिए। इससे व्यावसायिक छात्रों को बेहतर कैरीयर के अवसर मिलेंगे और साथ ही व्यावसायिक शिक्षा को भी सम्मान और स्वीकृति मिलेगी।

3.8.2 उत्कृष्टता

व्यावसायिक शिक्षा को दोयम दर्ज़े की शिक्षा माना जाता है और उसमें उपलब्धियों की उत्कृष्टता को हानि पहुँचाने वाली प्रक्रिया अनेक कारणों और पूर्वग्रहों का परिणाम है। जहाँ उत्कृष्टता की उपलब्धि के सभी प्रयास करने होंगे वहीं यह भी ध्यान रखना होगा कि व्यावसायिक शिक्षा की स्थिति को निम्न मानने की दृष्टि एक वैश्विक सरोकार है। यह भी एक प्रकार से एक दूसरे से जुड़ा विचार ही है जिसे कुछ छात्रों द्वारा तो व्यावसायिक शिक्षा में घटिया माना जाता है, लेकिन कई छात्रों के लिए यह पसंद का विषय भी होता है। चयन करने की दृष्टि से कुछ प्राथमिकताओं में बदलाव लाना ज़रूरी है क्योंकि अब पारिश्रमिक रहित सामान्य शिक्षा-पाठ्यक्रमों के दबाव व्यावसायिक शिक्षा की दिशा में मुड़ रहे हैं। इस

प्रकार के और ज़्यादा बदलाव निकट भविष्य में आने को हैं। इस बात के स्पष्ट संकेत निजी क्षेत्रों के व्यावसायिक-पाठ्यक्रमों से उभरती हुई प्रौद्योगिकी के संदर्भ में मिलने भी लगे हैं।

उत्कृष्टता सुनिश्चित करने के लिए दक्षता-आधारित पाठ्यचर्याओं की बड़ी भूमिका है। जहाँ भी ज़रूरी हो, स्तर की समतुल्यता बनाने में भी इनसे मदद मिलती है। यदि उच्च स्तर की व्यावसायिक शिक्षा धारा देश में उपलब्ध होती है तो वर्तमान संख्या से कहीं अधिक बड़ी संख्या में छात्र अपने आप ही उत्कृष्टता की दृष्टि से उसकी ओर आकर्षित होंगे।

3.8.3 विद्यालय का उद्योग जगत से संबंध

व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में प्रासंगिक व्यावसायिक पाठ्यक्रम-उपागम उपलब्ध कराने के लिए विद्यालय और उद्योग जगत का सह-संबंध एक महत्त्वपूर्ण तत्व होगा। विद्यालय निकटस्थ उद्योग के साथ लाभदायक संबंधों के क्षेत्र में प्रवेश कर उनके पास उपलब्ध सुविधाओं और शिक्षकों आदि में साझेदारी कर सकते हैं और प्रशिक्षुओं को अवसर प्रदान कर सकते हैं। इस व्यवस्था का अप्रेंटिस एक्ट में भी प्रावधान है। कई देशों में उद्योग अपने ही द्वारा प्रशिक्षित लोगों को रोज़गार दे देते हैं। विद्यालयी शिक्षा प्रक्रिया में लगने वाले समय और आर्थिक व्यय दोनों में इसके कारण काफ़ी बचत हो जाती है। ऐसे प्रशिक्षणों के लिए आमतौर पर पाठ्यचर्या भी उद्योग द्वारा ही निर्धारित की जाती है। इस प्रकार की सहजीविता विद्यालयों द्वारा संगठित और असंगठित दोनों उद्योग-क्षेत्रों में विकसित की जा सकती है।

'उद्योग' शब्द का तात्पर्य इस संदर्भ में ऐसे प्रत्येक संगठन को शामिल करने से है जो व्यावसायिक शिक्षा के पाठ्यक्रम के लिए प्रत्यक्ष रूप से प्रासंगिक हो और जिसमें रोज़गार देने की कूवत हो। इसलिए व्यावसायिक शिक्षा को सभी क्षेत्रों की ज़रूरतें पूरी करनी होंगी, जैसे—संगठित क्षेत्र, सेवा क्षेत्र, ग्रामीण और कृषि आधारित उद्योग, कृषि से संबंधित व्यवसाय, वाणिज्य एवं व्यापार और अन्य शिल्प।

कार्यजगत से जुड़े अनुभव प्राप्त करने के लिए शिक्षार्थियों को बाहरी संगठनों, एजेंसियों और बृहत् समुदाय के साथ संवाद एवं अंतर्क्रिया करनी होगी। विद्यालयों को इस प्रकार की कड़ियाँ जोड़ने के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी।

3.9 अध्ययन योजना

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम का उद्देश्य है विविधतायुक्त (डाइवरसीफ़ाइड) पाठ्यक्रम कौशल और उनसे संबंधित ज्ञान जो स्वरोज़गार की दृष्टि से

विशेष रोज़गार या रोज़गार-समूहों के लिए बच्चों को कार्यजगत में प्रवेश कराने के लिए विशेष रूप से तैयार करता है। व्यावसायिक पाठ्यक्रम के उपागम इस प्रकार होंगे :

(i) भाषा

(ii) सामान्य आधार पाठ्यक्रम

(iii) स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा तथा

(vi) व्यावसायिक विषय-चयन

व्यावसायिक शिक्षा में अनेक क्षेत्र समाहित हैं, जैसे—कृषि, इंजीनियरिंग और प्रौद्योगिकी (सूचना और संचार प्रौद्योगिकी सहित), व्यापार और वाणिज्य, गृह विज्ञान, स्वास्थ्य और सह-चिकित्सकीय सेवाएँ एवं मानविकी। प्रत्येक क्षेत्र में बड़ी संख्या में विशेष (स्पेशल) उपागम निहित हैं।

ये कोर्स मॉड्यूल के रूप में होंगे जो क्रेडिट प्रणाली पर आधारित सुपरिभाषित या विशेष दक्षताओं का विकास करेंगे। प्रमाण-पत्र प्रदान करने के लिए निर्धारित क्रेडिट संख्या का अर्जन-संकलन इन पाठ्यक्रमों को सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए करना होगा। इस प्रकार व्यावसायिक-पाठ्यक्रम उपलब्ध कराने के लिए पाठ्यक्रमगत लचीलापन होना चाहिए ताकि वह लक्ष्य-समूहों की स्थानीय ज़रूरतों के मुताबिक ही पाठ्यक्रमों की प्रासंगिकता एवं प्रभावशीलता को बढ़ा सके।

सूचना प्रौद्योगिकी और आर्थिक भूमंडलीकरण के बढ़ते कदमों के साथ-साथ व्यावसायिक शिक्षा के लिए जिन दक्षताओं और कौशलों को विकसित किए जाने की ज़रूरत है उनकी विविधता का क्षेत्र भी काफ़ी विस्तृत हो गया है। एक ओर सूचना और संचार प्रौद्योगिकी को दूरस्थ अंचलों तक फैलाने के लिए जनशक्ति विकसित करने की ज़रूरत होगी, वहीं दूसरी ओर ग्रामीण भारत की कृषि और कृषि-आधारित प्रौद्योगिकी की व्यावसायिक ज़रूरतों को भी पूरा करना होगा। इसके अतिरिक्त पारंपरिक कारीगरों और शिल्पकारों को भी भुलाया नहीं जा सकता। उनके कौशलों और दक्षताओं को नई पीढ़ी तक पहुँचाना होगा। इन व्यवसायों और शिल्पों की कुशलता और गुणवत्ता में सुधार के लिए औपचारिक पाठ्यक्रम आधुनिक प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल करेंगे और इसके साथ ही इन व्यवसायों और शिल्पों से जुड़ी पारंपरिक नीरसता भी समाप्त होगी। इन पाठ्यक्रमों की पर्याप्त मान्यता हो, और जहाँ आवश्यक हो, इनका उचित प्रमाणपत्रीकरण भी होना चाहिए।

(i) भाषा

व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में अध्ययन करने वाले छात्रों के लिए भाषा कम महत्त्वपूर्ण नहीं है

क्योंकि भाषा ही तो संचार-कौशलों का संचालन करती है। एकमात्र और सर्वाधिक उल्लेखनीय तत्व तो होगा : भाषा-शिक्षण कार्यक्रमों का इस प्रकार से संयोजन जो व्याकरणिक संरचना और छात्रों के व्यवसाय की दृष्टि से उपयोगी अतिरिक्त शब्द भंडार का ठीक से अध्यापन करवा सके। इसके अतिरिक्त संस्कृति और साहित्य संबंधी इकाइयाँ भी होंगी जो शिक्षार्थी के संवेगात्मक, बौद्धिक और उसके व्यक्तित्व के समग्र विकास की आवश्यकताओं की पूर्ति करेगी। भाषा-चयन का विकल्प छात्रों की आवश्यकता और व्यवस्था में उपलब्ध बुनियादी संरचना के आधार पर तय होगा।

(ii) सामान्य आधार पाठ्यक्रम

व्यावसायिक शिक्षा-क्षेत्र में सामान्य आधार पाठ्यक्रम में मुख्य रूप से सामान्य अध्ययन, उद्यमवृत्ति का विकास, पर्यावरण शिक्षा, ग्रामीण विकास और सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी जैसे विषय निहित होंगे। सामान्य अध्ययन का पाठ्यक्रम प्रथम दस वर्ष की विद्यालयी शिक्षा में निर्मित बुनियाद का विस्तार ही है। इसका उद्देश्य युवा छात्रों को समकालीन भारत और विश्व से जुड़े सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, नैतिक और आचरण संबंधी मुद्दों के प्रति संवेदनशील बनाना है। स्वरोज़गार के लिए उद्यमवृत्ति और सेल्समेनशिप का विकास आवश्यक है क्योंकि ये ही तो सामान्य आधार पाठ्यक्रम के मुख्य अंग हैं।

निरंतर विकास के लिए आधारभूत स्तर पर पर्यावरणीय मुद्दों को ध्यान में रखना ज़रूरी है। इसलिए व्यावसायिक शिक्षा के वे छात्र जिनके कार्यजगत में कम उम्र में ही प्रवेश की अपेक्षा है, उन्हें पर्यावरण संरक्षण और विकास से जुड़े सरोकारों और मुद्दों के प्रति जागरूक बनाना होगा।

ऐसे देश में, जिसकी दो तिहाई आबादी कृषि पर जीवित है, ग्रामीण क्षेत्रों में स्वरोज़गार के अवसरों के लिए विपुल संभावनाएँ हैं। इसलिए इस पाठ्यक्रम का एक अभिन्न घटक ग्रामीण विकास भी है।

आज की दुनिया का दूसरा महत्त्वपूर्ण पहलू है—जीवन के हर क्षेत्र में कंप्यूटर का इस्तेमाल, जिसके कारण इंटरनेट, ई-मेल और ई-वाणिज्य का ज्ञान अत्यंत आवश्यक है। इसलिए सूचना प्रौद्योगिकी का समावेश भी इस पाठ्यक्रम में करना होगा।

(iii) स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा

विद्यालयी शिक्षा की प्रत्येक धारा में और प्रत्येक स्तर पर शारीरिक चुस्ती की दृष्टि से नियमित शारीरिक प्रशिक्षण के अवसर पैदा करने होंगे। इसलिए व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के छात्रों के लिए ऐसी कसरतें और गतिविधियाँ आवश्यक हैं जिनसे उन पर शारीरिक ज़ोर या

दबाव कम पड़े क्योंकि इन छात्रों को व्यावहारिक कार्य (प्रैक्टिकल वर्क) के दौरान जॉब प्रशिक्षण के लिए कठोर परिश्रम करना पड़ता है। इस दृष्टि से शारीरिक गतिविधियों, जैसे– योग, ध्यान और हाव-भाव एवं आसन (पोस्चर) बदलने वाली मामूली कसरतें और आराम या शरीर का शिथिलीकरण, की ही सिफ़ारिश की जाती है। स्थानीय स्वच्छता और सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार वास्तविक क्षेत्र कार्य (फील्ड वर्क) के रूप में पाठ्यक्रम का हिस्सा होना चाहिए।

(iv) व्यावसायिक विषय-चयन

व्यावसायिक कोर्स विविध प्रकार के समूहों की ज़रूरतों की पूर्ति के लिए होते हैं। व्यावसायिक धारा से उत्तीर्ण होकर निकलने वाले अधिकांश छात्र कार्यजगत में प्रवेश करेंगे। छात्रों को बड़ी मात्रा में स्थानीय आवश्यकताओं, सवैतनिक रोज़गार, स्वरोज़गार, उनकी प्रवृत्तियों, रुचियों और विद्यालय की भौगोलिक स्थिति पर आधारित कई विकल्प देने होंगे। इस प्रकार छात्र अपनी पसंद के क्षेत्रों से संबंधित कोर्स का चयन करने का अवसर प्राप्त कर सकेंगे। प्रत्येक व्यापक क्षेत्र में अनेक कोर्स विशिष्ट दक्षताओं के विकास करने की दृष्टि से तैयार करने होंगे। क्षेत्र में कार्यरत कार्यकर्ताओं से अपेक्षित कार्यों और दायित्वों का विश्लेषण करने के बाद इन कोर्सों का निर्धारण करना होगा।

संभावित रोज़गार अवसर चाहे सवैतनिक हों या स्वरोज़गार के, विभिन्न प्रासंगिक क्षेत्रों से संबद्ध विशेषज्ञों द्वारा इनकी पहचान की जाती है। ज्ञान, कौशल और अभिवृत्ति से जुड़ी दक्षताओं की भी पहचान की जाती है और उसी के अनुसार अधिगम-अनुभवों का संयोजन किया जाता है। मॉड्यूल के रूप में अध्ययन-अध्यापन की प्रक्रिया की सुविधा के लिए अधिगम-अनुभवों का समूहीकरण किया जाता है और इसके बाद ही व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम को लागू करने के लिए प्रबंधन की शुरूआत होती है। विकल्पों के समूहीकरण की समय-समय पर सावधानीपूर्वक समीक्षा और संशोधन करना भी वांछनीय होगा। किसी-न-किसी प्रकार का प्रभावी कार्यतंत्र प्रचलित कोर्सों की गुणवत्ता, मानकीकरण और नियंत्रण के लिए ज़रूरी है। इससे व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की विश्वसनीयता और उत्तीर्ण छात्रों की कद्र और स्वीकृति अच्छे रोज़गारदाताओं के बीच बढ़ेगी।

3.10 शिक्षण युक्तियाँ

व्यावसायिक शिक्षा के लिए अच्छी तरह से आजमाई या जाँच ली गई कार्यनीति अध्ययन-अध्यापन और विशेष रूप से व्यवसायों के प्रयोग और उद्यमवृत्ति के लिए आवश्यक है। प्रायोगिक प्रशिक्षण व्यावसायिक पाठ्यक्रम का आवश्यक घटक है क्योंकि इसी से व्यवसाय के लिए ज़रूरी दक्षताओं को पर्याप्त सुगठित रूप से विकसित किया जाता है। इसके लिए

प्रशिक्षण सहित उत्पादन युक्त केंद्रों पर छात्रों को पर्याप्त कार्य करने के अवसर देने होंगे और प्रशिक्षण और प्रोजेक्ट कार्य के माध्यम से ज्ञान और कौशलों का समन्वय करने के लिए भी उचित प्रबंध करने होंगे। इस प्रकार छात्र जो दक्षताएँ अर्जित करेंगे उनको प्रशिक्षुकाल (अप्रेंटिसशिप) के दौरान अधिक पुष्ट और कुशलतापूर्ण बनाया जा सकेगा।

प्रशिक्षण और उत्पादन केंद्र

जिन विद्यालयों में व्यावसायिक पाठ्यक्रम पढ़ाया जाता है उनके पास स्वयं अपने प्रशिक्षण और उत्पादन केंद्र होने चाहिए। ये केंद्र छात्रों को कार्यस्थल पर रहते हुए वास्तविक जीवन-अनुभवों के आधार पर आवश्यक योग्यताएँ अर्जित करने के अवसर प्रदान करते हैं। इस प्रकार जो विद्यालय व्यावसायिक पाठ्यक्रम चला रहे हैं, उन्हें चाहिए कि वे अपने उत्पादन और सेवाओं के ज़रिए पैसा कमाने के लिए अर्ध-व्यापारिक उद्यम करें। अर्जित धन के लाभ में साझेदारी छात्रों और अध्यापकों के लिए अतिरिक्त प्रोत्साहन होगा। साथ ही यह एक सुदृढ़ शिक्षाशास्त्रीय तरीका भी होगा। समुदाय को भी इन उत्पादों के लिए बाज़ार उपलब्ध कराने के लिए समुचित रूप से शामिल करना होगा।

ज्ञान और कौशल का समेकन

विद्यालयों में व्यावसायिक पाठ्यक्रम के संचालन के दौरान ज्ञान और कौशल का निरंतर समेकन या समन्वय होता रहता है। इसे व्यावहारिक अनुभवों, कार्य स्थल पर प्रशिक्षण और प्रोजेक्ट कार्य के द्वारा और अधिक समृद्ध किया जा सकता है। व्यावहारिक अनुभवों से संपन्न बनाने के लिए छात्रों को सर्विस केंद्र या मरम्मत केंद्र या उत्पादन इकाई में ले जाकर किसी विशेषज्ञ कारीगर के मार्गदर्शन में वास्तविक जीवन-स्थितियों में रखकर काम करने का अवसर दिया जा सकता है। इसलिए प्रत्येक व्यावसायिक पाठ्यक्रम के लिए ऑन-द-जॉब या कार्यस्थल पर कुछ घंटों के प्रशिक्षण का प्रावधान होना चाहिए। छात्रों का मूल्यांकन शिक्षक और विशेषज्ञ कारीगर दोनों ही के द्वारा संयुक्त रूप से किया जा सकता है।

छात्रों को व्यक्तिगत रूप से या छोटे-छोटे समूहों में प्रोजेक्ट कार्य भी दिए जाएँ। उससे उन्हें निर्धारित समय के भीतर लक्ष्य प्राप्त करने के लिए अपने ज्ञान को सुसंगठित करने और संवाद एवं संप्रेषण के तरीके सीखने में मदद मिलेगी।

अप्रेंटिसशिप या प्रशिक्षुकाल

अप्रेंटिस एक्ट के अंतर्गत आज पढ़ाए जाने वाले अनेक व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में उत्तीर्ण छात्रों को प्रशिक्षुकालीन प्रशिक्षण देने की उम्मीद की जाती है। यह प्रशिक्षण उत्तीर्ण छात्रों

को औद्योगिक वातावरण से परिचित कराता है और उन्हें किसी उद्योग में कार्य करने का प्रथम अनुभव प्रदान करने के साथ कार्य-संस्कृति से भी परिचित कराता है। अप्रेंटिस एक्ट के अंतर्गत किसी भी उद्योग के लायक बनने के लिए छात्रों ने अध्ययन के दौरान जो दक्षताएँ हासिल की हैं उनका उन्हें प्रदर्शन करके दिखाना होगा। फिर यह नहीं समझना चाहिए कि प्रशिक्षुकालीन प्रशिक्षण विद्यालय में किए जाने वाले व्यावहारिक कार्य या वर्कशाप-प्रशिक्षण का कोई विकल्प है।

3.11 शिक्षण समय

व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए विभिन्न पाठ्यक्रमों के लिए आवश्यक शिक्षण समय की पर्याप्त व्यवस्था करनी होगी। विद्यालयों/एजेंसियों पर यह दबाव डालना होगा कि कार्य योजना (1992) में जिस प्रकार से समय आवंटन किया गया है, वही अपनाना होगा, जैसे—तीस प्रतिशत समय भाषाओं, सामान्य आधार पाठ्यक्रम और स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा के लिए और सत्तर प्रतिशत समय व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के लिए।

3.12 मूल्यांकन और प्रमाणपत्रीकरण

व्यावसायिक शिक्षा पाठ्यक्रमों में मूल्यांकन योग्यता प्रदर्शन या कार्य-निष्पादन (परफ़ॉर्मेंस) पर आधारित होगा। सतत और व्यापक मूल्यांकन द्वारा, जिसमें उपचारात्मक उपाय प्रक्रिया निहित होगी, वांछित दक्षताओं को प्रभावी ढंग से उपलब्ध कराने के लिए सुनिश्चित करना होगा। संपूर्ण और समग्र रेकार्ड या अभिलेख छात्रों के कार्य-निष्पादन और उनके व्यक्तित्व के विभिन्न प्रत्यक्ष गुणों के आकलन के आधार पर तैयार करने होंगे। सही मूल्यांकन के लिए प्रक्रिया और परिणाम दोनों का आकलन महत्त्वपूर्ण है। जो प्रमाणपत्र प्रदान किया जाएगा उसमें अर्जित क्रेडिट के साथ-साथ प्राप्त की गई दक्षताओं का भी उल्लेख होगा।

3.13 मुक्त विद्यालयी शिक्षा व्यवस्था

मुक्त शिक्षण प्रणाली अधिकाधिक लोकप्रिय होती जा रही है क्योंकि इसमें लचीले और शिक्षार्थी-मित्रवत वातावरण में तुलनीय स्तरों की शिक्षा प्रदान करने की क्षमता है। इसमें भी विशेषतः उन लोगों के लिए, जो देश में उपलब्ध औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके, उच्चतर माध्यमिक स्तर पर शैक्षणिक और व्यावसायिक दोनों ही प्रकार की शिक्षा के लिए मुक्त शिक्षण प्रणाली पूरी तरह से उपयोग में लाई जा सकती है। यह भी पूर्वानुमान लगाया गया था कि मुक्त शिक्षण के माध्यम से अनेक छात्र उच्चतर माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक पाठ्यक्रम में प्रवेश लेना चाहेंगे क्योंकि ऐसा शिक्षण विषयों के समूहीकरण और परीक्षा

योजना में स्वतंत्रता प्रदान करता है। औपचारिक और मुक्त शिक्षा प्रणाली में प्रत्येक विषय के लिए एक-जैसे पाठ्यक्रम बन सकते हैं ताकि स्तर की समतुल्यता कायम रखी जा सके। इन दोनों प्रणालियों के पाठ्यक्रमों की समतुल्यता से छात्रों को मुक्त शिक्षण प्रणाली से औपचारिक शिक्षण प्रणाली में जाने और औपचारिक से मुक्त शिक्षण प्रणाली में आने के लिए भी होगा। दोनों प्रणालियों का यह सहजीवी संबंध छात्रों के लिए बहुत लाभदायक होगा।

4

मूल्यांकन

सफलतापूर्वक सीखने के लिए बिना उच्चस्तरीय मूल्यांकन के अध्यापन संभव नहीं है। इसलिए अध्यापन और सीखने की प्रक्रिया में मूल्यांकन का अंतर्निहित होना आवश्यक है। यह जितना ही अधिक होगा, उतने ही बेहतर सीखने के परिणाम मिलेंगे। इसलिए मूल्यांकन प्रणाली की रचना ऐसी होनी चाहिए कि शिक्षक जो पढ़ाते हैं और छात्र जो सीखते हैं, उसे प्रभावित करने का यह शक्तिशाली माध्यम बने। लेकिन साथ ही यह भी सुनिश्चित करना होगा कि मूल्यांकन मानवीय हो और वह शिक्षार्थी को एक ज़िम्मेदार और उत्पादक नागरिक की तरह विकसित होने के काबिल बनाए। केवल इतना ही नहीं, मूल्यांकन को लगातार पाठ्यवस्तु की प्रभावशीलता, कक्षाई प्रक्रियाओं और प्रत्येक शिक्षार्थी के विकास के बारे में प्रतिपुष्टि (फीडबैक) देनी होगी जो मूल्यांकन प्रक्रिया की उपयुक्तता के अतिरिक्त होगी। इसलिए यह इस हद तक लचीली हो कि उसका प्रयोग किया जा सके और उसका शिक्षार्थी-समूहों की विशिष्ट स्थितियों एवं आवश्यकताओं के अनुसार अनुकूलन किया जा सके।

मूल्यांकन विभिन्न प्रकार के निर्णय लेने के उद्देश्य से संज्ञानात्मक और सह-संज्ञानात्मक दोनों ही क्षेत्रों में छात्रों के सीखने की गति और उपलब्धियों के बारे में साक्ष्यों का संकलन, विश्लेषण और व्याख्या करने की एक क्रमबद्ध प्रक्रिया है। इस प्रकार मूल्यांकन में सूचनाओं का संग्रह, विश्लेषण एवं निर्णय लेना निहित है।

4.1 वर्तमान मूल्यांकन प्रणाली

विद्यालय स्तर पर प्रचलित वर्तमान मूल्यांकन प्रणाली कई प्रकार की अपूर्णताओं से ग्रस्त है। पहली और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कमी तो इस मूल्यांकन प्रणाली की यह है कि यह केवल संज्ञानात्मक शिक्षण परिणामों पर ध्यान देती है और सह-संज्ञानात्मक आयामों को पूरी तरह से नज़रअंदाज़ या उपेक्षित कर देती है, जबकि ये सह-संज्ञानात्मक आयाम मानव व्यक्तित्व के अत्यंत सशक्त अंग हैं। यहाँ तक कि संज्ञानात्मक क्षेत्रों में भी रट कर याद कर लेने पर तो उसका बहुत ज़ोर रहता है मगर उन योग्यताओं और कौशलों पर बहुत कम ध्यान रहता

है जो उच्च मानसिक क्रियाओं, जैसे—समस्या निवारण, सृजनात्मक सोच, सारांश बोध, निष्कर्ष, तर्क-वितर्क आदि के लिए आवश्यक हैं।

वर्तमान रूप में परीक्षाएँ छात्रों की योग्यता का सही मापन नहीं करतीं, क्योंकि वे तो केवल वर्ष भर में छात्र जो पाठ्यवस्तु सीखने की कोशिश करते हैं, उसके एक अंश-भर का ही मापन करती हैं। परीक्षाएँ बहुविध मूल्यांकन तकनीकों के प्रयोग के भी अवसर नहीं देती हैं, जैसे—मौखिक, तकनीक, अवलोकन, प्रोजेक्ट, असाइनमेंट या कार्य आवंटन आदि। परीक्षाओं में तो केवल लिखित जाँच का ही उपयोग किया जा रहा है।

वर्तमान परीक्षा प्रणाली की दूसरी कमी यह है कि परिणाम अंकों में घोषित किए जाते हैं, जो परीक्षक की आत्मपरकता से लेकर 101 पाइंट के मापदंड की अंतर्निहित सीमा तक अनेक अपूर्णताओं से ग्रस्त रहती हैं जो न तो शून्य स्तर की कसौटी को संतुष्ट करते हैं और न ही 100 अंकों की पूर्णता को।

दसवीं कक्षा की सार्वजनिक परीक्षा का आतंक पूरे समाज पर इस कदर हावी रहता है कि यह स्कूली शिक्षा के प्रारंभिक स्तर तक व्याप्त हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप छोटे बच्चों की तैयारी भी शुरू से बोर्ड की परीक्षा प्रणाली के अनुसार कराई जाती है और निदान तथा उपचार जैसे महत्वपूर्ण तत्व मुश्किल से ही इस परीक्षा प्रणाली का हिस्सा बन पाते हैं। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए देश के लिए यह उपयुक्त और सामयिक कदम होगा कि वह कार्य योजना, 1992 (पी.ओ.ए. 1992) में निहित इस अनुशंसा पर ध्यान दे—"बाह्य परीक्षाओं के प्रभाव को कम करना चाहिए" (21, 1, 3, पृष्ठ 106)।

यह बात किसी से छिपी नहीं है कि शिक्षक अपना शिक्षण जाँच या परीक्षा के अनुरूप ढाल लेते हैं जिसका तात्पर्य इस कहावत को चरितार्थ करना है कि "जिस पाठ्यांश की जाँच या परीक्षा होनी है, वह पढ़ाया जाना चाहिए और जिसकी जाँच नहीं की जानी है, उसे नहीं पढ़ाना चाहिए।" परीक्षा का यह दुष्प्रभाव आज पूरी शिक्षा प्रणाली पर हावी है। यह विषय को पूर्ण प्रवीणता के साथ सीखने की अवधारणा को छिन्न-भिन्न कर देता है क्योंकि इससे पाठ्यविषयों के सीमित अथवा चयनित अंशों के ही पठन-पाठन और सीखने की प्रवृत्ति बन जाती है। वर्तमान परीक्षा प्रणाली अमानवीय कठोरता से भी ग्रस्त है और इसमें लचीलेपन की गुंजाइश नहीं रह जाती। अगर शिक्षार्थी-केंद्रित शिक्षा प्रणाली को व्यवस्था-केंद्रित परीक्षा प्रणाली के साथ रख दिया गया तो यह विडंबना ही होगी।

वर्तमान परीक्षा प्रणाली का एक दोष यह भी है कि इसमें प्रत्येक क्षेत्र में बढ़ती हुई प्रतियोगिता के कारण समाज ने परीक्षा-परिणामों को अनावश्यक महत्त्व दे रखा है। इससे छात्रों के दिमाग में इस कदर मनोवैज्ञानिक डर और तनाव पैदा हो जाते हैं कि अनेक प्रकार की

बुराइयाँ परीक्षाओं में व्याप्त हो जाती हैं और असफल होने का भय इस सीमा तक चला जाता है कि कई बार छात्र आत्महत्या तक कर लेते हैं।

4.2 मूल्यांकन का उपयोग

संज्ञानात्मक और सह-संज्ञानात्मक दोनों ही क्षमताओं के विकास के लिए विद्यालयों में मूल्यांकन का लाभदायक तरीकों से प्रयोग होना चाहिए। इसके लिए मूल्यांकन के विकासात्मक और समग्र दोनों रूप आवश्यक हो जाते हैं। जहाँ शिक्षण के दौरान छात्रों के सीखने की प्रक्रिया को बेहतर बनाने के लिए विकासात्मक मूल्यांकन का प्रयोग किया जाता है वहीं विकासात्मक (फार्मेटिव) मूल्यांकन किया जाता है और शैक्षणिक सत्र के अंत में छात्र को अगली कक्षा में पहुँचाने के लिए समग्र मूल्यांकन का प्रयोग किया जाता है। विकासात्मक मूल्यांकन का मुख्य उद्देश्य शिक्षण-प्रक्रिया का मॉनिटरिंग करने के लिए होता है जिससे यह निश्चित होता है कि योजनानुसार शिक्षण हो रहा है या नहीं। इससे विकासात्मक मूल्यांकन के परिणाम दोनों ही प्रकार के छात्रों (कुशाग्र और मंद) के लिए उपयोगी होते हैं। इनसे धीमी गति से सीखने वाले छात्रों के लिए उपचारात्मक उपाय लागू किए जा सकते हैं और कुशाग्र छात्रों का विशेष ज्ञान-संवर्धन किया जा सकता है। दूसरी ओर समग्र मूल्यांकन यह तय करता है कि योग्यता के आधार पर छात्रों का वर्गीकरण कर उन्हें किस जगह रखा जाए और उनकी भावी सफलता तथा अगली कक्षा में प्रोन्नति के बारे में पहले से ही अवगत करा देता है।

विकासात्मक और समग्र मूल्यांकन से संगृहीत साक्ष्यों का विश्लेषण और व्याख्या तीन प्रकार से की जा सकती है—पहला, छात्रों की प्रगति का स्वयं उनके ही संदर्भ में आकलन (स्वयं संदर्भित), दूसरा, शिक्षक द्वारा निर्धारित कसौटियों के संदर्भ में आकलन (कसौटी संदर्भित) और तीसरा, साथी समूहों द्वारा की गई प्रगति के संदर्भ में आकलन (मानदंड संदर्भित)।

मूल्यांकन द्वारा छात्रों के सर्वांगीण विकास को सुगम बनाया जाना है, इसलिए पहली कक्षा से बारहवीं कक्षा तक छात्रों के विकासात्मक और समग्र दोनों ही प्रकार के मूल्यांकनों के लिए विद्यालय आधारित छात्र मूल्यांकन प्रणाली वांछनीय है। इस दृष्टि से पूर्व-प्राथमिक स्तर पर मूल्यांकन पूर्ण रूप से विकासात्मक होना चाहिए और केवल दसवीं और बारहवीं कक्षा के अंत में बोर्डों द्वारा अंतिम परीक्षाएँ ली जानी चाहिए जो यथासंभव शैक्षणिक विषयों से ही संबंधित हों। विद्यालय आधारित मूल्यांकन (जो कि सतत और व्यापक मूल्यांकन के रूप में होगा) के अंतर्गत शैक्षिक विषय-क्षेत्र तो रहेंगे ही, उनमें छात्रों के समग्र विकास के सह-शैक्षिक क्षेत्र भी शामिल होंगे। दसवीं और बारहवीं कक्षाओं में सह-शैक्षिक क्षेत्रों में छात्रों के कार्य का आकलन विद्यालयों द्वारा किया जाएगा और विद्यालय इस आकलन को बोर्ड को शैक्षिक विषयों की अंक सूची या ग्रेड-कार्ड में इसे सम्मिलित करने के लिए भेजेंगे।

4.3 मूल्यांकन की विशेषताएँ

- मूल्यांकन की प्रकृति मानवीय होगी। यह मूल्यांकन छात्रों को सामाजिक इकाई के रूप में विकसित होने में सहायक होगा और उन्हें अनावश्यक पीड़ा, चिंता, परेशानी और अपमान से बचाएगा,
- मूल्यांकन उन्हीं शिक्षकों की ज़िम्मेदारी होगी जो छात्रों को पढ़ाते हैं और जो उनमें आवश्यक स्वस्थ गुणों और मनोवृत्तियों के विकास के लिए भी उत्तरदायी होते हैं,
- मूल्यांकन अपने उद्देश्य के प्रति हमेशा एक-समान और सुसंगत होगा और छात्रों की योग्यता का विश्वसनीय एवं वैध मापन उपलब्ध कराएगा,
- मूल्यांकन प्रत्येक अधिगम-प्रयास के परिणाम को भी बिंबित करेगा और सभी छात्रों को अपनी व्यक्तिगत योग्यता प्रकट करने के समान अवसर देगा। इस प्रकार मूल्यांकन विविधतायुक्त और निर्बाध होगा और मापन की बहुविध तकनीकों का उपयोग करेगा,
- मूल्यांकन अध्ययन-अध्यापन की प्रक्रिया में ही निहित होगा और शिक्षा की संपूर्ण अवधि तक जारी रहेगा,
- मूल्यांकन छात्रों की पृष्ठभूमि और पूर्व-अनुभवों पर भी विचार करेगा,
- विशिष्ट आवश्यकता वाले छात्रों के लिए वैकल्पिक मूल्यांकन-प्रक्रिया अपनानी होगी और मूल्यांकन को मानवीय, छात्र-मित्रवत और लचीला बनाना होगा,
- ग्रेडिंग या श्रेणीकरण की प्रक्रिया और उसे प्रस्तुत करने का तरीका उपयुक्त और सभी के लिए समझने में सरल होगा,
- मूल्यांकन प्रक्रिया में पारदर्शिता सुनिश्चित करते हुए इसे आम आदमी के लिए भी विश्वसनीय और आस्थापूर्ण बनाएगा,
- आधुनिक प्रौद्योगिकी केवल मूल्यांकन प्रणाली के प्रबंधन में सुधार के लिए ही नहीं बल्कि कंप्यूटर नेटवर्क के माध्यम से छात्रों के परीक्षण में भी प्रयुक्त होगी।

4.4 विभिन्न स्तरों पर मूल्यांकन

4.4.1 शिशु शिक्षा

पूर्व प्राथमिक स्तर पर बच्चे आनंददायी क्रियाकलापों के माध्यम से सीखते हैं। इसलिए इस

स्तर पर तो कोई औपचारिक मूल्यांकन होना ही नहीं चाहिए। यहाँ तक कि उपचारात्मक उपाय भी सीखने की प्रक्रिया के अंग इस प्रकार हों कि बच्चों को उनका पता ही न चले।

4.4.2 प्राथमिक स्तर

बच्चे इस स्तर पर विकासात्मक स्थिति में होते हैं, इसलिए उनके सीखने की गति और व्यक्तित्व का विकास बड़ी तेज़ी से होता है। इसलिए इस स्तर पर मूल्यांकन विकासात्मक होगा और उसका निरंतरता और व्यापकता पर पर्याप्त ज़ोर रहेगा। पहली और दूसरी कक्षा में बच्चों का मूल्यांकन कक्षा में बच्चों की गतिविधियों में भागीदारी के अवलोकन के आधार पर होगा। यहाँ तक कि बच्चों को यह भी पता नहीं चलना चाहिए कि उनका मूल्यांकन कब हो रहा है।

तीसरी से पाँचवीं कक्षा तक मूल्यांकन में मामूली बदलाव होगा और यहाँ आकर मूल्यांकन थोड़ा औपचारिक होगा। कभी-कभी बच्चों को यह मालूम हो जाएगा कि उनकी जाँच कब हो रही है। यद्यपि अवलोकन और मौखिक तकनीकें जारी रहेंगी किंतु लिखित परीक्षण (पेपर-पेंसिल टेस्ट) भी मूल्यांकन का हिस्सा होगा।

इस स्तर पर निदानात्मक परीक्षणों पर ज़ोर रहेगा जिनसे कठिन शिक्षण-स्थलों की पहचान करके उपचारात्मक उपायों का संयोजन किया जाएगा। क्षमताएँ अर्जित करने और विषय पर अधिकार के स्तर को जाँचने के लिए कसौटी-आधारित टेस्ट समय-समय पर लिए जाएँगे। सह-शैक्षिक गुणों का मूल्यांकन, अवलोकन और रेटिंग-स्केल का उपयोग करते हुए ज़ारी रहेगा और प्रति तीन माह में एक बार मूल्यांकन-रपट दी जाएगी। छात्रों की व्यक्तिगत फ़ाइलें (पोर्टफोलियो) बड़ी सावधानी और स्पष्टता के साथ रखी जाएँगी जिनमें छात्रों का संचयी अभिलेख लिखा होगा और उनकी शैक्षिक एवं सह-शैक्षिक दोनों ही क्षेत्रों में अर्जित उपलब्धियाँ दर्ज़ होंगी।

शैक्षिक क्षेत्रों के संदर्भ में छात्रों की योग्यता का तीन बिंदु वाली निरपेक्ष ग्रेडिंग के आधार पर मूल्यांकन होगा और सह-शैक्षिक क्षेत्र में गुणों के आधार पर तीन बिंदु वाली प्रत्यक्ष ग्रेडिंग दी जाएगी।

4.4.3 उच्च प्राथमिक स्तर

इस स्तर पर छात्रों की बढ़ती उम्र और परिपक्वता स्तर को देखते हुए मूल्यांकन में कुछ परिवर्तन करने होंगे। मौखिक और लिखित जाँच के अतिरिक्त दत्त कार्य और प्रोजेक्ट कार्य का भी मूल्यांकन के लिए उपयोग किया जाएगा। कमज़ोर छात्रों के निदानात्मक और उपचारात्मक

तथा कुशाग्र छात्रों के लिए ज्ञान संवर्धन की दृष्टि से विशेष ध्यान देकर सतत और व्यापक मूल्यांकन जारी रखे जाएँगे। विभिन्न पाठ्यचर्या क्षेत्रों में प्रवीणता स्तर (मास्टरी स्तर) तक की क्षमताओं को सुनिश्चित करने के लिए समय-समय पर कसौटी-संदर्भित टेस्ट लिए जाएँगे। सह-शैक्षिक गुणों का मूल्यांकन लगातार अवलोकन, ग्रेडिंग-स्केल एवं चेकलिस्ट के ज़रिए जारी रहेगा और हर तीन माह में उसकी रिपोर्ट दी जाएगी। स्व-मूल्यांकन और छात्र-साथियों द्वारा मूल्यांकन भी इस स्तर पर मूल्यांकन प्रक्रिया का हिस्सा रहेंगे।

इस स्तर पर पाँच बिंदु वाली निरपेक्ष ग्रेडिंग का तरीका अपनाया जाएगा जो शैक्षिक विषय क्षेत्रों में छात्रों की उपलब्धि का स्तर इंगित करेगा और सह-शैक्षिक क्षेत्र में तीन बिंदु वाली प्रत्यक्ष ग्रेडिंग प्रणाली अपनाई जाएगी।

4.4.4 माध्यमिक स्तर

इस स्तर की एक विशेषता यह है कि कोई छात्र पास या फेल घोषित नहीं किया जाएगा। कोर्स को चार सेमेस्टरों के अनुसार मॉड्यूल के रूप में तैयार किया जाएगा। मूल्यांकन मुख्य रूप से स्कूल-आधारित होगा जिसमें सतत और व्यापक मूल्यांकन प्रणाली का उपयोग होगा और विशेष ज़ोर प्रवीणता (मास्टरी) सुनिश्चित करने के लिए निदानात्मक एवं उपचारात्मक जाँच पर होगा। छात्रों की उपलब्धियों का विभिन्न विषय-क्षेत्रों में कसौटी-संदर्भित टेस्ट का उपयोग करते हुए समय-समय पर आकलन किया जाएगा। छात्रों की निष्पादन योग्यता का नौ बिंदु वाली निरपेक्ष ग्रेडिंग प्रणाली से आकलन किया जाएगा। सह-शैक्षिक क्षेत्र के गुणों का आकलन, अवलोकन, चेकलिस्ट और रेटिंग स्केल के द्वारा पाँच बिंदु वाली प्रत्यक्ष ग्रेडिंग प्रणाली के आधार पर किया जाएगा। संचयी अभिलेख पत्र प्रत्येक छात्र के लिए रखा जाएगा जिसमें विभिन्न जाँचों और रेटिंग स्केल आदि के माध्यम से योग्यताओं का आकलन दर्ज़ किया जाएगा। छात्रों की व्यक्तिगत फ़ाइलें रखी जाएँगी जिनमें स्व-मूल्यांकन और साथी-छात्रों द्वारा किया गया मूल्यांकन रखा जाएगा जो उनके संचयी अभिलेख पत्र के अतिरिक्त होगा।

4.4.5 उच्चतर माध्यमिक स्तर

इस स्तर पर छात्रों को स्नातक स्तर के लिए ही नहीं, बल्कि जीवन के लिए तैयार करने की दृष्टि से मूल्यांकन-प्रक्रिया को उच्चस्तरीय बनाना होगा।

कोर्स को चार सेमेस्टरों में संयोजित किया जाएगा और वह क्रेडिट-प्रणाली पर आधारित होगा। प्रथम तीन सेमेस्टरों की परीक्षा की ज़िम्मेदारी विद्यालय की होगी जबकि चौथे सेमेस्टर की परीक्षा बोर्ड द्वारा ली जाएगी। इस प्रकार से तैयार की गई प्रणाली में लचीलापन होगा

और वह छात्रों को अपनी ही गति से क्रेडिट अर्जित करने के योग्य बनाएगी। ट्यूटोरियल भी इसी स्तर पर लागू किए जाएँगे और अंतिम मूल्यांकन योजना में उन्हें समुचित स्थान दिया जाएगा। कसौटी संदर्भित टेस्ट के माध्यम से प्रवीणता स्तर की जाँच पर ध्यान देना विद्यालय जारी रखेंगे जबकि बोर्ड मानदंड-संदर्भित टेस्टिंग पर ध्यान देगा। विद्यालय आधारित परीक्षाओं में छात्रों की निष्पादन योग्यता का अनुस्तरण नौ बिंदु वाले स्केल पर निरपेक्ष ग्रेडिंग प्रणाली का उपयोग करके और अंकों को सीधे-सीधे ग्रेडों में तब्दील करते हुए किया जाएगा। इस प्रकार नौ बिंदु वाली ग्रेडिंग का प्रयोग बोर्ड इस उद्देश्य से करेंगे कि इसके आधार पर वह सार्वजनिक परीक्षाओं में छात्रों का वर्गीकरण कर सकें। सह-शैक्षिक क्षेत्र में विद्यालय पाँच बिंदु वाली प्रत्यक्ष ग्रेडिंग प्रणाली लागू करेगा जिसका सेमेस्टरवार रेकार्ड रखा जाएगा। शैक्षिक विषय संबंधी और सह-शैक्षिक विषय संबंधी क्षेत्रों में तीसरे सेमेस्टर के ग्रेड्स और चौथे सेमेस्टर के केवल सह-शैक्षिक ग्रेड्स विद्यालय द्वारा बोर्ड को भेजे जाएँगे ताकि बोर्ड उसे अंकसूची में दर्शा सके। इस प्रणाली में जो छात्र अपना ग्रेड सुधारने की इच्छा रखेंगे उन्हें अवसर प्रदान किए जाएँगे।

4.5 स्तर संपोषण

विद्यालय शिक्षा के प्रत्येक स्तर के अंत में भाषा, गणित, विज्ञान और सामाजिक विज्ञानों के प्रत्येक विषय में उपलब्धि सर्वेक्षणों के ज़रिए विद्यालय आधारित मूल्यांकन प्रणाली को और अधिक सुदृढ़ करना होगा। इस प्रकार विद्यालयी व्यवस्था की सुचारुता पर लगातार निगाह रखी जा सकेगी। ऐसे सर्वेक्षण मानक-उपलब्धि परीक्षणों के माध्यम से संचालित होंगे। ऐसे सर्वेक्षणों के परिणाम केवल संस्थागत, क्षेत्रीय, राज्यस्तरीय और राष्ट्रीय परिचय-वृत्तों (प्रोफ़ाइल्स) के विकास के लिए ही नहीं बल्कि योजना बनाने और स्तर को ऊँचा उठाने हेतु उपयुक्त तरीकों को विकसित करने के लिए भी प्रयुक्त किए जाएँगे।

4.6 वर्तमान प्रस्ताव

सतत और व्यापक मूल्यांकन, उत्तीर्ण-अनुत्तीर्ण की समाप्ति, बाह्य परीक्षाओं के प्रभावों को दूर करना, माध्यमिक स्तर पर सेमेस्टर प्रणाली का क्रियान्वयन और अंकों के बजाए ग्रेड प्रणाली लागू करना जैसे सरोकारों को लेकर पहले भी वर्ष 1975 और 1988 में निर्मित पाठ्यचर्या रूपरेखा के दस्तावेज़ों में विचार किया गया था। 1988 के दस्तावेज़ में समग्र मूल्यांकन की बजाए विकासात्मक मूल्यांकन का सुझाव दिया गया था। उसमें विद्यालयी शिक्षा के हर स्तर पर न्यूनतम अधिगम स्तरों को परिभाषित करने पर ज़ोर दिया गया था और परीक्षा प्रबंधन के सुधार पर बल देते हुए राष्ट्रीय टेस्टिंग सेवाओं की स्थापना का सुझाव

भी दिया गया था। इसके तुरंत बाद कार्य योजना (पी.ओ.ए.) 1992 में राष्ट्रीय परीक्षा सुधार रूपरेखा तैयार करने पर ज़ोर देते हुए 'राष्ट्रीय मूल्यांकन संगठन' स्थापित करने का सुझाव दिया गया था।

क्षेत्रों में जाकर प्राप्त किए गए अनुभवों से यह स्पष्ट हुआ है कि इन सुधारों को देश में लागू करने के प्रयास अभी भी बाकी हैं। कुछ छिटपुट प्रयत्न इस दिशा में कुछ ही विशेष संस्थाओं ने किए हैं और यही वज़ह है कि परिणाम कतई संतोषप्रद नहीं हैं।

विद्यालयों में मूल्यांकन का प्रस्तुत प्रस्ताव इन सुधारों को लागू करने की बात पुनः दोहराता है। फिर भी यह प्रस्ताव पहले के प्रस्तावों से कई दृष्टियों से भिन्न है क्योंकि यह प्रस्ताव :

- शैक्षिक विषयों और सह-शैक्षिक विषयों को शामिल करते हुए विकासात्मक और समग्र दोनों ही प्रकार के मूल्यांकनों पर ज़ोर देता है,
- छात्रों की तुलनीय योग्यता के महत्त्व को स्वयं विद्यार्थी के संदर्भ में, शिक्षक द्वारा निर्धारित कसौटी के संदर्भ में और अपने ही साथी विद्यार्थियों के बीच योग्यता के मूल्यांकन के संदर्भ में रेखांकित करता है,
- पूर्व प्राथमिक स्तर से लेकर उच्चतर माध्यमिक स्तर तक की विद्यालयी शिक्षा के प्रत्येक स्तर की मूल्यांकन प्रक्रिया को विस्तारपूर्वक प्रस्तुत करता है,
- विषय पर प्रवीणता प्राप्त कराने वाली शिक्षण पद्धति पर कमज़ोर छात्रों के लिए निदानात्मक और उपचारात्मक शिक्षण और कुशाग्र छात्रों के ज्ञान-संवर्धन के लिए शिक्षण युक्तियों के प्रयोग पर ज़ोर देता है,
- शैक्षिक विषयों और सह-शैक्षिक विषयों के ग्रेडिंग के लिए विभिन्न पद्धतियों की सिफ़ारिश करता है और साथ ही विद्यालय आधारित और सार्वजनिक परीक्षाओं के संबंध में भी सुझाव देता है,
- विद्यालयी शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिए विभिन्न पाइंटों में ग्रेड प्रणाली के प्रयोग का प्रतिपादन करता है,
- रेकार्ड रखने और रिपोर्ट करने के लिए छात्र-फ़ाइलें बनाने को प्रोत्साहित करता है,
- सतत और व्यापक मूल्यांकन के लिए स्व-मूल्यांकन और साथियों द्वारा मूल्यांकन दोनों का आलोच्य तत्वों के रूप में इस्तेमाल करने का आग्रह करता है,

- उच्चतर माध्यमिक स्तर पर ट्यूटोरियल्स प्रणाली लागू करने का पक्ष लेता है,
- माध्यमिक स्तर पर सेमेस्टर प्रणाली और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर क्रेडिट सहित सेमेस्टर प्रणाली लागू करना प्रस्तावित करता है,
- विशेष आवश्यकताओं वाले छात्रों के लिए वैकल्पिक मूल्यांकन प्रक्रिया अपनाने को महत्त्वपूर्ण मानता है,
- विद्यालयी शिक्षा के प्रत्येक सावधिक स्तर पर विभिन्न विषय-क्षेत्रों में समयबद्ध उपलब्धि-सर्वेक्षण कराने के संबंध में तर्क देता है, और
- मूल्यांकन में आधुनिक प्रौद्योगिकी के प्रयोग का पक्षधर है।

4.7 राष्ट्रीय मूल्यांकन संगठन

इस देश में माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के लिए चौंतीस बोर्ड हैं जो दस वर्षीय और बारह वर्षीय शिक्षा पूर्ण कर लेने पर सार्वजनिक परीक्षाओं का संचालन करते हैं। परीक्षाओं के स्तर के संबंध में इन शिक्षा-मंडलों में बड़े पैमाने पर भिन्नता है। ऐसा कोई राष्ट्रीय या समान संप्राप्ति मानक उपलब्ध नहीं है जिससे विभिन्न बोर्डों द्वारा संचालित परीक्षाओं के स्तर की समानता को जाँचा जा सके। इसके अतिरिक्त इन परीक्षाओं के द्वारा जो कुछ भी जाँचा जा रहा है, ज़रूरी नहीं कि वह सब सामान्य जीवन या कार्यजगत के लिए प्रासंगिक हो। इस कारण विभिन्न व्यावसायिक संस्थाओं द्वारा कई क्षेत्रों में ढेरों प्रवेश टेस्ट लिए जा रहे हैं, जैसे–चिकित्सा, इंजीनियरिंग, मैनेजमेंट आदि। इससे छात्रों और उनके माता-पिता दोनों के ही दिमागों में अनावश्यक भारी तनाव पैदा होता है और अन्य अनेक समस्याएँ भी पैदा हो जाती हैं, जैसे–बुरे या अवांछित साधनों का उपयोग और फ़िजूल का खर्च।

परीक्षाओं से जुड़ी इन समस्याओं से पार पाने के लिए एक राष्ट्रीय स्तर की संस्था स्थापित करने की त्वरित आवश्यकता है जो परीक्षाओं का एक समान स्तर सुनिश्चित करेगी और मूल्यांकन के राष्ट्रीय मानकों का विकास करेगी जिनके आधार पर विभिन्न राज्यों के छात्रों की योग्यताओं की तुलना की जा सकेगी। चिकित्सा और इंजीनियरिंग के क्षेत्रों में ऐसे प्रयास शुरू किए जा चुके हैं। उन्हीं मानदंडों के आधार पर सामान्य शैक्षिक पाठ्यक्रमों के लिए भी एक 'राष्ट्रीय मूल्यांकन संगठन' की स्थापना की जा सकती है। इससे प्रत्येक राज्य की वास्तविक शैक्षिक छवि की बृहत् स्तर (मेक्रोलेवल) पर और प्रत्येक संस्था की छवि को सूक्ष्म स्तर (माइक्रोलेवल) पर प्रस्तुत करने में मदद मिलेगी। आगे चलकर यह संस्था पाठ्यवस्तु, शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया और छात्रों के योग्यता निष्पादन में सुधार करेगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) और *कार्य योजना* (1992) में संकल्पना की गई थी कि "स्वैच्छिक आधार पर राष्ट्रव्यापी टेस्ट के लिए एक 'राष्ट्रीय मूल्यांकन संगठन' का गठन किया जाएगा ताकि विद्यार्थियों के योग्यता-निष्पादन की तुलनीयता के मानदंड विकसित किए जा सकें। यह संगठन गुणवत्ता नियंत्रक व्यवस्था के रूप में काम करेगा और स्वतंत्र टेस्टों का संचालन भी करेगा।" मोटे तौर पर विचार यह था कि यह संगठन एक लाभ कमाने वाली संस्था नहीं होगा और यह अनेक प्रकार के कामों को अंजाम देगा। ये कार्य विकासात्मक गतिविधियों से लेकर संबंधित विषय-क्षेत्रों में शोध करवाने तक फैले होंगे और इनका छात्रों के मूल्यांकन पर सीधा असर पड़ेगा।

5

व्यवस्था का प्रबंधन

किसी भी देश की शिक्षा नीति के क्रियान्वयन के लिए पाठ्यचर्या रूपरेखा से शिक्षा-व्यवस्था को आगे बढ़ाने की दिशा मिलती है। शैक्षिक परिदृश्य पर इस रूपरेखा का प्रभाव निम्नलिखित तत्वों पर निर्भर करता है :

- रूपरेखा की गतिशील प्रकृति जो बड़े पैमाने पर विभिन्न प्रकार की संस्कृतियों के संदर्भ में क्रियाशील होती है,
- दृढ़ राजनीतिक इच्छाशक्ति और अंतर्दृष्टि,
- प्रतिबद्ध प्रबंधन सहयोग, और
- शिक्षकों में रूपरेखा में उल्लिखित ज्ञान और भावना के प्रति व्यापक समझ।

पाठ्यचर्या नवीनीकरण का कार्य बहुविध कार्यनीतियों को अपनाकर और विभिन्न अभिकरणों (एजेंसियों) को शामिल करके करना होगा। प्रस्तावित पाठ्यचर्या के क्रियान्वयन के लिए जो मुख्य तत्व होंगे, वे निम्नलिखित हैं :

- पूरे देश की शिक्षा प्रणाली में और विशेषकर +2 स्तर अर्थात् उच्चतर माध्यमिक स्तर पर एक समान शैक्षिक संरचना यानी 10+2+3 की विद्यालयी प्रणाली को लागू करना,
- दो वर्षीय पूर्व विद्यालयी शिक्षा कार्यक्रम को स्कूल रेडीनेस (स्कूल के लिए तैयारी) कार्यक्रम के रूप में प्राथमिक शिक्षा के अभिन्न अंग की तरह पूरे देश में मान्य कराना और लागू करना,
- पाठ्यपुस्तकों और मल्टीमीडिया-सामग्री सहित शिक्षण संवेष्टनों (पैकेज) का निर्माण और उनका शिक्षा में समावेश करना,
- शिक्षकों की अपने विषयों और शिक्षण पद्धतियों में अच्छी बुनियाद तैयार करना और प्रबोधन के लिए प्रभावशाली कार्यनीति अपनाना,

- शैक्षिक सरोकारों, नवीन शिक्षण पैकेजों और पाठ्यचर्या संचालन के लिए प्रस्तावित कार्यनीतियों में शैक्षिक कार्यकर्ताओं और जन-समुदाय का प्रबोधन करना,
- प्रबंधन और तकनीकी सहयोग व्यवस्था को सुदृढ़ करना और सभी स्तरों पर शैक्षिक क्रियाकलापों के लिए व्यावसायिक क्षमताएँ विकसित करना, और
- सभी स्तरों पर शैक्षिक प्रबंधन के माध्यम से पाठ्यचर्या लागू करने के लिए निरंतर मॉनिटरिंग और सुधारात्मक, उपचारात्मक एवं ज्ञानवर्धन करने वाले उपायों को अपनाना।

पाठ्यचर्या नवीनीकरण की सतत चलने वाली प्रक्रिया की सफलता के लिए जो मुख्य कदम उठाने होंगे उनका वर्णन इस अध्याय में किया गया है।

5.1 पाठ्यचर्या विकास के लिए व्यवसायगत सहयोग

पिछले कुछ दशकों में राष्ट्रीय और राज्यस्तरीय शैक्षिक अधिकारियों ने कई कदम उठाए हैं जिससे पाठ्यचर्या विकास की प्रक्रिया निरंतरता के आधार पर अपनाई जाए। इस निरंतरता की प्रक्रिया के लिए अनेक राष्ट्रीय, राज्यस्तरीय और ज़िलास्तरीय संगठनों और राज्य शिक्षा मंडलों की स्थापना भी की गई। लगभग सभी राज्यों में लेखकों को बुलाकर पाठ्यपुस्तक लिखवाने, छपवाने और उनका वितरण करने के लिए पाठ्यपुस्तक मंडलों की भी स्थापना की गई थी। अब यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि समन्वित और विकेंद्रित पाठ्यचर्याएँ, पाठ्यक्रम, प्रायोगिक परीक्षण सामग्री का निर्माण राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की मूल रूपरेखा के अनुसार किया जाए और उसमें विभिन्न क्षेत्रों के लोगों की स्थानीय आवश्यकताओं और आकांक्षाओं का समावेश हो। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी.), राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषदें (एस.सी.ई.आर.टी.) और महत्त्वपूर्ण गैर-सरकारी संगठन भी इस कार्य में आवश्यक सेवाएँ प्रदान करेंगे। इस तरह शिक्षकों का पाठ्यचर्या निर्माताओं के रूप में सबलीकरण आवश्यक होगा।

5.1.1 नवाचारात्मक शिक्षण पैकेज तैयार करना

विभिन्न विषय क्षेत्रों में पाठ्यचर्या-निर्माण संबंधी विस्तृत मार्गदर्शक सिद्धांत और मॉडल-पाठ्यक्रम तैयार करने होंगे। इनमें प्रत्येक विषय-क्षेत्र की विषयवस्तु का विवरण, स्तर और गहराई तथा इसका प्रत्येक कक्षा के लिए निरूपण जैसे तत्वों का समावेश करना होगा। यह भी ध्यान रखना होगा कि ये सब तत्व छात्रों द्वारा अधिगम प्रतिफल उपलब्ध कराने की दृष्टि से पाठ्यचर्या में रखे जा रहे हैं। अध्ययन योजना में शैक्षिक-विषय संबंधी (स्कॉलेस्टिक) और सह-शैक्षिक विषय संबंधी क्षेत्रों का एकसमान महत्त्व सुनिश्चित करना होगा। यह कार्य

पाठ्यचर्या आधारित सामग्री के पैकेजों को विकसित करके, उनका निर्माण और प्रकाशन करके और इसे कक्षाओं में लागू करके पूरा करना होगा।

पाठ्यचर्या-क्रियान्वयन में किसी भी प्रकार के महत्त्वपूर्ण सुधार के लिए समस्त अध्ययन-अध्यापन, प्रशिक्षण और प्रबोधन सामग्री के नियोजन, लेखन, उत्पादन और वितरण हेतु दृष्टिकोण और प्रक्रिया में परिवर्तन करना होगा। दक्षता आधारित और प्रक्रिया-उन्मुखी शिक्षण सामग्री, औपचारिक और वैकल्पिक दोनों ही शिक्षा प्रणालियों में आनंददायी स्व-अधिगम और आत्म-निर्देशित अधिगम-अनुभवों की सुविधा की दृष्टि से तैयार करनी होगी। एक समग्र मॉड्यूलर पैकेज बनाया जाए जिसमें पाठ्यपुस्तकें, अभ्यास पुस्तिकाएँ, शिक्षकों के लिए हैंडबुक और मल्टीमीडिया की सामग्री निहित हो। विद्यालयी शिक्षा के सभी स्तरों पर यह सामग्री समकालीन सरोकारों, दृष्टिकोण और चिंतन को संबोधित होनी चाहिए।

वर्तमान परिदृश्य में यह भी ज़रूरी हो गया है कि माता-पिता, सामान्य समुदाय और शिक्षा के प्रबंधकों के लिए केप्सूल के रूप में सामग्री तैयार कर वितरित की जाए क्योंकि ये लोग भी प्रभावी पाठ्यचर्या और इसके क्रियान्वयन के लिए शक्तिशाली एजेंट या अभिकर्ता हैं। उनके समक्ष महत्त्वपूर्ण विचारों को आसानी से समझ में आने योग्य तरीके से प्रस्तुत करना होगा। इससे शिक्षा के ज़रिए सामाजिक पुनर्जीवन सुनिश्चित होगा।

केंद्रिक घटकों (कोर कंपोनेंट्स) और मूल्य शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षण और क्रियाकलाप युक्त मॉड्यूलर शिक्षण पैकेजों को राज्यों/केंद्रशासित राज्यों के लिए हू-ब-हू वैसे ही ले लेने, अनुकूलन कर लेने या अनुवाद करके लेने की दृष्टि से सभी राष्ट्रीय भाषाओं में तैयार कराके लागू किए जाएँ। इसके अतिरिक्त केंद्रिक घटकों और मूल्यों से संबद्ध विषयों पर भी श्रव्य-दृश्य कार्यक्रम तैयार करके वितरित किए जाएँ।

5.1.2 संसाधन के रूप में पर्यावरण और समुदाय

ग्रामीण और शहरी दोनों ही पर्यावरण और समुदाय पाठ्यचर्या-निर्माण के महत्त्वपूर्ण संसाधन हैं। ग्रामीण-पर्यावरण की विराटता और उसका शांत खुलापन जिसमें खेल, जंगल, तालाब, नदी, पेड़, फलों के बगीचे, पक्षी और पशु आदि सब समाहित हैं, पाठ्यचर्या निर्माण के लिए मुख्य घटक हैं। इसी प्रकार व्यस्त व्यापार केंद्र, औद्योगिक परिसर, साफ़-सुथरे आवास-समूह तो पाठ्यचर्या निर्माण के तत्व के रूप में उपलब्ध होते ही हैं, साथ ही जो बस्तियाँ अधिक स्वच्छ और स्वस्थ नहीं मानी जातीं और जिन्हें गंदी बस्तियाँ कहा जाता है, वहाँ से भी पाठ्यचर्या-निर्माण के अनेक तत्व मिलते हैं। क्रियाविधि, शिक्षण-सामग्री और शिक्षण व्यवस्था में लचीलापन आवश्यक है। शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण और समुन्नयन की सामग्री, जो

स्थानीय शैक्षिक संस्थाओं द्वारा या अधिकारियों द्वारा बनाई जाती है, वह भी पाठ्यचर्या में पर्यावरणीय संसाधनों से प्राप्त एक आवश्यक और समृद्ध इनपुट या निवेश के रूप में आसानी से उपलब्ध कराई जा सकती है। समुदाय भी विद्यालयों और वैकल्पिक शिक्षा केंद्रों को कुछ भौतिक सुविधाएँ स्वैच्छिक योगदान के माध्यम से दे सकता है और साथ ही विशेष कौशलों, योग्यताओं और रुचियों वाले व्यक्तियों की सेवाएँ भी उपलब्ध करवा सकता है।

5.1.3 शोध आधार का सुदृढ़ीकरण

शैक्षिक शोध के लिए उपलब्ध बुनियादी संरचना और पाठ्यचर्या-निर्माण एवं सामग्री-निर्माण के बीच की कड़ियों को मज़बूत करना अत्यंत आवश्यक है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषदें एवं अन्य समान संस्थाओं और विश्वविद्यालयों के शिक्षा विभागों को चाहिए कि वे शैक्षिक शोध करने और उसे निरंतर जारी रखने को प्रोत्साहित करें और उनके शोध-निष्कर्ष नियमित रूप से पाठ्यचर्या निर्माण केंद्रों को सुदृढ़ बनाने के लिए उपलब्ध कराते रहें। इसके अतिरिक्त जो गैर-सरकारी संगठन विभिन्न प्रकार के शैक्षिक प्रोजेक्टों में लगे हुए हैं वे भी पाठ्यचर्या और पाठ्यसामग्री के निर्माण के लिए अपने अनुभव और शोध-निष्कर्ष उपलब्ध कराएँ। अंतिम रूप से क्षेत्र में काम करने वाले अध्यापक संपूर्ण पाठ्यचर्या विकास प्रक्रिया में अपने अनुभवों, अवलोकनों और शोध निष्कर्षों के आधार पर योगदान दे सकते हैं।

5.1.4 संस्थागत आकलन

संस्थाओं की व्यवसायगत कुशलता के आकलन की प्रणाली प्रभावी पाठ्यचर्या कार्यान्वयन और देश के शैक्षिक परिदृश्य में संपूर्ण सुधार को लंबी अवधि तक जारी रख सकती है। संस्थाओं पर उनके कार्य-निष्पादन के आधार पर सावधानीपूर्वक लागू की जा सकने वाली श्रेणीकरण (ग्रेड देने) की प्रणाली के लिए सकारात्मक रूप से संस्थाओं के बीच भेद करने की क्षमता का निर्माण कुछ हद तक एक समान शैक्षिक स्तर की स्थापना से सुनिश्चित किया जा सकेगा। राज्यों को भी इस प्रकार से संस्थाओं के श्रेणीकरण के लिए उपयुक्त कसौटियों और प्रणालियों का विकास करना होगा।

5.2 अध्यापक शिक्षा प्रणाली के लिए व्यावसायिक सहयोग

पाठ्यचर्या के निर्माण और क्रियान्वयन में शिक्षकों की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इसलिए विद्यालयी पाठ्यचर्या में निरंतर होने वाले सभी परिवर्तन अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों तक आवश्यक रूप से छन कर जाने चाहिए। यह सुनिश्चित करने के लिए प्रमुख कारकों का यहाँ वर्णन किया जा रहा है।

5.2.1 अध्यापकों को तैयार करने वाले कार्यक्रम

अध्यापक तैयार करने वाली 'सेवापूर्व शिक्षकों की पाठ्यचर्या' यद्यपि हाल ही में पुनरीक्षित और संशोधित की गई है, इसके बावजूद पाठ्यचर्या का पुनः परीक्षण आवश्यक है और नए सरोकारों और मुद्दों को उसमें शामिल करना होगा। इससे आगे चलकर सेवाकालीन प्रशिक्षणों पर पड़ने वाले दबाव कम होंगे। सेवा-पूर्व और सेवाकालीन शिक्षा दोनों एक दूसरे से पृथक नहीं हो सकतीं और दोनों के बीच निरंतरता को जारी रखना होगा। सेवा-पूर्व शिक्षक तैयार करने के कार्यक्रमों में विभिन्न विद्यालयी विषय-क्षेत्रों की ज्ञान-सामग्री और मूल्यांकन के सुदृढ़ तत्वों का दक्षताओं के साथ शिक्षण पद्धतियों में उचित समावेश सुनिश्चित करना होगा। पाठ्यचर्या विकास के विभिन्न तत्वों से जुड़ी समझ और दक्षताएँ विशेष रूप से इन कार्यक्रमों में सैद्धांतिक शिक्षण और व्यावहारिक प्रशिक्षण दोनों दृष्टि से शामिल करनी होंगी।

इसलिए सेवाकालीन शिक्षकों की सतत शिक्षा पर ध्यान देने की ज़रूरत है क्योंकि हो सकता है कि अब राष्ट्रीय और विश्व परिदृश्य में विषयवस्तु और शिक्षण प्रविधि में तेज़ी से होने वाले परिवर्तनों के संदर्भ में उनकी समूची शिक्षा और पहले ली गई ट्रेनिंग प्रासंगिक एवं प्रभावशाली न रही हो। शिक्षकों को नए पाठ्यचर्या-सरोकारों, मुद्दों और क्रियान्वयन के तरीकों के प्रति संवेदनशील बनाना होगा। इसके लिए जटिल-शब्दावली से मुक्त सरल क्षेत्रीय भाषाओं में मुद्रित सामग्री और श्रव्य-दृश्य सामग्री प्रत्यक्ष तरीकों से और दूर-शिक्षा के माध्यम से विकसित करने और वितरित करने की ज़रूरत है। सेवाकालीन प्रशिक्षण केवल एक ही बार में हमेशा के लिए प्रशिक्षण नहीं है बल्कि उसका संचालन भी निरंतर और नियमित रूप से जारी रखना होगा। 'मुख्य-संसाधन-व्यक्तियों' और 'संसाधन-व्यक्तियों' को तैयार करने के लिए केस्केड मॉडल (सीढ़ी-दर-सीढ़ी या ऊपर से नीचे की ओर चलने वाला प्रतिरूप) अपनाना होगा और इस उद्देश्य के लिए संयुक्त कार्य-प्रणाली विभिन्न राष्ट्रीय, राज्य स्तरीय और ज़िला स्तरीय तंत्र के साथ मिल कर विकसित करनी होगी। शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए टेलीकांफ्रेंसिंग एक प्रभावी कार्यनीति है। अतः इसका भी लाभप्रद उपयोग किया जा सकता है।

5.2.3 व्यवस्था के प्रबंधकों की जवाबदेही

पाठ्यचर्या के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए राज्य, ज़िला और ब्लॉक स्तरों के शैक्षिक कार्यकर्ताओं और प्रशासकों का प्रारंभिक प्रवेश और सेवाकालीन प्रशिक्षण महत्त्वपूर्ण है। इनको और इनके साथ जो काम करते हैं उनको भी उनकी अपनी भूमिकाओं के बारे में प्रबोधन देना होगा क्योंकि साथी कार्यकर्ता उन अधिकारियों से मार्गदर्शन लेने की ज़रूरत महसूस करते

रहेंगे। पाठ्यचर्या क्रियान्वयन की संपूर्ण प्रक्रिया में प्रधानाध्यापकों और प्राचार्यों को प्रबंधकों और साधन उपलब्ध कराने वालों की भूमिका अदा करनी होगी और इसलिए उनका भी समुचित प्रशिक्षण आवश्यक है। सभी स्तरों पर समुचित मॉनिटरिंग प्रणाली विकसित करके इसे औपचारिक बनाना होगा। इससे सभी प्रशासकों, प्रबंधकों और कार्यकर्ताओं की अपनी-अपनी भूमिकाओं के प्रति अधिक जवाबदेही और प्रभावशीलता तय होगी।

5.2.4 अध्यापक-निर्माता संस्थाओं को शामिल करना

पाठ्यचर्या क्रियान्वयन राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर केवल मुट्ठीभर संस्थाओं के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता, इसलिए उन समस्त संस्थाओं को, जिनमें यह कार्य करने की क्षमताएँ हैं, इस दायित्व में शामिल करना होगा। गत एक दशक में प्रारंभिक और माध्यमिक स्तर पर अनेक शिक्षक-निर्माता संस्थाओं की स्थापना की गई है और उनका सुदृढ़ीकरण हुआ है। इनमें से कुछ के यहाँ तो पाठ्यचर्या और पाठ्यसामग्री विकसित करने के लिए विशिष्ट विभाग हैं, लेकिन कुछ अपने निहित कार्य उद्देश्य के कारण माध्यमिक शिक्षकों और प्रारंभिक शिक्षक-प्रशिक्षकों को प्रशिक्षण देती हैं। पाठ्यचर्या-निर्माण के सभी क्षेत्रों में इन संस्थाओं को सम्मिलित करना होगा। इसी प्रकार पाठ्यक्रम को लागू करने या क्रियान्वित करने के तरीकों को भी अध्यापक-शिक्षा का अंग बनाना होगा और विशेष रूप से सेवाकालीन प्रशिक्षण में शिक्षकों को नवीन सरोकारों, मुद्दों और कार्यनीतियों से भी परिचित कराना होगा।

5.2.5 संसाधन केंद्र के रूप में पाठशाला-संकुल

ज़िला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थानों (डाइट्स) के ज़रिए ज़िला स्तर पर संसाधन सहयोग की स्थापना के साथ-साथ, उप-ज़िला या विद्यालय संकुल के स्तर पर संसाधन-सहयोग को क्रियाशील और सुदृढ़ बनाना होगा। ये केंद्र ऐसे सक्षम स्थान बनें जहाँ योग्य शिक्षक मिल सकें, उनमें परस्पर संवाद एवं अंतर्क्रिया हो सके और विद्यालय सुधार-कार्यक्रमों के लिए सामग्री और जनशक्ति संसाधन उपलब्ध कराए जा सकें। ये केंद्र नियमित और दूर शिक्षा प्रणालियों, ग्रंथालयों, अच्छे दृश्य-श्रव्य उपकरणों और अन्य समस्त प्रशिक्षण सामग्रियों और भौतिक सुविधाएँ उपलब्ध कराकर सहयोग कर सकते हैं। उनके पास उपलब्ध समस्त भौतिक एवं मानवीय संसाधनों का बिना किसी प्रबंधन संबंधी लिहाज़ के शिक्षकों एवं निकटस्थ संस्थाओं के अन्य कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण में सुविधा के लिए उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार ये केंद्र सुविधावंचित आबादी को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करेंगे और अपने-अपने क्षेत्र में अग्रणी संस्था के रूप में कार्य करेंगे। ब्लॉक संसाधन केंद्रों और संकुल संसाधन केंद्रों के पास उपलब्ध सकारात्मक अनुभवों का भी लाभप्रद ढंग से इस्तेमाल किया जा सकता है।

5.2.6 अध्यापक शिक्षा संस्थाओं का नेटवर्क

संसाधनों की व्यवस्था करने और सहक्रियाशील प्रभाव पैदा करने की दृष्टि से नेटवर्क तैयार किए जाते हैं। अध्यापक शिक्षा में नेटवर्क की परिकल्पना पर ऊर्ध्व और क्षैतिज दोनों ही दृष्टियों से विचार किया जा सकता है। इस बिंदु को स्पष्ट करने के लिए माध्यमिक स्तर पर किसी एक उच्च शैक्षिक अध्ययन संस्थान के आसपास अध्यापक शिक्षा परिसर के रूप में नेटवर्क तैयार किया जा सकता है। माध्यमिक अध्यापक शिक्षा संस्थाओं को नवाचारात्मक कार्यक्रम चलाने और अध्यापक शिक्षा की दक्षताओं को अद्यतन और उन्नत बनाने तथा व्यावसायिक विकास के लिए सुविधा प्रदान करने के लिए वह परिसर अपने संसाधनों के द्वारा सहयोग करेगा। अध्यापक शिक्षा परिसरों का उपयोग संसाधनों तथा सामग्री, विशेषज्ञता और अनुभवों में साझेदारी में सुनिश्चित करने के लिए हो सकता है।

5.2.7 अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों की मॉनिटरिंग और मूल्यांकन

अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों की मॉनिटरिंग और मूल्यांकन के लिए अध्यापक शिक्षा के पाँचों तत्वों को अर्थात् सेवा-पूर्व, सेवाकालीन, आजीवन और सतत शिक्षा, विस्तार सेवा कार्यक्रम और व्यावसायिक विकास के लिए संस्था द्वारा प्रदत्त अवसर आदि सभी को समग्र और अखंडित क्रियाकलाप के रूप में देखना होगा।

मॉनिटरिंग और मूल्यांकन की प्रचलित गतिविधि के अतिरिक्त एक गतिविधि अब संस्थाओं की प्रामाणिकता की जाँच और श्रेणीकरण के लिए की जा सकती है। ऐसी गतिविधि बाहर से लादी हुई न मानी जाकर सुधारात्मक और उपचारात्मक उपायों की आवश्यकता के लिए महत्त्वपूर्ण पूर्वाभ्यास मानी जा सकती है।

प्रामाणिकता में आवश्यक रूप से निहित हैं :

- संस्थाओं का उनकी बुनियादी संरचना और नियमित गतिविधियों के आधार पर आकलन,
- अनेक प्रकार से संस्थाओं की ग्रेडिंग ए,बी,सी,डी,ई—यह ग्रेडिंग उनके भौतिक, मानवीय संसाधनों और गुणवत्ता के उपलब्ध प्रतिफलों के अनुसार करना, और
- जहाँ ज़रूरत हो, संस्थाओं की क्षमता में वृद्धि के लिए सुधारात्मक और सहायता के उपाय करना।

5.3 विद्यालयी शिक्षा में सूचना-संचार प्रौद्योगिकी का एकीकरण

विद्यालय के अंदर और बाहर सूचना और संचार प्रौद्योगिकी की आज सर्वव्यापी उपस्थिति

प्रकट होने लगी है। सारी दुनिया में छात्रों को विद्यालय जो कुछ सिखाने की कोशिश करते हैं उन्हें भी प्रौद्योगिकी ने चुनौती देना शुरू कर दिया है। छात्र जो ज्ञान और कौशल अर्जित करते हैं उनके भी संपूर्ण आधार को सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी चुनौती देने लगी है। शिक्षा की प्रक्रिया प्रौद्योगिकी के उन सामाजिक और मनोवैज्ञानिक प्रभावों की अवहेलना नहीं कर सकती जो सूचना की संरचना करती है और वैश्विक सूचनाओं में हिस्सेदारी की संभावनाओं के द्वार खोलती है। इसके अतिरिक्त लोगों के सोचने और सीखने के उन तरीकों को भी प्रोद्योगिकी प्रभावित करती है जो बड़े पैमाने पर मान्य हो चुके हैं।

इसलिए विद्यालयों में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के समावेश के लिए सुदृढ़ शिक्षाशास्त्रीय औचित्य है और यह विद्यालयी शिक्षा प्रक्रिया के विकास का एक स्वाभाविक क्रम है। लेकिन इस प्रकार के समेकन या समन्वय के कई निहितार्थ हैं। ये स्पष्ट रूप से कई माँगें करते हैं। इनमें से प्रमुख माँगों का वर्णन इस प्रकार है :

1. शैक्षिक योजनाकार वर्तमान कक्षा से कहीं आगे जाकर देखता है और एक इलेक्ट्रॉनिक पर्यावरण में शिक्षा के लिए अद्यतन योजना प्रणाली बनाकर अपनी योजना विस्तारित करता है ताकि कंप्यूटर अध्ययन एक विषयमात्र बने रहने से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाए। कंप्यूटर शिक्षण की दृष्टि से केवल वर्तमान पाठ्यचर्या में समन्वय ही पर्याप्त नहीं है बल्कि इसे विद्यालयी शिक्षा का अभिन्न अंग बनाना होगा।
2. शिक्षाविद् मोटे तौर पर सामान्य सिद्धांतों को स्वीकार करता है और जानता है कि वे उसे चुनौती दे रहे हैं। ये सिद्धांत हैं :
   - अधिगम अवसरों में वृद्धि करने वाली रूपरेखा की रचना करना जिसे कि कंप्यूटर आधारित अधिगम सामग्री तथा अन्य आसानी से उपलब्ध होने वाले साधनों द्वारा आधार प्रदान किया जा सकता है,
   - सूचना तक पहुँच, शैक्षिक और शिक्षाशास्त्रीय लक्ष्यों में साझेदारी,
   - अध्यापकों की व्यावसायिक विकास के अवसरों तक पहुँच जो उन्हें अधिगम के प्रेरकों के रूप में कार्य करने योग्य बनाएँ,
   - लचीली पाठ्यचर्या के मॉडलों में अंतर्विषयक और परस्पर संक्रमित होने वाले विषयों के चिंतन का समावेश होगा, और
   - मूल्य-संचालित दृष्टिकोण का विकास जो प्रौद्योगिकी-संचालित न हो।
3. पाठ्यचर्या-निर्माता अपनी भूमिका पुनः परिभाषित करता है। सभी नवाचारात्मक प्रयोग, मीडिया-सामग्री निर्माण, अंतर्क्रियात्मक दृश्य और मल्टीमीडिया कंप्यूटर साफ्टवेयर–

ये सभी पाठ्यचर्या विकास की प्रक्रियाएँ हैं। पाठ्यचर्या-निर्माता की सक्रिय भागीदारी के बिना ये प्रक्रियाएँ बेकार हो जाती हैं।

4. अध्यापक ऐसी शैक्षिक योजना अपनाते हैं जो छात्रों में खोजपूर्ण और संख्याओं के आरोह-अवरोह क्रम समझने की कार्यनीतियों पर नई समस्याओं के हल के लिए प्रवीणता या अधिकार प्राप्त करने में सहायक होती हैं। यह कार्यनीति निर्धारित ज्ञान की छिटपुट इकाइयों पर प्रवीणता प्राप्त कराने के ठीक विपरीत है। इसके लिए जहाँ तक संभव हो कंप्यूटर टैक्नोलॉजी का प्रयोग अपेक्षित है।

5. छात्र सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के समृद्ध माहौल में, जिसमें कि कंप्यूटर तथा संचार प्रौद्योगिकी की सहायता भी शामिल हो, जो कुछ सीखते हैं उसके मूल्यांकन और आकलन की प्रणाली विकसित करना आवश्यक है। इसके लिए यह पर्यावरण भी कुछ बोधगम्य परिवर्तनों की ओर ले जाता है जो पूर्व स्थापित मान्यताओं से अलग हैं, जैसे–

   - पारंपरिक शिक्षण वातावरण से ऐसे मूल्यपरक वातावरण की ओर अग्रसर होना जो खोज, समस्या-समाधान और निर्णयात्मकता को प्रोत्साहित करता है,
   - उपदेशात्मक कक्षाई अध्यापन की जगह सहभागिता और अंतर्क्रियात्मक समूह शिक्षण की ओर ले जाता है,
   - कतारबद्ध और क्रमबद्ध तर्क प्रणाली से पैटर्नों और संबंधों की खोज के लिए प्रेरित करता है,
   - एक निर्धारित और स्थिर ज्ञान में प्रवीणता से समग्रता या पूर्णता और उसके अंशों या भागों के बीच के संबंधों को समझने की ओर ले जाता है, और
   - सूचनाओं के संकलन से सूचना विश्लेषण द्वारा ज्ञान और कौशल की ओर प्रवृत्त करता है।

इन बदलावों से उत्पन्न कौशलों और योग्यताओं का परीक्षण और मापन पारंपरिक तरीकों से नहीं किया जा सकता।

6. केवल इन नवीन कौशलों और अवबोधों के ज़रिए शिक्षक प्रेरक के रूप में अपनी नई भूमिका अपना सकते हैं और कक्षा में नवाचार लागू करके उन्हें ज़ारी रख सकते हैं। इसके लिए सेवा-पूर्व पाठ्यक्रमों तथा प्रभावी प्रशिक्षण और प्रबोधन कार्यक्रमों को नए ढंग से उन लोगों के लिए परिभाषित करना होगा जो पहले से ही शिक्षा कार्य में लगे हैं। नवीन पाठ्यक्रमों के माध्यम से अध्यापकों को सूचना तथा कंप्यूटर प्रौद्योगिकी के अध्यापन में श्रेष्ठ प्रयोग करने योग्य बनाना होगा।

5.4 व्यावसायिक शिक्षा का प्रबंधन

व्यावसायिक शिक्षा के प्रबंधन को, उसमें निहित शक्ति, उसकी संरचना और उसके दायित्व-निरूपण के अंतर्गत विकसित करना होगा। एक ओर राष्ट्रीय और राज्य स्तरीय एजेंसियों के बीच गहरा समन्वय और दूसरी ओर रोज़गार अवसरों एवं उद्यमता में सहयोग देने वाले क्षेत्रों का सुव्यवस्थित नियोजन करने और उन्हें स्थापित करने की आवश्यकता है। कार्यक्रम-क्रियान्वयन संस्थाओं और उपभोक्ता के बीच सार्थक सहभागिता भी ज़रूरी है और यह वास्तव में योजना को लोकप्रिय, कार्यात्मक और प्रभावी बनाने की पहली शर्त है। औपचारिक विद्यालयी शिक्षा के प्रथम दस वर्षों में और वैकल्पिक शिक्षा प्रणाली के भी लगभग इतने ही समय में व्यावसायिक शिक्षा का एक सुदृढ़ कार्यक्रम विकसित करना आवश्यक है। इसके लिए कार्य शिक्षा और पूर्व-व्यावसायिक शिक्षा के माध्यम से विस्तृत और बड़े पैमाने पर तैयारी करनी होगी। माध्यमिक स्तर पर कार्य शिक्षा की प्रणाली में आमूल परिवर्तन करना होगा और लगभग शिक्षण के सभी क्षेत्रों के साथ उसका प्रभावी समन्वय या समेकन करना होगा।

व्यावसायिक शिक्षा के सुदृढ़ीकरण के लिए राष्ट्रीय, राज्य स्तर और ज़िला स्तर पर शोध, नवाचार और सर्वेक्षण करने वाली एजेंसियों के साथ ऊर्ध्व और क्षैतिज (वर्टीकल और हॉरिज़ोंटल) दोनों ही आधारों पर प्रभावशाली और कार्यात्मक संबंध बनाना अत्यंत आवश्यक है। प्रामाणिकता और प्रमाणपत्रीकरण के लिए भी उपाय एवं तरीके सोचने होंगे। राष्ट्रीय स्तर की एजेंसियों के अधिकतम कौशलों और दक्षताओं को विकसित करने के लिए मानक मानदंड निर्धारित करने होंगे। विशेषज्ञता विकसित करने से जुड़े मुद्दों पर भी गंभीरता से विचार करना होगा। सेवापूर्व शिक्षा प्रक्रिया के माध्यम से उच्चतर माध्यमिक स्तर के लिए उच्च गुणवत्ता युक्त, कुशल एवं योग्य शिक्षकों की व्यावसायिक शिक्षा में भर्ती पर भी गंभीरतापूर्वक ध्यान देना होगा। यह भी सुनिश्चित करना होगा कि प्रत्येक संस्था में स्थायी आधार पर शिक्षकों का एक मूलभूत या केंद्रिक संकाय मौजूद रहे जिसे समुदाय, उद्योग, अन्य संगठन और एजेंसियों से लिए गए संसाधन व्यक्तियों एवं अतिथि-शिक्षकों के संकाय का सहयोग प्राप्त हो। यह व्यावसायिक शिक्षा पाठ्यक्रम के लिए ज़रूरी है। ये लोग निर्धारित समयावधि में अलग-अलग प्रकार के हो सकते हैं। व्यावसायिक शिक्षा के अध्यापकों और उससे जुड़े अन्य कार्यकर्ताओं के लिए सेवाकालीन प्रशिक्षण की ज़िम्मेदारी में प्रत्येक संस्था को हर स्तर पर भागीदारी करनी होगी। इसके लिए सबसे पहले ऐसी संस्थाओं की पहचान करनी होगी जो व्यावसायिक शिक्षा के प्रति समर्पित हों। व्यावसायिक शिक्षा से संबद्ध अध्ययन-अध्यापन सामग्री के निर्माण के लिए गहरी अंतर्दृष्टि आवश्यक है और रोज़गार एवं उद्यमता से उभरने वाले क्षेत्रों से परिचय के द्वारा ऐसी संस्थाओं में कार्यरत शिक्षकों में यह अंतर्दृष्टि और कुशलता विपुल मात्रा में उपलब्ध होगी।

ज़िला और ब्लॉक स्तर पर माध्यमिक स्तर के प्रत्येक विद्यालय के न केवल छात्रों बल्कि उनके माता-पिता और अभिभावकों को भी व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में उपलब्ध अवसरों और योग्यताओं के संबंध में पर्याप्त जानकारी देनी होगी। विद्यालयों में छात्रों को रोज़गार एवं कैरीयर संबंधी अवसरों की जानकारी देने की व्यवस्था होनी चाहिए। छात्रों को प्रेरित करने और उनमें सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने के लिए उन्हें व्यावसायिक शिक्षा में उच्च सफलता प्राप्त करने वाले ऐसे छात्रों की कहानियाँ सुनानी होंगी जिन्होंने व्यावसायिक शिक्षा में प्रवेश लिया था। ज़िला स्तर पर स्थापित संसाधन संस्थाएँ व्यावसायिक शिक्षा प्रणाली को लोकप्रिय बनाने और समुदाय में उसके प्रति विश्वास पैदा करने में बड़ी मदद कर सकती हैं।

उन सभी संस्थाओं में पूर्व-व्यावसायिक पाठ्यक्रम लागू करना होगा जहाँ उच्चतर माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक पाठ्यक्रम के लिए प्रावधान है। इससे सामान्य वर्ग के छात्रों और साथ ही उन छात्रों को भी मदद मिलेगी जो माध्यमिक स्तर के बाद ही विद्यालय छोड़ देते हैं। इस संदर्भ में विद्यालयों में उत्पादन-आधारित प्रशिक्षण केंद्रों की बड़े पैमाने पर स्थापना के प्रयोग करने की आवश्यकता है। ब्लॉक स्तर पर भी प्रशिक्षण एवं संसाधन केंद्रों की स्थापना करना और उनको जारी रखना होगा।

ब्लॉक स्तर के व्यावसायिक शिक्षा केंद्रों और प्रशिक्षण केंद्रों को कई प्रकार की भूमिकाएँ अदा करनी होंगी। ये संस्थाएँ लचीले मॉड्यूल और दक्षता आधारित व्यावसायिक पाठ्यक्रम प्रस्तुत करेंगी। इनके द्वारा जिन समूहों की आवश्यकता पूर्ति होगी उनमें विशाल लक्ष्य समूह, जैसे—विद्यालय छोड़े हुए छात्र, ग्रामीण युवावर्ग, नवसाक्षर, महिलाएँ एवं अन्य ऐसे लोग भी शामिल होंगे जो औपचारिक धारा के विषयों के अतिरिक्त अपने कौशलों का उन्नयन चाहते हैं। दूसरी ओर ये संस्थाएँ संसाधन संस्थाओं के रूप में पड़ोस के ऐसे व्यावसायिक-विद्यालय समूहों के लिए भी काम करेंगी जिनके पास छात्रों को व्यावहारिक अनुभव प्रदान करने की आवश्यक बुनियादी सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं।

गुणवत्तापूर्ण विद्यालयी शिक्षा के उद्देश्य पूर्ण रूप से तब तक प्राप्त नहीं किए जा सकते जब तक विस्तृत और समृद्ध व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रमों को लागू नहीं किया जाता। व्यावसायिक शिक्षा को व्यापक आधार पर अपनाकर देश का युवावर्ग निराशा और कुंठा से मुक्त हो सकता है।

5.5 मूल्य-विकास के लिए शिक्षा

5.5.1. विद्यालयी योजना

विद्यालयी पाठ्यचर्या में वे तत्व निहित होने चाहिए जो आवश्यक मूल्यों का पूर्ण रूप से

संचार करें। प्रत्येक शिक्षक को मूल्य-शिक्षक बनना होगा। प्रत्येक क्रियाकलाप, इकाई और अंतर्क्रिया का परीक्षण मूल्य-पहचान, मूल्य-प्रसार, मूल्य-प्रबलन और इसके पश्चात मूल्यों को अमली जामा पहनाने के लिए संतुलित और समुचित कार्यनीति संबंधी निर्णयों के आधार पर निर्णय लेने चाहिए। इन मूल्यों को विद्यालयी लक्ष्यों, स्टाफ़ और छात्रों की भागीदारी द्वारा विकसित अनुशासन का स्पष्ट उल्लेख करके प्राप्त किया जा सकता है। मूल्य निष्पादन के लिए दो पक्षीय संवाद, कल्याण-सेवाएँ, ज़रूरतमंद छात्रों की मदद, उपचारात्मक-शिक्षण, पुनर्मूल्यांकन और कमतर उपलब्धियों वाले छात्रों को निरस्त न करने का भाव आवश्यक है। इसके लिए ऐसे नियमों का निर्माण करना आवश्यक होगा जिनसे प्रत्येक छात्र की खेलकूदों, विद्यालयी- क्रियाकलापों और उनकी रुचियों से जुड़े कार्यक्रमों में सहभागिता सुनिश्चित की जा सकेगी।

प्रारंभिक शिक्षा स्तर पर

- विद्यालयी सभा और समूह-गायन और मौन एवं ध्यान साधना का अभ्यास,
- पैगंबरों, संतों और पवित्र धर्मग्रंथों से जुड़ी रुचिकर कथाओं और जीवनियों का वर्णन,
- खेल के मैदानों की गतिविधियाँ अर्थात् खेलकूद, ऐसे सामाजिक कार्य जो मनुष्य जाति के साथ-साथ अन्य प्राणियों, यहाँ तक कि प्रकृति की सेवा का दृष्टिकोण भी पैदा करें और 'कार्य ही पूजा है' की भावना उत्पन्न करें, और
- उपयुक्त विषयों, कथानकों पर आधारित सांस्कृतिक कार्यक्रम और नाटकों का आयोजन।

माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर

- शिक्षक या अतिथि वक्ता द्वारा प्रातःकालीन सभा में ज्ञानयुक्त पुस्तकों एवं महान साहित्य के अंशों का वाचन एवं उपयुक्त संबोधन,
- विश्व के मुख्य धर्मों की आवश्यक शिक्षाएँ और धर्म-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन,
- अवकाश एवं विद्यालय से छूटने के बाद के समय में समाज-सेवा,
- सामुदायिक गायन कार्यक्रम, राष्ट्रीय एकता शिविर, राष्ट्रीय समाज सेवा, एन.सी.सी. शिविर, स्काउट एवं गाइडिंग कार्यक्रम, और
- उपयुक्त विषयों पर सांस्कृतिक कार्यक्रम, नाटक, परिसंवाद आदि।

एकाधिक विद्यालय महत्त्वपूर्ण समारोहों और सभी धर्मों एवं सांस्कृतिक समूहों के त्योहारों को मनाने के लिए संयुक्त आयोजन कर सकते हैं। इससे एक दूसरे के प्रति समझ, पसंदगी

और सम्मान की बेहतर भावना विकसित होगी और एक सहिष्णु एवं सुसंबद्ध समाज का निर्माण होगा।

5.5.2 पूरक सहयोग

यहाँ जिस उपागम का प्रयोग होगा उसके अंतर्गत ये तत्व होंगे :

- विभिन्न विषयों में निहित मूल्यों का महत्त्व बताना,
- छात्रों को एक दूसरे से प्रश्न करने, साझेदारी करने और आपस में एक दूसरे का सम्मान करने के अवसर प्रदान करना,
- कक्षाई शिक्षण में लोकतांत्रिक सिद्धांतों और प्रक्रियाओं के लिए अवसर प्रदान करना,
- स्त्री-पुरुष समानता, सामाजिक जातियों, वर्गों और धर्मों के प्रति समानता के भाव पर बल देना,
- मानव अधिकार, बच्चों के अधिकार, पर्यावरण-संरक्षण, स्वस्थ जीवन-प्रणाली आदि के महत्त्व को रेखांकित करना, और
- कक्षा के वातावरण को मूल्यों के विकास के लिए तनावमुक्त और लोकतांत्रिक बनाना।

5.5.3 मूल्य-प्रसार के स्रोत

शिक्षकों को चाहिए कि :

- वे मूल्य-प्रबोधन के प्रति अपनी भूमिका को लेकर स्पष्ट दृष्टि रखें,
- सार्वभौम एवं सर्वव्यापी मूल्यों के पोषण के लिए उन्हें विभिन्न विद्यालयी विषयों और स्थितियों की पहचान हो और वे बालकों के समक्ष नायक (रोल मॉडल) के रूप में स्वयं अपने प्रति संवेदनशील हों,
- छात्रों के प्रति उनके अपने पूर्वग्रहों और दृष्टिकोणों की उनमें समझ हो,
- वे कक्षा में मूल्य शिक्षा की पढ़ाई और कक्षा संचालन के लिए उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए ईमानदारी से प्रयत्नशील रहें,
- वे विभिन्न धर्मों और उनसे संबद्ध मूल्यों को जीवन में उतारने के लिए अधिकृत और प्रामाणिक प्रबोधन सामग्री के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाएँ, और
- वे अच्छे संप्रेषक या संदेशवाहक बनें।

सामग्री

- विभिन्न विषयों के लिए पाठ्यपुस्तकें, पूरक पाठ्यसामग्री और अन्य सामान्य वाचन-सामग्री में सार्वभौम मानव मूल्यों का समावेश करना होगा। ऐसी सामग्री को सावधानीपूर्वक लिखवाना और उसकी अनवरत समीक्षा करवाना आवश्यक है ताकि वह विपरीत प्रभाव पैदा न करे। वाचन-सामग्री सपाट और उपदेशात्मक नहीं होनी चाहिए।

अन्य सहयोग

- अंतर्राज्यीय सांस्कृतिक विनिमय (अदला-बदली) कार्यक्रम,
- प्रदर्शनी, बालमेले, मेले और लोक सांस्कृतिक क्रियाकलाप, और
- समुचित मार्गदर्शन और परामर्श।

5.6 विशेष आवश्यकता वाले छात्रों के लिए कार्यनीतियों का क्रियान्वयन

अलगाव या अकेलापन तो विकलांग और सामान्य दोनों ही प्रकार के छात्रों के लिए ठीक नहीं है। सामाजिक आवश्यकता तो इस बात की है कि विशेष ज़रूरतों वाले छात्रों की शिक्षा भी ऐसे 'एक समान विद्यालयों' (इन्कलूसिव स्कूल) में हो जो मूल्य-प्रभावी हों और शिक्षाशास्त्रीय प्रविधियों में भी सुदृढ़ हों।

विशेष आवश्यकता वाले छात्रों को मुख्य धारा के एक समान विद्यालयों में लाने के लिए जो प्रक्रिया शुरू की जाएगी उसके लिए शैक्षिक आवश्यकताओं के आकलन के आधार पर उनके माता-पिता से परामर्श करके उनके लिए व्यक्तिगत शैक्षिक-योजनाएँ तैयार करनी होंगी। तभी जाकर अध्यापन 'शिक्षार्थी-केंद्रित' होगा। समूह शिक्षण या सहयोगात्मक शिक्षण एवं साथियों के साथ ट्यूटोरियल कार्यक्रमों को इन 'एक समान सामान्य विद्यालयों' में प्रोत्साहित करना होगा। इससे विशेष आवश्यकताओं वाले छात्र मुख्य धारा में आएँगे और जो छात्र विकलांग नहीं हैं उनके अंदर सकारात्मक दृष्टिकोण एवं कौशलों का पोषण होगा और बिना किसी कुंठा के छात्र मिलजुल कर सीख सकेंगे।

इस कार्यनीति की सफलता के लिए पाठ्यचर्या-निर्माताओं, शिक्षकों, अध्ययन-अध्यापन की सामग्री के लेखकों और मूल्यांकन-विशेषज्ञों को इस स्तर पर निश्चित कार्रवाई करनी होगी। इसके अंदर शामिल करना होगा :

- विशेष आवश्यकता वाले छात्रों के लिए उपयुक्त पूरक शिक्षण-सामग्री का विकास करना,
- विभिन्न प्रकार की विशेष आवश्यकताओं वाले छात्रों में अवधारणाओं की स्पष्ट समझ

विकसित करने के लिए विषयवस्तु, उसकी प्रस्तुति और उसके उपयोग में सुधार लाने की कार्यनीति अपनानी होगी,

- विभिन्न प्रकार की विशेष आवश्यकतों वाले छात्रों के लिए मित्रतापूर्ण उपयुक्त मूल्यांकन-प्रक्रिया विकसित करनी होगी और उसे लागू करना होगा,
- सेवाकालीन शिक्षा-कार्यक्रमों के माध्यम से शिक्षकों को विशेष आवश्यकताओं वाले छात्रों के संबंध में कुछ प्रारंभिक ज्ञान देकर उनके प्रति संवेदनशील बनाना होगा और जो छात्र विभिन्न प्रकार की शारीरिक चुनौतियों से ग्रस्त हैं उनकी शिक्षा के लिए शिक्षकों में कौशल, दक्षताएँ और ऐसी कार्यनीतियाँ तैयार करनी होंगी कि वे सभी छात्रों वाले एक समान विद्यालयों में भी ऐसी विविधता वाले छात्रों की ज़रूरत पूरी कर सकें,
- शिक्षकों को अपने आप में परिपूर्ण मार्गदर्शन देना होगा और एक समान विद्यालय के ऐसे छात्रों के लिए शिक्षा के लक्ष्यों को परिभाषित करना होगा, और
- विशेष आवश्यकताओं वाले छात्रों के लिए समुदाय से संसाधन सहयोग लेना होगा, इसके लिए संसाधन केंद्रों की स्थापना की जा सकती है।

व्यावसायिक मार्गदर्शन और परामर्श की बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका होगी। इस संपूर्ण प्रक्रिया से उपयुक्त कौशलों से संपन्न कार्यकर्त्ताओं को तैयार किया जा सकेगा और वे इस धारा के सभी विभागों में प्रभावी योगदान करेंगे।

5.7 मूल्यांकन कार्यनीतियों का क्रियान्वयन

किसी भी सफल सुधार को लागू करने के लिए उन लोगों में दृढ़-इच्छा और संकल्पशक्ति की आवश्यकता होगी जो इस प्रक्रिया में संलग्न हैं। मूल्यांकन कार्यनीति के क्रियान्वयन में सुधार के लिए निम्नलिखित उपाय आवश्यक हैं :

- वातावरण निर्माण,
- सामग्री निर्माण,
- क्षमता निर्माण, और
- संसाधन प्रसार।

वातावरण निर्माण

विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में सुधार करने के लिए किसी भी प्रयास की सफलता की पहली शर्त है आम जनता में उपयुक्त और पर्याप्त चेतना पैदा करना। इसलिए प्रस्तावित सुधारों

की विशेषताएँ लोगों को बतानी होंगी। इसके अतिरिक्त लोगों के मन में जमी हुई धारणाओं को बदलने के लिए समुदाय को शिक्षित करना होगा। इन कार्यों के लिए सचेतन प्रयास की दृष्टि से मीडिया कार्यक्रमों का धुआँधार उपयोग करना होगा।

सामग्री निर्माण

स्थानीय विशिष्टताओं और आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए सामग्री निर्माण करना होगा। शिक्षण-सामग्री के निर्माण की प्रक्रिया के घटक इस प्रकार रहेंगे :

- विभिन्न सुधारों पर अवधारणात्मक सामग्री, जैसे—सतत और व्यापक मूल्यांकन, ग्रेडिंग, सेमेस्टरीकरण, प्रश्न-बैंक आदि,
- मूल्यांकन के साधन, जैसे—निदानात्मक-परीक्षण, कसौटी संदर्भित परीक्षण, उपलब्धि-परीक्षण, रेटिंग स्केल्स, अवलोकन प्रपत्र, चेकलिस्ट, सूचीकरण आदि,
- विभिन्न पाठ्यचर्या क्षेत्रों में प्रश्न-बैंक,
- विद्यालयी शिक्षा के प्रत्येक स्तर के लिए सतत और व्यापक मूल्यांकन संबंधी विस्तृत योजना,
- विद्यालयी शिक्षा के माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्तरों पर सेमेस्टरीकरण की विस्तृत योजनाएँ,
- विद्यालयी शिक्षा के माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर सेमेस्टरीकरण के लिए पाठ्यक्रमों का मॉड्यूलीकरण,
- सेवा-पूर्व और सेवाकालीन दोनों अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रमों के लिए मूल्यांकन पर शिक्षक-शिक्षा की सामग्री, और
- विभिन्न सुधारों को लागू करने के लिए विद्यालयों और बोर्डों को मार्गदर्शन।

क्षमता निर्माण

प्रस्तावित सुधारों को लागू करने के लिए प्रबंधकों से लेकर शिक्षकों तक संलग्न किए गए सभी कार्यकर्ताओं के लिए क्षमता संवर्धन के कार्यक्रमों की आवश्यकता होगी। इन कार्यक्रमों का अनुकूलन विभिन्न लक्ष्य-समूहों की विशिष्ट आवश्यकताओं की दृष्टि से किया जाएगा।

संसाधन प्रसार

प्रस्तावित सुधारों को लागू करने के लिए, राष्ट्रीय, राज्य, ज़िला, संस्था या व्यक्तिगत स्तरों पर सभी संभावित संसाधनों का प्रसार करने के लिए हर प्रकार से प्रयास करने होंगे।

विभिन्न एजेंसियों की भूमिका

राष्ट्रीय और राज्य दोनों स्तरों पर विद्यालयी शिक्षा में गुणात्मक सुधार के लिए ज़िम्मेदार विभिन्न एजेंसियों को कंधे से कंधा मिलाकर मूल्यांकन प्रणाली में सुधार करने के प्रयास करने होंगे।

विद्यालय

विद्यालयी शिक्षा में कोई भी सुधार करने के साहस भरे कार्य में विद्यालय बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं क्योंकि ये ही तो वे एजेंसियाँ हैं जो पाठ्यचर्या संचालित करती हैं और छात्रों के विकास से भी सीधे-सीधे जुड़ी होती हैं। इसलिए पहली से बारहवीं कक्षा तक के लिए विद्यालयों को ही मूल्यांकन की योजना और युक्ति विकसित करनी होगी। इसमें दत्तकार्य (असाइनमेंट) परीक्षण और परीक्षाओं की बारंबारता भी शामिल होगी। विशिष्ट संज्ञानात्मक और सह-संज्ञानात्मक क्षेत्रों की मात्रा या संख्या भी तय करनी होगी। साथ ही जिस प्रकार के परीक्षण दोनों ही क्षेत्रों के लिए लागू किए जाएँगे उनके अधिगम प्रतिफलों का आकलन किया जाएगा, उनका अभिलेख रखा जाएगा और परिणामों की रिपोर्ट की जाएगी। कक्षा में अध्ययन-अध्यापन का स्तर ऊँचा उठाने और शिक्षकों को मूल्यांकन प्रक्रिया में सुधार करने हेतु क्रियात्मक शोध (एक्शन रिसर्च) करने के लिए प्रोत्साहित करने की दृष्टि से विद्यालय उपचारात्मक सामग्री का भी विकास करेंगे। ये गतिविधियाँ व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से, पाठशाला-संकुलों की स्थापना करके की जाएँगी ताकि विद्यालय अपने सर्वश्रेष्ठ मानवीय और भौतिक संसाधनों को सुरक्षित रख सकें।

विद्यालयी शिक्षा के बोर्ड

राज्य शिक्षा बोर्डों द्वारा मूल्यांकन सुधारों को लागू करने के पीछे उद्देश्य यह होगा कि ये बोर्ड न केवल स्वंय द्वारा ली जाने वाली परीक्षाओं की विश्वसनीयता, वैधता और प्रबंधन में सुधार करें बल्कि विद्यालयी मूल्यांकन की गुणवत्ता में भी सामान्य सुधार करें। इसके अतिरिक्त बोर्डों की यह ज़िम्मेदारी भी होगी कि वे शैक्षिक उद्देश्यों की पुष्टि और शिक्षण के जटिल-स्थलों की पहचान का काम परीक्षा-परिणामों के विश्लेषण के माध्यम से करें।

चूँकि बोर्डों के पास जो विशेषज्ञता है वह अलग-अलग विद्यालयों को गुणवत्तापूर्ण परीक्षण (टैस्ट) सामग्री बनाने के लिए उपलब्ध नहीं हो सकती, इसलिए वे ऐसी सामग्री के नमूने बनाकर विद्यालयों को उपलब्ध कराएँ। बोर्डों को विद्यालयों में शिक्षकों के क्षमता-संवर्धन की दृष्टि से शैक्षिक मूल्यांकन में शिक्षक प्रबोधन कार्यक्रम आयोजित करने होंगे। बोर्डों को शैक्षिक मूल्यांकन के क्षेत्र में शोध और उपलब्धि-सर्वेक्षण कराना चाहिए ताकि सेंसस जैसे

आँकड़े प्राप्त हो जाएँ और उनके निष्कर्ष विद्यालयों को उपलब्ध करा दिए जाएँ ताकि विद्यालय उनके गुण-दोषों को सही ढंग से जान सकें।

राज्यस्तरीय एजेंसियाँ

राज्यस्तरीय एजेंसियों, जैसे—शिक्षा निदेशालय, राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषदें, ज़िला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान और स्वैच्छिक संगठनों को भी विद्यालयों को उपयुक्त शिक्षण सामग्री का चयन और निर्माण करने और शैक्षिक उद्देश्यों की संप्राप्ति एवं उपयुक्त शिक्षण युक्तियाँ अपनाने के लिए सहयोग एवं मार्गदर्शन देने की ज़िम्मेदारी लेनी होगी। इसके अतिरिक्त उक्त संस्थाओं को चाहिए कि वे संज्ञानात्मक एवं सह-संज्ञानात्मक अधिगम-प्रतिफलों के आकलन के लिए परीक्षण-सामग्री विकसित करने में विद्यालयों की मदद करें और शिक्षकों के लिए नियमित सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करें। इन संस्थाओं पर विद्यालयों को छात्रों के अभिलेख रखने, उपलब्धि सर्वेक्षण करने, नवाचार अपनाने, प्रत्येक विद्यालय की प्रगति की मॉनिटरिंग करने के अतिरिक्त शोध करने और विद्यालयों को आवश्यक प्रतिपुष्टि एवं मार्गदर्शन देने के अलावा संभार तंत्र (लॉजिस्टिक्स) प्रदान करने की ज़िम्मेदारी भी डालनी होगी।

अध्यापक शिक्षा संस्थाएँ

जो संस्थाएँ देश में सेवापूर्व शिक्षकों की शिक्षा के लिए ज़िम्मेदार हैं वे मूल्यांकन सुधारों के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती हैं। इसके लिए वे अपनी पाठ्यचर्याओं में मूल्यांकन को एक केंद्रिक घटक बना सकती हैं और प्रचलित प्रणाली की अच्छी तरह से समीक्षा कर सकती हैं। ये संस्थाएँ शोधकार्य हाथ में लेने के अतिरिक्त उन शिक्षकों के लिए सेवाकालीन प्रबोधन कार्यक्रम संचालित कर सकती हैं जो इन संस्थाओं के आसपास के विद्यालयों में कार्यरत हैं।

राष्ट्रीय स्तर की एजेंसियाँ

राष्ट्रीय स्तर की एजेंसियाँ, जैसे—राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, प्रस्तावित राष्ट्रीय मूल्यांकन संगठन और विद्यालयी शिक्षा मंडलों की परिषदों को निम्नलिखित दायित्वों का निर्वाह करना होगा :

- विद्यालयी शिक्षा के प्रत्येक स्तर के लिए प्रत्येक पाठ्यचर्या-क्षेत्र में अपेक्षित उपलब्धि-स्तर तय करना,
- बाल केंद्रित, गतिविधि उन्मुखी और दक्षता आधारित अध्ययन-अध्यापन सामग्री के लिए अवधारणात्मक सामग्री और उसके नमूने तैयार करवाना,
- संज्ञानात्मक और सह-संज्ञानात्मक अधिगम प्रतिफलों के सार्थक आकलन के लिए विभिन्न

प्रकार के परीक्षणों का निर्माण करवाना और उन्हें राज्य स्तरीय एजेंसियों को उपलब्ध करवाना,

- मुख्य संसाधन व्यक्तियों के लिए प्रबोधन कार्यक्रमों का संचालन करना,
- विभिन्न बोर्डों के लिए प्रश्नपत्र निर्माताओं के लिए प्रशिक्षण-कार्यक्रम आयोजित करना,
- अभिलेख रखने और परिणामों की रिपोर्ट देने के लिए किसी संभार तंत्र की कल्पना करना तथा उसके विषय में परामर्श देना,
- अधिगम प्रतिफलों के मूल्यांकन के लिए बेहतर तरीकों और साधनों की खोज हेतु शोध करवाना,
- सेंसस जैसे आँकड़े प्राप्त करने के लिए उपलब्धि सर्वेक्षण करना, और
- सूचना का प्रसार करना।

5.8 मार्गदर्शन और परामर्श

उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्रों को किस विषय को चुन कर किस धारा या उपधारा में प्रवेश लेना है इसके लिए विषय-विविधता की एक बड़ी रेंज या शृंखला विद्यमान है। इसी प्रकार सेमेस्टर अवधि अपने आप में परिपूर्ण पाठ्यविषयों (कोर्सों) से विषय-चयन की इस बड़ी विविधता की कड़ी से जुड़ी है। अतः किशोरावस्था के छात्रों के लाभ के लिए मदद करने की दृष्टि से मार्गदर्शन और परामर्श आवश्यक है ताकि ये छात्र अपने लिए उपयुक्त स्ट्रीम (धारा), उपागम और इकाई का चयन इस प्रकार कर सकें कि ये छात्रों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता, दृष्टिकोण, योग्यता और प्रवृत्ति के अनुरूप हों। इसलिए शिक्षा के इस अत्यंत नाजुक स्तर पर विशिष्टतायुक्त मार्गदर्शन और परामर्श के लिए विद्यालयों को विशेष दायित्व निभाना होगा।

आदर्श स्थिति तो यह होगी कि प्रत्येक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में एक-एक परामर्शदाता नियुक्त किया जाए। यदि यह संभव न हो तो कम-से-कम यह तो अत्यंत वांछनीय है कि तीन या चार माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के एक समूह के लिए एक परामर्शदाता उपलब्ध हो। आगे चलकर माध्यमिक विद्यालयों में एक कैरीयर अध्यापक का प्रावधान करना होगा।

प्रत्येक राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् में विद्यालयों को तकनीकी सहयोग प्रदान करने के लिए एक 'मार्गदर्शन प्रकोष्ठ' स्थापित करना आवश्यक है। इसके कार्य दो प्रकार के होंगे, जैसे—सामग्री निर्माण और प्रशिक्षण सुविधाओं का प्रावधान। विद्यालय

फिलहाल इतना काम तो कर ही सकते हैं कि वे शिक्षकों को छात्रों के परिचय-वृत्त तैयार करने के लिए उपयुक्त तरीके समझाएँ। इन परिचय-वृत्तों में व्यक्तित्व की विशेषताओं, रुचियों और क्षमताओं का उल्लेख प्रत्येक छात्र के स्कूल रेकार्ड, आंतरिक आकलन और सेमेस्टर में प्राप्त ग्रेड के आधार पर होगा। उन्हें इस बात की भी जानकारी रखनी होगी कि विद्यालयों में जो विभिन्न व्यावसायिक पाठ्यक्रम चल रहे हैं उनसे कौन-कौन से रोज़गार अवसर उपलब्ध होने की संभावना है।

5.9 संस्थागत और संगठनागत सुधार और हस्तक्षेप के साधन

शैक्षिक सुधारों के क्रियान्वयन और उनकी निरंतरता के आधार हैं :

- वित्तीय, मानवीय और भौतिक संसाधनों की उपलब्धता,
- पर्यवेक्षण, मॉनिटरिंग और परिवर्तनों के मूल्यांकन के लिए अपनाई जाने वाली कार्य प्रणाली की उपयुक्तता और पर्याप्तता, तथा
- इन दोनों आयामों की उचित व्यवस्था के लिए उपयुक्त कार्यनीतियाँ।

5.9.1 संस्थाओं और संगठनों का नेटवर्क

राष्ट्रीय, राज्य, ज़िला और स्थानीय (गाँव/नगर) स्तरों पर विद्यालयी शिक्षा में गुणात्मक सुधार के लिए ज़िम्मेदार संस्थाओं और संगठनों के अंदर और उन सबके बीच आपस में मानव संसाधन विकास के लिए अच्छा सामंजस्य होना चाहिए। इस नेटवर्क के माध्यम से विद्यालयी शिक्षा प्रणाली को सरल और प्रभावी ढंग से कार्य करने के लिए विकसित करना होगा। नौकरशाही प्रक्रियाओं को कम करने के लिए स्पष्ट लक्ष्य निर्धारित कर सभी स्तरों पर ज़िम्मेदारी और ज़वाबदेही बाँटनी होगी। इसके लिए विचार और कार्य की स्पष्ट समझ के साथ सभी स्तरों पर इस प्रक्रिया में संलग्न व्यक्तियों का प्रशिक्षण और प्रबोधन करना होगा। राज्य, ज़िला और स्थानीय स्तरों पर टास्कफ़ोर्स गठित करने होंगे जिनमें उद्देश्यों और कार्य-प्रणालियों को लेकर आपसी तालमेल होगा। इन टास्कफ़ोर्सों में सरकार के प्रतिनिधि और अपने कार्यों के संबंध में स्वायत्तता प्राप्त विद्यालय और समुदाय शामिल होंगे। यद्यपि टास्कफ़ोर्स के सदस्यों का कार्यकाल तीन से पाँच वर्ष तक होगा, फिर भी इन समूहों के गठन में कुछ तो निरंतरता होनी ही चाहिए ताकि किसी एक ही समय-अवधि में सारे सदस्य एक साथ न बदले जा सकें।

ये टास्कफ़ोर्स निम्नलिखितों के लिए उत्तरदायी होंगे :

(i) अपने क्षेत्रों के विद्यालयों में बुनियादी सुविधाओं की पहचान और समय-समय पर उनके आकलन के लिए,

(ii) समानता और गुणवत्ता दोनों के लिए भौतिक एवं मानवीय संसाधनों का अधिकतम उपयोग करने और ऐसे आवश्यक संसाधनों में वृद्धि करने की दृष्टि से योजना और कार्यनीतियाँ बनाने के लिए, उदाहरणार्थ समुदाय में उपलब्ध संसाधनों में साझेदारी, जैसे—स्थानीय पुस्तकालय का उपयोग, उपयोग में लाई गई पाठ्यपुस्तकों और वाचन-सामग्री का संग्रह उन बच्चों को वितरित जो स्वयं इन्हें खरीद नहीं सकते तथा धन और व्यावसायिक सेवाओं के रूप में समुदाय का स्वैच्छिक योगदान करना,

(iii) कार्यनीतियाँ सुझाने के लिए विशेष प्रकृति की समस्याओं के समाधान की दिशा में उपयुक्त हस्तक्षेप,

(iv) क्रियान्वयन प्रणाली का पर्यवेक्षण आदि की मॉनिटरिंग करने के लिए,

(v) प्राप्त अनुभवों की दृष्टि से यदि आवश्यक हो तो परिवर्तनों का मूल्यांकन करने और कार्यनीतियों के पुनः निर्धारण के लिए, और

(vi) समुदाय और सरकार के बीच सहसंबंध बरकरार बनाए रखने के लिए।

5.9.2 न्यूनतम आवश्यक सुविधाओं के लिए प्रावधान

समस्त विद्यालयों और वैकल्पिक शिक्षा केंद्रों में पाठ्यचर्या के प्रभावी संचालन की ज़रूरत को देखते हुए केंद्र और राज्य दोनों ही सरकारों को न्यूनतम आवश्यक सुविधाओं का प्रावधान करना होगा। इस समय देश में शिक्षा के क्षेत्र में सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) का कम-से-कम छह प्रतिशत आवंटित करने पर गंभीर विचार हो रहा है। विशेष आवश्यकताओं और अन्य प्रकार से चुनौतीयुक्त समूहों को मुख्य धारा में प्रवेश देकर शिक्षा देना आवश्यक है। यह भी सुनिश्चित करना होगा कि सभी विद्यालयों के पास अध्ययन-अध्यापन के लिए आवश्यक साधन उपलब्ध हैं, जैसे—कक्षाओं के लिए कमरों सहित शालाभवन, पेयजल, प्रसाधन सुविधाएँ, शिक्षक, शिक्षण-सामग्री और सहायक शिक्षण-सामग्री। इसके लिए समुदाय के सभी संबंधित व्यक्तियों के सहयोग से कार्य संबद्ध और समय-बद्ध कार्यनीतियाँ तय करनी होंगी ताकि स्वीकृत पद संख्या की अपर्याप्तता, स्वीकृत पदों को भरने में विलंब, शिक्षकों को अन्य सरकारी कामों में लगाकर शिक्षण अवधि के समय की हानि, न्यूनतम स्कूल-दिवसों का पालन न करना और कुछ आवश्यक शिक्षण सामग्री खरीदने के लिए धन का अभाव जैसी अनेक गंभीर और शाश्वत समस्याओं का निराकरण किया जा सके। विद्यालयों की सभी ज़रूरतों को सरकार अकेले पूरा नहीं कर सकती, इसलिए विद्यालयी पर्यावरण और शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार की दृष्टि से भागीदारी की भावना को बढ़ावा देना होगा।

गैर-सरकारी विद्यालयों की निरंतर बढ़ती संख्या के कारण सरकारी और गैर-सरकारी विद्यालयों

के बीच सुविधाओं का एक बड़ा अंतराल एवं भेद पैदा हो गया है। सामान्य सरकारी विद्यालयों और विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यालयों में संसाधनों में वृद्धि के लिए गंभीरतापूर्वक विचार करना होगा।

सिद्धांततः एक समान अध्ययन-योजना पर तो सहमति हो ही चुकी है लेकिन अधिकांश विद्यालयों में कई विषय-क्षेत्र अभी उपेक्षित हैं। इसके पीछे जो मुख्य कारण दिया जाता है वह है इन पाठ्यक्रमों के लिए आवश्यक सुविधाओं का अभाव। उदाहरण के लिए प्रयोगशालाओं की कमी, विषयवार कमरों का अभाव, उपकरणों तथा औज़ारों और अन्य बुनियादी संदर्भ सामग्री का अभाव आदि। इनके चलते विज्ञान, सामाजिक विज्ञान और खासकर भूगोल, भाषा और कला शिक्षा की पाठ्यचर्या को काफ़ी नुकसान होता है। इसके परिणामस्वरूप पाठ्यक्रमों में अनेक अलिखित पाठ्यक्रमीय विविधताएँ पैदा हो जाती हैं। इसलिए संसाधन-सहयोग न केवल गुणवत्ता बल्कि समान शिक्षा-स्तर के लिए भी अत्यंत आवश्यक है।

माध्यमिक स्तर तक कॉमन या एक समान अध्ययन योजना के अंतर्गत स्थानीय अधिकारियों और समुदाय को यह सुनिश्चित करना होगा कि सभी विषयों के अध्यापन के लिए कुछ ज़रूरी सुविधाओं का प्रबंध अवश्य किया जाए। उच्च प्राथमिक स्तर की शिक्षा के प्रथम वर्ष से ही सामान्य शिक्षकों के बजाय विषय-शिक्षकों की नियुक्ति करनी होगी।

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर शिक्षा की अकादमिक और व्यावसायिक धाराओं के संदर्भ में आवश्यक प्रावधान करने होंगे। विद्यालयों को पुस्तकालय, प्रयोगशाला, वर्कशाप, खेल के मैदान, सभा भवन, कुछ विषयों के लिए पृथक कमरे, कक्षा के लिए पर्याप्त कमरे, उपकरण और अन्य साधन अनिवार्य रूप से उपलब्ध कराने होंगे। सर्वोपरि आवश्यकता के रूप में प्रभावी अध्ययन-अध्यापन की दृष्टि से प्रशिक्षित और पर्याप्त क्षमतावान तथा सुयोग्य शिक्षकों की नियुक्ति करनी होगी।

आदर्शवादी नीतिगत अवबोध या समझ और क्रियान्वयन की अरुचिकर वास्तविकताओं का परिष्कार, स्वदेशी विचार, व्यावहारिक दृष्टि और अडिग संकल्प के सुदृढ़ स्तंभों पर आधारित होना चाहिए। मामूली सजावटी साधनों के स्पर्श के बजाय प्रबंधन-प्रणाली का आमूल-चूल शुद्धीकरण प्रचलित विद्यालयी शिक्षा के कायाकल्प की ऐसी कुंजी है जो शिक्षा को गतिशील, क्रियाशील और फलदायी सहायता या सहयोग प्रणाली में बदल देगी। तभी शिक्षा बच्चों के लिए आनंददायी सिद्ध होगी और प्रत्येक बच्चे में निहित मासूमियत, जिज्ञासा और सृजनात्मकता का सम्मान करेगी। प्रत्येक शिक्षार्थी के अंदर एक अगाध एवं अनंत भंडार मौजूद है, उसकी खोज कर उसे प्रकट रूप से प्रस्तुत किया जाएगा और इस प्रकार उसकी समृद्ध संपदा को समूचे वातावरण में प्रसारित करने की भावना का पोषण किया जाएगा।